ISSN : 2350-0441

Shodh Chetna

शोध चेतना

The International Reffered, Reviewed & Multifocal Research Journal

Year - 3 **April to June, 2017** **Volume - 2**

Chief Advisor
Ajaya Srivastava
Librarian, State Central Library, Rewa

Chief Patron
Prof. Ved Prakash Upadhyaya
Ex-chairman Punjab University, Chandigarh
U.G.C. Professor....

Uma Kant Mishra
Prof. & H.O.D. (Sanskrit-Academic) T.R.S. College, Rewa

Chief Editor
Sushil Kumar Kushwaha

Honourary Editor
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Professor and Head, Department of Commerce
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Editor
Dr. Surya Naryan Gautam
Associate Professor (Sanskrit), J.J.T. University (Raj.)

Managing Editor
Harsh Kushwaha

Editorial Board

Shri Narendra Shashtri
Ved Pravakta, Arya Samaj, **Singapore**

Dr. Vaishali S. Chaudhari
Prof. Library & Information Science
Shri J.J.T. University, Jhunjhunu (Raj.)

Dr. D. N. Tripathi
Associate Professor & HOD (Sanskrit)
Dharma Samaj P.G. College, **Aligarh**

Dr. Narendra Kumar Gupta
Professor, Department of Law
Himachal Pradesh University, **Shimla**

Dr. (Mrs.) Aditya Saikia
Associate Professor & H.O.D.
M.D.K.G. College
Dibrugarh (Assam)

Dr. (Major) Vibha Srivastava
Professor & Head, Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa (M.P.)**

Dr. Sudha Soni
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

- The persons holding the posts of the Journal are not paid any salary or remunaration. The Journal's work is purely academic, non political, posts of Journal are honorary.
- The Journal will be regularly indexed and four issues will be released every year in (January to March) - 1, (Apr. to Jun.) - 2, (July to Sept.) - 3, (Oct. to Dec.) - 4

G.H. PUBLICATION

121, Shahrarabag, Allahabad-211 003

© *Publishers*

Registration Fee : **Rs. 1000.00**

Membership Fee :

Single Copy **Rs. 250.00 (Individual)**

Annual (4 Issues) **Rs. 1000.00 (Institution)**

Life Member Fee **Rs. 5000.00**

Mode of Payment :

DD/Cheque/Cash should be sent in favour of

G. H. PUBLICATION
Union Bank of India
Chowk, Allahabad-211 003
A/c. No. 394301010122432
IFSC-UBIN 0539431

SUBJECT EXPERT/ ADVISORY BOARD

Dr. Smt. Poonam Mishra (History)
Govt. T.R.S. College
Rewa (M.P.)

Dr. Rajendra Prasad Chaturvedi
Prof. & HOD (Sanskrit)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Dinesh Kumar Singh (Botany)
Shri J.J.T. University
Jhunjhunu (Raj.)

Mr. Vineet Kumar Gupta (English)
Govt. Acharya Sanskrit College
Alwar (Rajasthan)

Dr. Vinod Tiwari
Prof. & HOD (Law)
Rajeev Gandhi Law College, Bhopal (M.P.)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक : सुशील कुमार कुशवाहा द्वारा 'शोध चेतना', जी.एच. पब्लिकेशन, 121 शहरारा बाग, इलाहाबाद-211 003 से प्रकाशित एवं श्री विष्णु आर्ट प्रेस, 332/257, चक जीरो रोड, इलाहाबाद-3 से मुद्रित। प्रधान संपादक : सुशील कुमार कुशवाहा, (M) 09329225173, 9532481205, E-mail : ghpublication@gmail.com website : www.ghpublication.com

जनरल में प्रस्तुत विचार और तथ्य लेखक का है, जिसके विषय में प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक मंडल सहमत हो, आवश्यक नहीं। सभी विवादों का न्यायिक क्षेत्र इलाहाबाद रहेगा।

 ISSN : 2350-0441

विशेष आवश्यक सूचना

आपको सूचित करते हुए हमें हर्ष की प्रतीति हो रही है कि
हमारी त्रैमासिक, अन्तर्राष्ट्रीय पंजीकृत पत्रिका

''शोध-चेतना''

में प्रकाशित माननीय लेखकों के शोध-पत्र विभिन्न विश्वविद्यालयों
(केन्द्रीय/राज्य), महाविद्यालयों (शासकीय/अशासकीय),
शैक्षणिक संस्थानों एवं अन्य बौद्धिक मठों, आश्रमों/शोध-संस्थानों
के पुस्तकालयों में अनवरत् रूप से भेजी जा रही है जिससे,
इन शोध दृष्टियों से
'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'
का
उद्देश्य पूर्ण हो सके।

...प्रकाशक

आज ही आदेश करें।

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा एवं
पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सम्पर्क करें :-

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को
किसी-न-किसी प्रकार के
कर्म में
प्रवृत्त होना पड़ता है।
किन्तु
ये कर्म ही
उसे इस जगत से
बाँधते या मुक्त कराते हैं।
निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता
के लिए कर्म करने से
मनुष्य कर्म के नियम से
छूट सकता है और आत्मा
तथा परमेश्वर विषयक
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कर्मयोग-गीता

अनुक्रम

1. **Art of Cartooning** 9
Vineet Kumar Gupta

2. **COLONIAL BENGAL: ITS ART & PATRIOTISM** 13
Ritu Chawla

3. **INTERNET BANKING – AN EFFECTIVE TOOL OF MODERN BANKING SERVICES IN INDIA** 17
Nishant Rastogi

4. **अब्दुलशाह अब्दाली के साथ हुए युद्ध में बालाजी बाजीराव पेशवा की पराजय का वर्तमान परिदृश्य में विश्लेषण** 23
हेमा सिंह दुबे

5. **सतना जिले का खनिज-चूने का पत्थर : एक भौगोलिक अध्ययन** 27
डॉ. अशोक कुमार शर्मा

6. **सतना जिले के प्रवाह प्रणाली का भौगोलिक अध्ययन** 31
डॉ. अशोक कुमार शर्मा

7. **शासकीय महाविद्यालय के ग्रंथालयीन सेवाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन (कटनी जिला के विशेष सन्दर्भ में)** 39
वंदना सिंह

8. **पुस्तकालय प्रबंधन परिचयात्मक अध्ययन** 43
श्रीमती कमलेश कुशवाहा

9. **हिन्दी की महिला आत्मकथा लेखिकाओं के लेखन में नारी संघर्ष का चित्रण** 46
रेशमा पयासी

10. **''प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों का तुलनात्मक अध्ययन''** 48
डॉ. देवेन्द्र कुमार

11. वायुपुराणेसृष्टिप्रक्रिया **55**
डॉ. नीतू गुप्ता

12. सुभद्रा कुमार चौहान : एक तेजोमय व्यक्तित्व **57**
डॉ. (श्रीमती) पूनम मिश्रा
करुणापति त्रिपाठी

13. श्रीमद्‌भागवत में रासलीला **62**
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी
पूजा वर्मा

14. प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना **66**
डॉ. आशुतोष कुमार द्विवेदी
अजय कुमार मिश्र

15. साम्प्रतिके युगे गृहप्रवेशविचारः **71**
डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय

16. पातंजल योग एवं उसका शैक्षिक महत्व **74**
डॉ. एस.के. त्रिपाठी

17. योग विज्ञान का ध्यान प्रक्रिया में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन **78**
डॉ. एस. के. त्रिपाठी

18. ब्रह्मचर्य का योग शास्त्रिय विवेचन **84**
संदीप ठाकरे

19. बघेलखण्ड में सूफी सन्तों के समन्वय स्थल **87**
डॉ. सुधा सोनी

20. आदिम जनजातीय समूह के विकास के लिए सरकार की योजनाएँ एवं महत्व **91**
डॉ. बी.के. गर्ग

21. रीवा के शासकीय एवं अशासकीय अभियांत्रिकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन **100**
डॉ. एस.पी. सिंह
रीतू शर्मा

22. प्रेमचंद के उपन्यासों का अनुशीलन **103**
डॉ. आशुतोष कुमार द्विवेदी
अभिषेक कुमार मिश्र

23. ''शिवलीलार्णव महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन'' **111**
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी
प्राची गौतम

24. जया जादवानी के कथा साहित्य में स्त्री का संघर्ष **114**
डॉ. सरोज गोस्वामी
अभिशिखा नामदेव

25. दीनदयाल अंत्योदय योजना : महिला सशक्तीकरण **117**
डॉ. सुमन मिश्रा
डॉ. कृष्णा मिश्रा

26. समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे : मानव अधिकार, वैश्वीकरण,
आतंकवाद एवं पर्यावरण **123**
डॉ. प्रवीर चन्द्र दुबे

27. ''वृद्धावस्था : समाज की आवश्यकता'' **127**
डॉ. कीर्ति शुक्ला

28. भारत में वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास **130**
डॉ. संजय शंकर मिश्र
अरूण पाण्डेय

29. भारतीय साहित्य और समाज में नारी की स्थिति **137**
डॉ. रेखा रानी

30. ''उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के
विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों का अध्ययन'' **140**
डॉ. (श्रीमती) योगेश सिंह

31. वृद्धावस्था में प्रसन्न रहने के आध्यात्मिक सूत्र 149
वर्षा गौतम

32. आदिवासी-स्वास्थ्य सुविधाएँ (पुष्पराजगढ़ तहसील के विशेष सन्दर्भ में) 152
डॉ. प्रभात सिंह ठाकुर, डॉ. अश्विनी कुमार पाण्डेय

33. किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व 156
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, पंकज मिश्रा

34. भास की नाटकीयता एवं स्वरूप 162
डॉ. सूर्य नारायण गौतम, सुनीता

35. वाल्मीकि रामायण में मानवीय चेतना 168
डॉ. अनिरुद्ध कुमार पाण्डेय, पूजा शर्मा

36. महाकवि कालिदास की अलंकार योजना (सन्दर्भ : विक्रमोर्वशीयम्) 173
डॉ. शीलेन्द्र पाठक

37. स्मृतियों में वर्णित उद्योग-धन्धे, व्यापार और वाणिज्य 178
डॉ. सन्ध्या कुमारी

38. वाल्मीकि रामायण में सौन्दर्य-प्रेम 182
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी

39. **Economical Importance of Medicinal Plants in People Life Calotropis Procera** 187
Dr. Suresh Kumar Tiwari

40. फसल अवशेषों को जलाने के कुप्रभाव एवं उनका बेहतर प्रबंध 192
शिव प्रसाद विश्वकर्मा, एस.पी. वर्मा

41. **Impact of Animal Agriculture on Environment : A Focus on Methane** 196
Dr. Sheetla Prasad Verma

42. **Opportunities in Dairy Farming** 200
Dr. Sheetla Prasad Verma

43. गीता का निष्काम कर्म व काण्ट का ''कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य के'' विषयक विचार 205
डॉ. आशा देवी

44. **A Compative Study of Mental Health Among Male and Female Students**
Dr. Karuna Anand 213

45. हिन्दू धर्म का अन्य धर्मों से तुलनात्मक अध्ययन : संगीतात्मक दृष्टिकोण 219
डॉ. सोनिया बिन्द्रा

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

ART OF CARTOONING

❑ Vineet Kumar Gupta*

ABSTRACT

Cartooning is non-verbal communication. It fills the visual gap of understanding. It is satirical graphic observation of the political and social happenings. These cartoons may be analyzed on the basis of linguistic theories. Cartoons carry vision of life. In India, the art of cartooning flourished after Independence. Laxman became a legend in the art of cartooning.

Art is an imaginative expression to capture the evolving mindscapes and cultural contours of a society. Artistic sensibilities find expression with the changing social, economic and political scenario of a community. A cartoon is a form of expression or communication that refers to several forms of art, including captioned illustration and satirical, political drawings. Oxford Dictionary defines cartoons as a simple drawing showing the features of its subjects in a humorously exaggerated way, especially a satirical one in a newspaper or magazine.

Cartoons have the ability to carry wit, satire and punch all these emotions in one message. A cartoon can be described as a political and social observation on the happenings about the time during which it is drawn. In its original meaning, a cartoon (from the Italian word 'cartoon', meaning big paper) is a full size drawing made on paper as a full size study for artwork. Cartoons are visual images that engage the audience, help them understand and interpret the political, social and economic scene in the country and the world. Katherine Thomson calls them 'visual briefs". Political cartooning is inspired by the situation around the cartoonist, what he sees, and believes are portrayed through the sketch he creates. According to Jonathan Burack, "Political cartoons are vivid primary sources that offer intriguing and entertaining insights in to the public mood, the underlying cultural assumptions of an age, and attitudes towards key events or trends of the times."

Burack believes that cartoons are 'visual strategies' to make a point in small spaces.

* Professor (English), Govt. Acharya Sanskrit College, Alwar (Rajasthan)

He further establishes that the simplicity of cartoons is what makes cartoons deceptive, the more simplicity of the visual, the more complex the thought behind it. A Cartoonist's vision of life, society, and politics will continue to play an important role in contemporary culture. Michael Foot, former leader of the British Labor Party has said that the great cartoonists catch the spirit of the age and leave their impact on it. The cartoonists create their own heroes and villains in the drawn images.

A cartoon is a combination of graphic pictures and its associated caption- graphic context and linguistic context. It is non-verbal communication. The graphic context provides the situation to understand the meaning of the caption and the caption supports the graphic to communicate the meaning. The utterances in the caption of cartoon are embedded in the situation of discourse shown in the cartoon. Addressers in the cartoon produce messages for the addressees.

The transmission of meaning depends on structural and linguistic knowledge of the speaker and listener, on the context of the utterance, on the intention of the speaker and on the pre-existing knowledge of those who are involved. Meaning relies on the manner, place, time, of an utterance. (J. L. Austin).

The philosopher, H.P. Grice (1975) suggested that when people converse with one another, they acknowledge a kind of tacit agreement to co-operate conversationally towards mutual ends. He named this agreement as' co-operative Principle'. When one abides by the co-operative principle, one agrees to act according to various rules. These rules are named as "maxims". The maxims are of quantity, quality, relation and manner. The use of maxims is culture specific and language specific. The applicability of co-operative principle is local and not global.

Cartoons are the source of entertainment. They are full of humor and satire. The satirical comments catch spirit of the age and bring smile on the faces. Bharata Muni in "Natyashastra" defines humor as one of the nine rasa - one emotional pleasure (responses). The purpose of humor in art may be to bring about political change, to comment on an aspect of society, to address personal psychology or simply as form of communication. Greek philosopher, Aristotle suggested that an ugliness or distortion in art- that does not disgust is fundamental to humor. Distortion is an important part where a figure is distorted intentionally to show art as a creative gesture.

Satire is just like a mirror which brings out the absurdities and follies of a system. Under the veil of satire, the cartoonist desires to bring correction and improvement. An ironical statement makes the point. Jonathan Burack believes that irony makes cartoons witty and points out the flaws in the system. He further adds that cartoon must entail irony as they can make a contradiction and argument.

Any work of art has a vision. The approach of the cartoon is easy and simple. An illiterate person catches the meaning, tune and message easily. The visual images fill the gap of understanding. A fluctuating mind gets rest and peace without utterance. The views expressed by the images become the voice of the common man. The message of the cartoon becomes public opinion. It becomes social narrative. They help the cartoonist establish an idea. It promotes a point of view. It opens ground for discussion.

Cartoons by painters such as Leonard da Vinci (1452-1519) and Raphael (1483-1520) continue to be displayed proudly in museums around the world. A world renowned

Collection of cartoons by Peter Paul Rubens (17th century) is displayed in the John and Mable Ringling Museum of Art in Sarasota, Florida. The modern use of the term 'cartoon' was coined by the British magazine "Punch", well-known for its satirical drawings. The term 'cartoon 'stuck as a description of pictorial satire. Magazines such as 'punch' and 'The New Yorker' popularized this visual form of joke. William Hogarth (1697-1764) and David Low (1891-1963) were the famous British cartoonists.

In the United States, the first political cartoon was printed by Benjamin Franklin in The Pennysylvania Gazette on May 9th 1754. This well-known image features a segmented snake, where the segments represent colonial governments and the caption 'Join or Die' below a message. The cartoon urged the colonial governments to unite during the French and Indian war. The effect of cartoons after the American Civil War (1861-1865) in the legendry battle of Thomas Nast's Harper's weekly cartoons against the corrupt William M. Tweed, such as 'Tammany Tiger Loose' and ' Group of vultures waiting for the storm to blow over',(both 1871) was traffic which led to the downfall of Tweed. In America, a Pulitzer Prize for editorial cartooning was established in 1922 and they have been described as 'speaking pictures', reflecting their advancement of rhetoric through visual imagery.

The art of cartooning came to India from England, and the first political cartoons drawn in the country depicted real personages of colonial India- leaders of the freedom movement and guardians of imperial authority like the Viceroy or Governor, and social evils such as the dowry system and child labor. The famous cartoonists of India are K. Shankar Pillai (1902-1989), Abu Abraham (1924-2002), Mario Miranda (1926- 2011), O.V. Vijayan (1930- 2005), Sudhir Dar (1934- 2016), Harish Chandra Shukla (1940-till now), Bal Thackeray (1926- 2012) and R .K.Laxman (1921-2015).

Every region, every state of India has many glorious flag-bearers who have become cartooning legends in themselves and spawned an entire generation of artists to carry forward their art. A noteworthy mention of such talent attracting global attention is that of R.K. Laxman, born on 24 Oct. 1921 in Mysore to R.K. Krishnaswamy, a school Headmaster. Inspired by the renowned British cartoonist, Sir David Low, Laxman started sketching for local newspaper at the age of 11. Cartooning was his passion. He got admiration for his illustrations he drew for his brother, R.k. Narayan's stories which appeared in The Hindu. The illustrations in 'The Strand,' 'Punch', 'Bystander' and 'Tit-Bits', reputed British magazines, spurred his innate talent which found an outlet in his own house. In his autobiography 'The Tunnel of Time', the cartoonist recalls:

"I draw objects that caught my eye outside the window of my room- the dry-wigs, leaves and lizard like creatures crawling about, the servant chopping firewood and of course, the number of crows in various postures on the rooftops of the building opposite".

His cartoons depict hypocrisy in politics, socio-economic failures of the country and

Government, sarcastic gossips on the state of the country –mocking the politicians and critical situations. He skillfully analyzed proportions and features to bring out realism in drawings. Laxman was always fascinated by human figures- the way they stand and sit. He sketched his teachers in the class room while the others struggled with arithmetic or grammar.

In 1947, he joined the daily 'The Times of India' and later on it became his home. In 1951, he created his immortal icon, the image of the common man with the strip , "You said it" . He could simply mould him into his subjects to give an identity to his thoughts and represent a uniform image of himself as an anonymous onlooker to the scenes. It is inevitable to say that he himself represented the common man's image like many other Indian citizens, and drew on the subjects inspired by daily happenings and incidents. The common man soon became synonymous with his signature checked jacket, dhoti, Gandhian - glasses and twin tufts of gravity-defying hair, watched life and politics in India and outside India.

REFERERENCES

1. Austin, J.L. (1962) ' How To Things With Words', Oxford University Press.
2. Bhandari, Dharmendra (2010). ' R.K. Laxman, The Uncommon Man' Mumbai; Thomson Press (india) Ltd. ISBN 978-81-908606-0-4
3. Davis, Walter (1978) 'The Act of Interpretation; A Critique of Literary Reason.' Chicago; University of Chicago Press.
4. Encarta Microsoft (2011). 'History of cartoons" NANA 2004.ccbgorg. UK. 23 July, 2011. <http;//www.ccbg.org.uk/pages/history-of-the-cartoon-html>
5. Grice, H.P. (1975).' Logic and Conversation'. In p. Cole and J.L. Morgan.Eds. Syntax and Semiotics, Vol. 3, Speech Acts. New York; Academic Press, 41-58.
6. Khanduri G. Ritu;(2014) ' Caricaturing Culture in India; Cartoons and History in the Modern world '. Cambridge University Press. ISBN 978-1-107-04332-9.
7. Laxman, R. K.(' The Best of Laxman; Vol. 3' Penguin Books. ISBN 0s-14-024721-1
8. Laxman, R.K. (1998), 'Tunnel of Time 'An autobiography. Penguin Books, ISBN 978-0-143-42474-1.
9. Laxman, R.K. (2002) 'Laugh with Laxman 'Vol. 2, Penguin Books. ISBN 978-0-14-302868-0.
10. Laxman, R.K.(2003)' A Vote For Laughter 'Penguin Books ISBN.978-0-14-303086-7.
11. Laxman, R.K. (2008). 'Brushing Up the Years', Penguin Books. ISBN 978-0-14-310366-0.
12. Laxman, R.K.(2012) ' The Very Best Of The COMMON MAN' Penguin Books. 978-0-14-341871-9.
13. Preetha, Rewins. (2016)' Sociopolitical Reading of R.K. Laxman's Common Man ' Journal "Questia ', IUP Journal of English Studies Vol.11, Issue 1, March 1, 2016.
14. Searle, John (1969) 'Speech Acts ' An essay in the philosophy of Language. Cambridge; Cambridge University Press.
15. Smith, Barbara Herrnstein.(1979) 'On the margins of Discourse; The Relation of Literature to Language. Chicago; University of Chicago Press.
16. Stephen, Hess and Milton, Kaplon,(1975) ' The ungentlemanly Art; A History of American Political Cartoons' New York Macmillan. 52.

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

COLONIAL BENGAL: ITS ART & PATRIOTISM

❑ Ritu Chawla*

ABSTRACT

The current writing is apreeminentreview to bring around the interpretation of modern art throughthe most vital segment when India was approaching Independence from the colonial rule. Finding back to ancient period, the article attempts to re-locate the story of modern art filled with discontinuities, struggles and high points. Early stages have frequently been a stuff of contestation. The contemporary expansions in Indian art reproach a more multifaceted and open-endedplace of modern art in India.

The origin of the Bengal art is interlaced with the beginning of Indian nationalism. To the extent,it can be discharged as aninsurgence in the spirit against the Western Art.The access of the European art custom in India instigated anupsurge of reactions in the Indian world of art and aesthetics, all varying in asset and nature. The article efforts to observe one of the strongest feedbacks to this distraction of tradition, which replied with vehement resistance in the name of patriotism through the instantaneous protection and formation of a specific Indian identity through art. The conversation of this nationalist sentiment in art is often restricted to the study of the "Bengal School" painting.

The Bengal School of Art commonly referred as Bengal School or Neo Bengal School was the first organized and an influential art movement and a style of Indian art that originated in Bengal, primarily Kolkata and Shantiniketan,and flourished throughout India during the British Raj in the early 20th century,with a basic motto of search for an indigenous identity.The movement originated as a protest against the supremacy of British originated academic naturalistic style of art practice and art education that dominated Indian art field since 1850-s. The Bengal school arose as an Avantgarde and nationalist movement reacting against the academic art style

* Research Scholar, Shri JJT University, Jhunjhunu, Rajasthan

previously promoted in India. 1905 was a very important year from the point of view of national movement in Bengal.

Also known as 'Indian style of painting' in its early days,it was associated with Indian Nationalism (Swadeshi) and led by Rabindra NathTagore (1871-1951). It was also promoted and supported by British arts administrator E. B. Havel ,the principal of the Government College of Art, Kolkata from 1896; eventually it led to the development of the modern Indian painting.

Neo-Bengal School is the first organized movement in modernity of Indian art with a basic motto of search for an original identity. It originated in Bengal but spread throughout India. Hence it is often cited as 'Neo-Indian School' of modern Indian art. Bengal school was the primary school for development of Indian art. Its influence in India declined with the spread of modernist ideas in the 1920. There was a very fine line between the Bengal School of Art and the Shantiniketan School of Art. Kala Bhawan, the Art's school at Shantiniketan established by Rabindra Nath Tagore in 1901, laid the basis of modern art in India. The school taught music, art and performance art for the coordinated study of the different cultures and eventually became the symbol of harmonious coexistence of western and eastern cultures. It was meant to serve as the center for exploration and research into the vast Indian cultural heritage.

The beginning of the movement may be traced in the year 1897, when AbanindraNath Tagore painted series of paintings through assimilation of medieval manuscript illustration style of paintings of Indian and Western origin . The orientation in the artistic outlook of AbanindraNath created a new awakening in India and brought about a revival of the Indian Art which for centuries lay decadent and hidden from the public view. AbanindraNath was initially trained in academic naturalist style and worked in that form during the initial years of his career, but in the environment of nationalist movement, he felt that modernity of Indian painting should grow out of our own national and traditional root.

Abanindra Nath Tagore was the principal artist and creator of 'Indian Society of Oriental Art' and the first major exponent of Swadeshi values in Indian art, thereby founding the influential Bengal school of artwhich led to the development of modern Indian painting.

Talking in terms of art theory, the paintings of Bengal school of art are characterized by a redefining of historical Indian art styles, especially the Rajput and Mughal miniature art styles. Most artists of this group worked with water colors, inspired to do so by the Far Eastern brush techniques and calligraphy. Indian Society of Oriental Art produced works that had definite Japanese characteristics, such as the ink and wash, actual lines in the final product, increased use of decorative floral motifs and landscape themes and the human features resembling Japanese features.

The influence of Neo-Bengal school extended throughout firstly through the exhibitions organized by Indian Society of Oriental Art, secondly through the second generation of artists, who were attached as faculty in various art institutions outside Bengal. It has some realistic base. At that time

neo-Bengal school could earn such a reverence outside Bengal. The search for indigenous identity had an important relevance. The early phase of this school, at least till 1915, was mostly religious and mythical in subject and considerably revivalist. The concept of 'nation' was widely expanded through inclusion of oriental, far-eastern and universal philosophical and aesthetic values. The attitudes and ideas of Rabindranath played a vital role in this development.

Neo-Bengal school was not only a form; it was a total world outlook. It tried to create a national identity within modernity as a protest against British colonial domination in our culture. The art of neo-Bengal school, developed out of such wide spread of anti-colonial, anti-utilitarian and nationalist philosophy, had its first phase of development through the works of Abanindra Nath, NandLal and other artists.

The development of neo-Bengal School since its beginning in 1897 and having an organizational set up with the formation of 'Indian Society of Oriental Art' in 1907 was not an isolated event. It had a wide background, both national and international.

Bengal School of Art became the first cohesive nationalist art group, that did not follow fixed rules of art in matter or technique, rather each followed his own calling in order to gather inspiration from any source to build the modern Indian aesthetic. The common feature in all Bengal school works, however, was the rejection of Western notions of modernity and materialism and embark on a rediscovery of the lost spirituality that was characteristic of ancient India. The artistic creed of this school was gradually challenged and new developments came about. A genuinely individual search for content and form led to a successful synthesis of Indian and European techniques. In the early years of the 20th century there was a renewed upsurge of nationalist fervor in the arts. This resulted in the search and revitalization of Indian culture, history and spirituality.

In general term the neo-Bengal school means the form and spirit of the art developed by the Indian artists through the search for an ethnic identity between the periods 1897 to 1940. It was not limited within the classical forms of Ajanta and medieval miniatures only. It assimilated the forms of far-Eastern art also. Gradually it proceeded to assimilate the spirit of folk and rural. So Neo-Bengal school is very much living till now, both directly and indirectly. This school has always been respected for being one of the earliest art movements in the country. But now, it is getting its due recognition in the art market as well.

Prominent artists and art promoters of Bengal school of art wereEB Havel, Abanindra NathTagore, Nand Lal Bose, Gaganendra Nath Tagore, Asit Kumar Haldar, Jamini Roy, Ram Kinkar Baij, Rabindra Nath Tagore etc. This movement was continued by the next generation of artists NirmalDutta, Ganesh Pyne, ManishiDey, DevajyotiRai, NilimaDutta, PareshMaiti, Bikash Bhattacharjee, Chitto Prasad Bhattacharya, SubrotoKundu etc.

Bengal still houses some of the most eminent and excellent artists of modern India. Among the best artists of Bengal school of

paintings, the most popular artist of this day Bengal are working in LucknowCollege of Arts and Crafts and still promoting and working the trend of wash technique.

Lucknow College of Arts and Crafts is one of the renowned colleges of the Uttar Pradesh which is the leading institute to promote the trend of wash technique of art. This college is also known as the College of Arts and Crafts (CAC) or Government College of Arts and Crafts (GCAC). Asit Kumar Haldar and L.M. Sen joined this college and after 1925 a shift took place in the course curriculum of the college with the introduction of Indian School of painting.

The Bengal school's influence in India declined with the spread of modernist ideas in the 1920s. As of 2012, there has been a surge in interest in the Bengal school of art among scholars and connoisseurs.

The Post liberalization phase of Indian economy has brought in now newer and swifter changes. People from outside the realm of fine-art training are entering the field and making their mark in the art world. Art has truly undergone a sea change over the past ten years and the ideals and ideas of the old Bengal is giving way to new ideas. This was truly an explosion of ideas and styles in art in Bengal and it was to show the way to the new generation of the artists of the future.

Bengal, the state of rich culture and glorious history, is promoting art in many new ways and taking the artistic trends to its new height. It has not limited itself in the Bengal but it is being promoted by the painters of Lucknow. Bengal Painters are doing many more new experiments to promote the art culture and definitely giving a new definition to art to increase & develop the treasure of Indian Art.

REFERENCES

1. National Book Trust of India (2010) –"The Twin Dreams of Rabindra Nath Tagore: Shantiniketan".
2. Tapati Guha-Thakurta. The Making of a New 'Indian' Art: Artists, Aesthetics, and Nationalism in Bengal, c. 1850 – 1920, (New York: Cambridge University Press, 1992).
3. Siva Kumar R., interview by Jasmin Cohen, Kala-Bhavana, Visva-Bharati International University, Santiniketan. "Second Meeting," November 22, 2012.
4. Dr Awdhesh Mishra (2010) –"Kala Dirgha, Lucknow: Basic Trends of Contemporary Art" International Journal of Visual Art, April 2010 Vol 10, No.20.
5. DebashishBannerjee (2009) – "The Alternate Nation of AbanindraNath Tagore" SAGE Publications Ltd London,
6. YashodhraDalmia& Ella Datta (2010) – "Indian Contemporary Art: Post Independence" Vadhera Art Gallery 2010
7. Guha, Ranajit. The Small Voice of History. Ranikhet, Bangalore: Orient Blackswan, 2010.
8. YashodhraDalmia& Ella Datta (2010) – "Indian Contemporary Art: Post Independence" Vadhera Art Gallery 2010.

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

INTERNET BANKING – AN EFFECTIVE TOOL OF MODERN BANKING SERVICES IN INDIA

❑ Nishant Rastogi*

ABSTRACT

Internet banking has changed the face of modern banking in India. Almost all of the Indian bank's businesses are carried out with the help of electronic gadgets including computers. Internet banking has not only increased the ease of banking transactions but has also reduced the amount of money to set up IT infrastructure. This has resulted in the improvement of productivity and efficiency of the industry and also the quality of services to consumers.

Today, the concept of core banking has made 'Any Time Any Where' banking a reality. Along with technology, banking services have also evolved and the delivery of various banking products are carried out through the medium of high technology at a fraction of the cost to the consumers. This paper focuses on how the Internet Banking has an effective tool of Modern Banking services and draws the base line of sustainable development.

Key Words: *IT (Information Technology), Modern Banking services, Internet banking, Phone banking, ATMs.*

Introduction

Banking industry has witnessed a lot of changes since the era of liberalisation. The most dynamic aspect of banking today is changing customer preferences and the demand for multi-products and efficient services at the flick of the finger. This has forced banks to think the way they function and make use of the latest technologies available for the industry. Information Technology (IT) has been one of the primary drivers of change in the Banking industry and the key to leverage opportunities. Sophisticated IT driven platforms are today

* Faculty, Department of Management, IIMT, Aligarh, Research Scholar, S. V. College, Aligarh (U.P.) -202001, e-mail: rastogi.nishant.1979@gmail.com, Mobile: 9412176976

the most potent tools to energies distribution channels and create the 'one stop shop' – the financial supermarkets that represent the future look of the banking sector. Thus, in the modern context, the word 'brand' is more a verb than a noun. Far from its brick and mortar manifestation, a bank is a Virtual Concept that can be accessed, availed of and monitored from anywhere and at any time. Internet Banking, ATM, credit card, Mobile banking, universal banking are all the outcome of a technology revolution that is currently sweeping across all traditional institutions. Technology has redefined the frontiers of banking and has created a suit of offering to appease the fast changing and equally rapid rising banking demands of individuals, corporate, markets and economies.

Objectives of the Study

1. To understand the need of modern banking services

2. To know the impact of IT on banking services

3. To aware the importance with respect to modern banking services

4. To realize the benefits of Internet banking services

Methodology

Secondary data has been collected for this paper. The same has been compiled from various sources like journals, books, magazines and reports.

What is Internet Banking?

Internet has significantly influenced delivery channels of the banks. Internet has emerged as an important medium for delivery of banking products & services. Internet banking can be defined as a facility provided by banking and financial institutions that enable the user to execute bank related transactions through Internet. The biggest advantage of Internet banking is that people can expand the services sitting at home, to transact business. Due to which, the account holder does not have to personally visit the bank. With the help of Internet banking many transactions can be executed by the account holder. When small transactions like balance inquiry, record of recent transaction, etc. are to be processed, the Internet banking facility proves to be very handy. The concept of Internet banking has thus become a revolution in the field of banking and finance.

A detailed guideline of RBI for Internet Banking has prepared the necessary ground for growth of Internet Banking in India. The Information Technology Act, 2000 has given legal recognition to creation, trans-mission and retention of an electronic (or magnetic) data to be treated as valid proof in a court of law, except in those areas, which continue to be governed by the provisions of the Negotiable Instruments Act, 1881.

Importance of Internet Banking

Internet banking enables a customer to perform banking transactions through the bank's website. This is also called virtual banking, net banking, or anywhere banking. It is like bringing the bank to one's computer at the place and time of one's choice. The number of customers who chose online banking as their preferred method of dealing with their finances is growing rapidly. With the changing environment, banks implemented online banking usually offers

various services like electronic bill payment, tele-banking, Internet banking, mobile banking, call center services, ATMs, etc., for enhanced customer services. Internet banking is the latest in this series of technological wonders in the recent past involving use of Internet for delivery of banking products and services.

In the traditional banking system a person had to go to a bank branch to deposit or withdraw money and get a bank statement book manually updated by a teller over the counter. With the introduction of computer networks, a networked printing machine started replacing the manual update of statements. Then automated teller machines (ATMs) were introduced to facilitate withdrawals, deposits and even transfers accommodating mobility in much wider geographical areas. Phone banking was a revolutionary concept in banking since it made banking accessible from anywhere as long as phones were available. With the successful diffusion of mobile phones, phone banking is moving into a next phase of development. However, one of the most substantial changes in banking technology is the recent introduction of internet banking. Banks view Internet banking as a powerful `value added` tool to attract and retain new customers.

Internet banking also helps eliminate costly paper handling and teller interactions in an increasingly competitive banking environment. There is a growing number of banks that operate exclusively online due to cost advantage compared to traditional banks. Net-based banking comes at only 10 percent of the operating costs of conventional banking practices and services. A cost comparison study done by IBM global services consulting group clearly shows the advantage of using Internet as medium for banking services over other traditional mediums (fig 1). As per the recent survey, traditional banks spend 60% of the revenue generated to run a branch. Whereas, the cost of providing same services via Internet comes out to be only 15%. This is a huge savings for banks and consumer. Definitely the consumer is the principal beneficiary of the Internet Banking. He will be access the same services with more efficiency at low cost. E banking will have two-fold effect, first, it will reach the remote consumer and second it will create the awareness among consumer about benefits of investment in different financial products. Investment in-turns boost the financial markets and economy. A research shows that a large urban population use Internet for gathering information about different financial products like personal loan, credit card, insurance etc., thus reducing cost of printing, promotion and distribution.

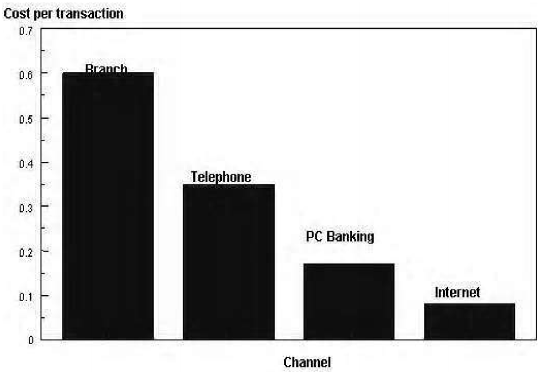

Fig. 1: Cost of Internet Banking over other mode of Banking (Source: IBM global services consulting group)

Impact of Information Technology on Modern Banking Services

Technology has been one of the most important factors for the development of the nation. Information and communications are significant part in the field of technology which is used for accessing, processing, storage and dissemination of information electronically. Banking industry is growing rapidly with understanding the requirements of customer by offering technological services like ATMs, online banking, telephone banking, and mobile banking and so on. This growth has been strongly supported by the development in the field of technology. With the development of information technology, the world has become a global village and it has brought a revolution in the banking industry. Bank customers are becoming very demanding and it is the extensive use of technology that enables banks to satisfy adequately the requirement of customers. Further the banking sector reforms and introduction of e-banking has made very structural changes in service quality, managerial decisions, operational performance, profitability and productivity of the banks. E-banking is one of the emerging trends in the banking and is playing a unique role in strengthening the banking sector and improving service quality. It has enabled the banks to handle the payments electronically and inter-bank settlement faster and in large volumes. Customers can view the accounts, get account statements, transfer funds, purchase drafts by just making a few key punches. Availability of ATMs and plastic cards, EFT, electronic clearing services, internet banking, mobile banking and phone banking to a large extent avoid customers going to branch premises and has provided various services anytime anywhere.

Benefits of Internet Banking

- **Online bill payment :** Internet banking is frequently used for tax payments, Bill payments like of electricity, water, municipal and telephones. Many public sector companies are offering online payment services, for e.g. MTNL, BSNL etc. Indian Railways has started online reservation system for credit card and debit card holders. In coming future even persons having Internet bank account can book seat online at ease of their home.
- **Online brokerage :** Strong financial markets are always backbone of any economy. Through e-banking channels stock trading can reach to the people who want to invest their money in financial markets but due to time constraints they are not able to visit the broker. At Asian tigers like Korea and Taiwan 30% of the stock trading is done online. This will create more dynamic environment and there will be more choice for small investor for his investment. The small investor is not only dependent on government bonds or other fixed deposits schemes.
- **Online Account Management :** Consumer can manage their account online anytime anywhere, they can deposit / withdraw their money anywhere in country irrespective of the branch where their parent account is held. This will give greater security for travelling

business people to deposit money collected from traders/clients. ATMs is another mode of anywhere banking, consumer can use services of ATMs anywhere in country, reducing burden of carrying money while travelling. It will reduce the time delays and dependency on bank staff and timing of operations.

- **Smart Card Solutions :** Smart cards will give helpful in bringing governmental services and banking more closer to people. Farmer service centres, e-Seva are example of this initiative. Smart cards will be greater flexibility to users reducing the frauds and malpractices what debit cards and credit cards are not able to offer. On the other hand smart card can be used as identification card for number of other services like driving license, passport, election id card and other things.

Suggestions

Adaptation of Internet banking is most wide constraint of present environment as mostly consumers presently not aware about the use of Internet Banking, so it is important to recommend that banks should concentrate more on educating their customers about internet banking and the level of security. Customers who don't use internet banking have very negative opinion about the security issues. They think that online transaction is risky and frauds can take place. There is a need to promote online banking services and proper promotional activities by the banks. Seminars, Print media and newspaper can also be used to educate people about the benefits of internet banking. It is very important that customers should easily understand the content on the website and may trust on internet banking. Their queries should be solved as soon as possible. Another problem is that they have to face the problem of slow web interface which is not satisfactory from customer point of view. Sometimes network fails in the middle of their transactions, which makes them worried as to whether their transaction got completed or not.

Conclusion

From the research, it may be conclude that Internet Banking is an effective tool for banking services as Internet banking helps in overcoming the traditional geographical barriers as it reaches customers residing in different countries and it fulfill the main objective of the Modern Banking Service i.e. Any Time Any Where Banking. Today banking is known as innovative banking. A wide range of services are being offered by banks using the electronic media. Banking through internet has emerged as a strategic resource for achieving higher efficiency, control of operations and reduction of cost by replacing paper based and labour intensive methods with automated processes thus leading to higher productivity and profitability. In the competing business environment within the banking system generate more innovation in the fields of products, services, and market. Internet banking is highly comfort in our routine life, in fact this made our life simple and convenient and over all we are able to enjoy quality service smartly. These technologies created efficiency and time saving methods of conducting business for people

References

- Charabarty.K.C (April 1&15, 2014), "Indian Banking: The New Landscape", Southern Economist" Vol.52, No.23&24, PP.40-45. 7. Anu Varghese, Bainy George
- Muralidharan.D (2009), "Modern banking – Theory and Practice", PHI publisher.
- Kamath.K.R (2010), "Banking Sector: Emerging Challenges, Yojana, Vol.54, and PP.5-10. Official web site of Ministry of Information Technology, Government of India. http://www.mit.gov.in/eg/home.asp , 2003
- Nikhil Agarwal& A.M Sherry, "The Advent of Internet Banking in India and Related Legal Issues", 14th Annual Management Education Convention of Association of Indian Management Schools (AIMS), India, 23rd - 25th August 2002
- Unnithan Chandana, Paula Swatman, "eBanking on Internet - A Preliminary Research Comparison of Australian and Indian Experiences in Banking Sector", RMIT working paper series, 2001
- Mishra, "Internet banking in India", www.banknetindia.com. 2001
- Banking overview. www.banknetindia.com , 2003
- Uppal K R & Pooja E-delivery Channels in Banks , Professional Banker Magazine ; March; pp 62-70
- Vivek Gupta: E-Banking Global Perspectives ICFAI University Press, p. 8, 9

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

अब्दुलशाह अब्दाली के साथ हुए युद्ध में बालाजी बाजीराव पेशवा की पराजय का वर्तमान परिदृश्य में विश्लेषण

❑ हेमा सिंह दुबे*

शोध सारांश

1757 ई. में अब्दाली ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। उसने दिल्ली तथा मथुरा को लूटा। इसी बीच अब्दाली की सेना में हैजा फूट जाने के कारण अब्दाली नजीबुद्दौला को मीरबख्शी एवं गाजीउद्दीन को वजीर का पद सौंपकर पुनः लौट गया। उसने पंजाब का शासन तैमूरशाह को सौंपा। वह अपने साथ 12 करोड़ रूपये की सम्पदा ले गया। इस समय मराठे राजस्थान में व्यस्त थे। इसके बाद भी मराठे आपसी कलह को ठीक न कर सके। दिल्ली के शासक मुस्लिमों में भी दो भेद हो गये। उन में से जो तुर्रानी (विदेशी) थे उन्होंने अब्दुलशाह अब्दाली को पुनः भारत पर आक्रमण के लिए प्रात्साहित किया। मराठे आपसी कलह के कारण अपनी सेना को उस प्रकार उन्नत तकनीक तथा संसाधन उपलब्ध नहीं करा सके जिसकी तत्कालिक सेना को आवश्यक थे। फलतः उस महाविनाशकारी युद्ध में मराठों की बुरी तरह से हार हुई एवं विदेशियों का भारतीय धरती पर पुनः कब्जा ही हो गया। पूर्व में किये गये शोधों के आधार पर यह ऐतिहासिक चिन्तन वर्तमान राजनीति के लिए शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायी सिद्ध होगा ऐसा विस्वास है।

ईसा की 17 हवीं सदी के लगभग के काल को यदि यह कह दिया जाय कि भारत में मराठों का एकछत्रीय काल था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। किन्तु कुछ ही वर्षों के बाद ही वह महाशक्ति सम्पन्न संगठन वा राज्य नष्टप्राय हो गया। जो बाद में उभर न सका। दृष्टव्य है मराठों का साम्राज्य तथा उसके पतन के मुख्य कारण।

मराठों का अटक तक के प्रदेशों पर अधिकार

रघुनाथराव नामक पेशवा का सेनापति दिल्ली की तरफ भेजा गया। उसकी वीरता के कारण मराठों ने क्रमशः दिल्ली, कुंजपुरा, सरहिन्द, लाहौर तथा अटक पर अधिकार कर लिया एवं सिन्धु नदी के जल से अपने घोड़ों की प्यास बुझायी।

* एल. आई. जी. 2/14/667, नेहरू नगर रीवा (म.प्र.)

पानीपत की ओर–

मराठों द्वारा पंजाब से तैमूरशाह (अब्दाली का पुत्र) को खदेड़ने पर अब्दाली क्रुद्ध हो गया और युद्ध की तैयारियां करने लगा। उसने दिल्ली के निकट जनवरी, 1760 ई. में दत्ताजी को परास्त किया। उत्ताजी मारा गया। नजीब के अनुरोध पर अब्दाली मराठों को पूर्णतया कुचलने के लिये भारत में रूक गया। मल्हारराव होल्कर भी अब्दाली से परास्त होकर राजस्थान भाग गया।

इन समाचारों से क्रुद्ध होकर पेशवा ने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में विशाल सेना अब्दाली के विरूद्ध भेजी, जिसका औपचारिक नेतृत्व पेशवा के ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव को सौंपा गया।

अब्दाली ने घोषणा की कि वह मुस्लिम राज्य को मराठों की लूटमार से बचाने के लिये रूका हुआ है। सदाशिवराव ने प्रचार किया कि वे विदेशियों को भारत से खदेड़ने के लिये लड़ रहे हैं। अधिकांश मुस्लिम शासक अब्दाली के साथ हो गये। मराठों के साथ था, किन्तु सदाशिवराव के साथ मतभेद होने पर वह वापस लौट गया। इस तरह अब्दाली का पक्ष मजबूत हो गया।

सदाशिवराव ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। नवम्बर, 1760 ई. में अब्दाली की एवं मराठा सेनाएं आमने–सामने आ गईं। दोनों में निर्णायक युद्ध 14 जनवरी, 1761 ई. को हुआ।

युद्ध के कारण–

इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्न थे–

1. मराठे दिल्ली की राजनीति में हस्तक्षेप कर रहे थे। तुर्रानी (विदेशी) मुसलमानों ने अब्दाली को भारत पर आक्रमण के लिये आमंत्रित किया। अब्दाली इसके लिये तैयार था, क्योंकि वह पंजाब, मुल्तान एवं कश्मीर की सीमा को अपना मानता था।

2. मराठों की हिन्दू पद पादशाही की स्थापना के प्रयास से भयभीत होकर मुस्लिम शासकों ने अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया।

3. अब्दाली अपनी विशाल सेना के लिये धन प्राप्त करने हेतु भी भारत पर आक्रमण करना चाहता था।

4. मराठों ने अब्दाली के प्रतिनिधि नजीबुद्दौला को दिल्ली से खदेड़ दिया था। नजीब ने भी अब्दाली को भारत पर आक्रमण के लिये उकसाया।

5. मराठों ने अब्दाली के पुत्र तैमूरशाह को हराकर पंजाब पर अधिकार कर लिया था।

6. मराठों ने रूहेलों की शक्ति नष्ट कर दी थी। अतः रूहेलखण्ड के नवाब ने भी अब्दाली को भारत पर आक्रमण के लिये आमंत्रित किया।

इन कारणों से मराठों तथा अब्दाली में युद्ध अनिवार्य था।

युद्ध की घटनाएँ–

अब्दाली की सेना में 60,000 कुशल योद्धा एवं मराठों की सेना में 45,000 योद्धा थे। अब्दाली द्वारा मराठों की खाद्य–पंक्ति काट देने पर मराठों ने 14 जनवरी, 1761 ई. को प्रातः 9 बजे अफगानों पर आक्रमण कर दिया। डॉ. सेन के अनुसार–"मराठे अश्व सेना और तोपखाने की दृष्टि से श्रेष्ठ थे, शत्रु की पैदल सेना श्रेष्ठ थी और उसे उत्तम सेनानायकत्व का भी लाभ प्राप्त था।" आरंभ में मराठों का पलड़ा भारी रहा। जब मराठे लड़ते हुए थक गये, तो अब्दाली की रक्षित सेनाओं ने उन पर आक्रमण कर दिया। पेशवा का ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव मारा गया। अतः मराठे अपना संयम खो बैठे। सदाशिवराव भाऊ, तुकोजी सिन्धिया, जसवन्तराव मारा गया। महादजी सिन्धिया तथा मल्हारराव होल्कर भाग खड़े हुए। इस युद्ध में 28 हजार मराठे एवं 20 हजार अफगान मारे गये। 35,000 मराठे बन्दी बनाकर मार डाले गये। भीषण हत्याकाण्ड के बाद अब्दाली विजयी हुआ।

युद्ध के परिणाम एवं महत्त्व–

1. सरदेसाई के अनुसार पानीपत के तृतीय युद्ध का निर्णायक राजनीतिक परिणाम नहीं निकला और मराठों का विनाश नहीं हुआ। दूसरी तरफ जे.एन. सरकार का मानना है कि वह युद्ध एक निर्णायक युद्ध था। इसमें 75 हजार मराठे मारे गये तथा उन्हें ऐसा आघात पहुंचा कि वे वर्षों तक नहीं संभल पाये। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में कोई ऐसा परिवार नहीं था, जिसने इस युद्ध में अपना एक सदस्य न खोया हो।

2. इस पराजय से बालाजी को बहुत सदमा पहुँचा तथा 23 जून, 1761 ई. को उसकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद मराठा संघ में कुचक्र एवं षड्यंत्र होने लगे तथा उत्तर भारत में मराठा शक्ति कमजोर पड़ गयी।

3. इस युद्ध से पंजाब, मुल्तान, दिल्ली आदि राज्यों पर मुसलमानों का दृढ़ अधिकार स्थापित हो गया।

4. इससे लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य का अन्त हो गया तथा भारत में मराठा साम्राज्य की स्थापना की आशायें समाप्त हो गयीं।

5. इसके बाद मराठों ने पंजाब की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा।

6. इस पराजय से मराठों की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचा और उनका सम्मान कम हो गया। सरकार के अनुसार–''1761 ई. में वे अपन ही रक्षा नहीं कर सके, तो फिर औरों की क्या कर सकते थे।''

7. मराठों के कमजोर होने से अंग्रेजों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया। कालान्तर में उन्होंने मराठों को निर्णायक रूप से परास्त कर भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित किया।

पराजय के कारण–

मराठों की पराजय के प्रमुख कारण निम्न थे–

1. सैनिक शिविरों की दशा–

मराठों के शिविरों में अत्यधिक मात्रा में स्त्रियां, नौकर तथा जानवर होना हानिकारक सिद्ध हुआ। मराठा सेना में 45,000 योद्धा व 15,000 द्वितीय श्रेणी के सैनिक थे, जबकि अब्दाली की सेना में 60,000 योद्धा व 80,000 द्वितीय श्रेणी के सैनिक थे।

2. रसद का अभाव–

रसद के अभाव में भी मराठे परास्त हुए, जबकि अब्दाली की सेना के पास रसद की कोई कमी नहीं थी। भाऊ रसद का सही प्रबंध न कर सका। जब मराठों को लड़ने का आदेश मिला, तब उन्हें दो महीने से ठीक भोजन नहीं मिल पा रहा था। अतः उनकी पराजय निश्चित थी।

3. अनुशासन एवं सैन्य प्रबंध–

मराठों में एकता व अनुशासन नहीं था, जबकि अब्दाली की सेना पूरी तरह संगठित तथा अनुशासित थी।

4. तोपखाना–

मराठों की तोपें भारी थीं, जबकि अब्दाली का तोपखाना हल्का एवं गतिशील था। अब्दाली ने 1000 ऊंटों पर दो–दो हल्की तोपें लदवा दीं एवं मराठों की कमर तोड़ दी। अब्दाली की युद्ध–पद्धति एवं उसके साधारण तोपचियों की बन्दूकें मराठों से श्रेष्ठ थीं। अतः अब्दाली विजयी रहा।

5. अब्दाली का योग्य सेनानायक होना–

अब्दाली एक योग्य सेनानायक एवं असाधारण प्रतिभा का स्वामी था। सरदेसाई के अनुसार, ''सेनानायकत्व में अब्दाली अपने समय का अद्वितीय रणनीतिज्ञ था और भाऊ को आसानी से हरा सकता था। वह मराठा शिविर को पहुंचने वाली रसद सामग्री को रोकने में शनैः शनैः सफल हो गया तथा उसने अपनी शर्तों पर विरोधी को निराश होकर युद्ध करने के लिए बाध्य कर दिया।'' उसने सुरक्षित सेना रखकर युद्ध का पासा पलट दिया।

उसने मराठों की रसद आपूर्ति काट दी। दूसरी तरफ सदाशिवराव भाऊ योग्य सेनानायक होते हुए भी धैर्यवान नहीं था। अतः विश्वासराव की मृत्यु से वह अपना संयम खो बैठा और मराठों को परास्त होना पड़ा।

6. अन्य शक्तियों का असहयोग–

मराठों की लूटमार की नीति के कारण राजपूतों, जाटों आदि ने उनका साथ नहीं दिया। सूरजमल जाट पहले मराठों के साथ था, किन्तु सदाशिवराव से मतभेद होने पर वह युद्ध से पहले ही लौट गया। इसके विपरीत लगभग सभी मुस्लिम शासक अब्दाली के साथ हो गये। अतः मराठों की पराजय स्वाभाविक थी।

7. पेशवा की अनुपस्थिति–

पानीपत के युद्ध के समय पेशवा दक्षिण भारत में नींद ले रहा था। अगर वह रणक्षेत्र में उपस्थित होता, जो संभवतः युद्ध का परिणाम कुछ और होता।

बालाजी बाजीराव के चरित्र का मूल्यांकन–

पेशवा बालाजी बाजीराव सुन्दर, व्यवहारकुशल तथा कला एवं साहित्य का पोषक था। उसने पूना में सड़कें झरने एवं पार्वती पहाड़ी पर देव–देवेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया। वह एक योग्य शासन–प्रबंधक था। उसने राजस्व–व्यवस्था एवं न्याय–व्यवस्था में सुधार किया।

बाजीराव में कई दोष भी थे। वह अपने पिता के समान महान् सेनापति एवं कूटनीतिज्ञ नहीं था। वह होल्कर एवं सिन्धिया पर नियंत्रण न रख सका तथा राजपूतों व जाटों के साथ सम्बन्ध बिगड़ने से न रोक सका। वह परिस्थितियों के अनुसार नेतृत्व देने में असक्षम था। वह तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों को नहीं समझ पाया। इस प्रकार बाजीराव का चरित्र परस्पर विरोधी तत्त्वों का सम्मिश्रण था।

निष्कर्ष रूप में यह यह कह रहे हैं कि, इतिहास हमें सीख देता है कि, हम अतीत से सीख लें तथा वर्तमान को सुधार लें। वाजीराव पेशवा के साथ जिस प्रकार की घटनायें हुई तथा वह उससे अपने को सम्हाल नहीं सका जिसका परिणाम देश को भोगना पड़ा। आज भी वहीं हालात वनते जा रहे हैं, जबकि, उनका स्वरूप भिन्न है। आतंकवाद के आड़ में विदेशी सत्ता भारत को कब्जिआने की ताक में लगे हैं। समूचे देश के चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए कि, जिन कमियों के कारण साधन सम्पन्न होते हुए भी बाजीराव देश की संरक्षा न कर सके वहीं स्थिति का पुनरावृत्ति न हो जाय।

सन्दर्भ–

1. अफीक, शम्स सिराज तारीखे फीरोज शाही (कलकत्ता 1890 ई.)
2. अकबर नामा (कलकत्ता 1873–87 ई.)
3. अबुल फजल आईने अकबरी (नवल किशोर प्रेस 1892 ई.)
4. अब्दुल वाकी निहाबन्दी मआसिरे रहीमी (कलकत्ता 1910–31 ई.)
5. अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी
6. अब्दुल्लाह तारीखे दाऊदी (अलीगढ़ 1954 ई.)
7. अब्बास खां सरवानी तोहफयें अकबरशाही अथवा तारीखे शेरशाही (अलीगढ़, इलाहाबाद, डॉ. परमात्मा शरण एवं बाडलिएन की हस्तलिपियाँ)
8. अमीन अहमद राजी, हफ्त इकलीम (अलीगढ़ हस्तलिपि)
9. अमीर खुर्द सैयिद मुहम्मद मुबारक सियरूल औलिया (देहली 1884 ई.)
10. अमीर खुसरो वस्तुल हयात (अलीगढ़), खजायनुल फतह (अलीगढ़)

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

सतना जिले का खनिज-चूने का पत्थर : एक भौगोलिक अध्ययन

❑ डॉ. अशोक कुमार शर्मा*

शोध सारांश

चूने का पत्थर कोल केरियात चट्टानों का प्रमुख प्रतिनिधि है, इसमें कैलशियम कार्वोनेट की प्रधानता होती है, इसके अतिरिक्त अन्य बालू भृण्मय तथा लौहमय पदार्थ होते हैं, जिन चट्टानों में मैगनेशियम कार्बोनेट होता हे, ऐसे चूने के पत्थर को डोलामाइट कहते हैं। यदि चूने के पत्थर का रूपान्तरण होता है, तो इस चट्टान में रवे बन जाते हैं तथा रूपान्तरित चट्टान को संगमरमर कहते हैं।

प्रस्तावना

सतना जिले में खनिजों की दृष्टि से चूना पत्थर का विशेष महत्व हैं इस जिले की भौतिकी संरचना विन्य युग की भाण्डेर क्रम की और, जिसमें डोलोमाइट तमक चट्टानों की बहुतायात है। समपूर्ण खनिजों के अत्पादन में मूल्य की दृष्टि से चूना पत्थर 94.538ः है। विभिन्न वर्षों में चूना पत्थर का उत्पादन सारणी क्रमांक 5.2 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक 1

वर्श 1989 में सतना जिले में प्राप्त प्रमुख खनिज संसाधन

क्र.	खनिज	उत्पादन मीट्रिक टन	उत्पादन मूल्य लाख रूपये	कुल खनिज का उत्पादन का प्रतिशत	उत्पादन मूल्य का प्रातिशत
1.	चूना पत्थर	4190573	2336.35	87.437	94.638
2	ओकर बाक्साइट	28200	16.54	0.682	0.769
3	छुट्टी	88200	3.97	1.820	0.260
4.	लेटराइट	20260	13.17	0.41	0.632
5.	पत्थर ढोका	13350	3.34	0.275	0.135
6.	रेत	148030	19.46	4.055	0.787
7.	मिट्टी	311850	68.60	6.436	2.775
8.		5004	1.15	0.103	0.046
9.	मुरूम	39812	0.75	1.821	0.354
	योग	4845319	2471.33	100.00	100.00

* भूगोल विभाग, शासकीय महाविद्यालय जैतपुर –जिला शहडोल (म.प्र)

सारणी क्रमांक 2

सतना जिले में चूने पत्थर का विभिन्न वर्षों उत्पादन में

क्र.	वर्ष	उत्पादन (मी. टन में)	मूल्य(लाख रूपये में)
1.	1984	3405400	680.90
2.	1985	4139028	1087.12
3.	1986	4636190	1170.54
4.	1987	6625703	3410.51
5.	1988	4051455	1012.74
6.	1989	4190573	2336.35

स्रोत– जिला खनिज अधिकारी, सतना(म.प्र.) वर्ष 1989

भौगोलिक पृष्ठभूमि

उक्त सारणी से स्पष्ट होता हे कि 1984 आधार वर्ष की तुलना में 1987 तक क्रमशः चूना का उत्पादन वृद्धि पर था, किन्तु 1988में 1987 में पिछले पाँच वर्षों में सर्वाधिक इस खनिज का उत्पादन किया गया, जो (परिशिष्ट क्रमांक 24) 66225703 मैट्रिक टन उत्पादन किया। विगत पाँच वर्षों में चूना पत्थर से प्राप्त आय सारणी क्रमांक 5.2 के अनुसार 1987 में 3410.51 लाख रूपये एवं 1989 में 2336.87 लाख रूपये में रही।

इस जिले में चूना पत्थर उत्पादन प्रायः सभी तहसीलों में किया जाता है। मैहर,रघुराजनगर नागौद तहसीलों (मानचित्र क्रमांक 25) का उत्पादन किया जाता है, सम्पूर्ण जिले में 5560.2472 हेक्टेयर क्षेत्रफल में इस खनिज का दोहन किया जा रहा है।

विश्लेषण

प्रमुख उत्पादन क्षेत्र मैहर तहसीलः सतना जिले के मैहर तहसील में, जिसका सिलसिला अटरा में नागौद तहसी तक फैला है। भाण्डेर श्रेणी में स्थित उन्तम किस्म की चूना पत्थर की खदानें पाई जाती है।जिनमें कुल उत्पादन का 67.90ः उत्पादन होता है।

प्रमुख उत्पादन क्षेत्र एवं उनके क्षेत्रफल सारणी क्रमांक 3 से प्रदर्शित होता है। सारणी क्रमांक 3 में प्रदर्शित चूना पत्थर क्षेत्र के उतपादन स्थल पर ही चूना उद्योग के विविध उद्योग स्थापित हो गये हैं।

सारणी क्रमांक 3

मैहर तहसी के प्रमुख चूना पत्थर की खदानें एवं उनके क्षेत्रफल

क्र.	नाम खदान	क्षेत्रफल हेक्टेयर में
1.	भटूरा	107.324
2.	बठिया	832.489
3.	अमिलिया लभवार कठिया तिघरा	475.334
4.	भदनपुर	462.5622
5.	देवरी	308.885
6.	पहाड़ी	148.218
7.	मदनपूर	109.21
8.	पिपरहट	87.59
9.	लटागाँव	41.172
10.	वरहिया	19.744
11.	नादन शारदा प्रसाद	17.726
12	भठिया	13.123
13.	वरफुला	11.507
14.	तिलौरा,सिलौरी,पुरवा	193.252
	योग	2828.1362

स्रोत– कार्यालय, जिला खनिज अधिकारी, सतना (म.प्र.) 1989.

रघुराज नगर तहसील

रघुराज नगर तहसील इस जिले का दूसरा प्रमुख चूना पत्थर खनिज का उत्पादक तहसील है, जो सम्पूर्ण जिले में 30.480 प्रतिशत चूना खनन का कार्य होता है। 33 से स्पष्ट होता है कि इस तहसील के प्रमुख केन्द्र पन्ना पहाड़ी से लगे हुए क्षेत्र हैं। प्रमुख उत्पादन केन्द्र एवं खदानों के क्षेत्र का सारणी क्रमांक 5.4 के अनुसार अमरिया, जमोड़ी, मोहन्ता, सकुरिया, सरवाहता, लड़ेरा, लोहरा, तिरपुरवा, हिनोती, रामस्थान, सतरी, वरा खुर्द, बम्हौरी आदि हैं।

सारणी क्रमांक 4

रघुराज नगर तहसील के प्रमुख चूना पत्थर की खदानें 1990 के आधार पर

क्र.	नाम खदान	क्षेत्रफल हेक्टयर में
1.	अमरिया,जमोड़ी मोहन्ना, सकुरिया, सरवाहना, सरवाहना, लड़ेरा, लोहरा, विरपुरवा	1183.830
2.	हिनौती	25.709
3.	रामस्थान	54.190
4.	सतरी	34.522
5.	बम्हौरी	81.015
6.	पुरैना,कारोकला, नराना, भटिया खुर्द मैना,भखुना कला	1000.000
7.	भदनपुर	44.950
8.	सरभंगा	13.920
9.	तिहाई	8.090
10.	सलेहा	9.200
11.	मनकहरी	13.761
12.	डोगरहट	61.570
13.	सतेरा	20.425
14.	सतरो	38.145
15	नरा खुर्द	16.193
	योग	2580.640

स्रोत :– कार्यालय, जिला खनिज अधिकारी, सतना (म.प्र.)

नागौद तहसील

नागौद तहसील में भाण्डेर श्रेणी एवं जसो की पहाड़ियों में स्थित खदानों से चूना पत्थर (मानचित्र क्रमांक 33) निकाला जाता है। खनिज संरचना की दृष्टि से नागौद तहसील में पाया जाने वाला यह खनिज पदार्थ मैहर तहसील के चूना पत्थर के ही तुल्य है। मानचित्र क्रमांक 33 से स्पष्ट होता है कि दक्षिण पश्चिम भाग में इस तहसील की अधिकांश खदाने स्थित पायी जाती है। खनिज क्षेत्र में ही चूना उद्योग के मुख्य क्षेत्र भी स्थित पाये जाते है। जसो परसमनिया दुरेतिया राजस्व निरीक्षक मडल में प्रमुख रूप से इसका उत्पादन किया जाता है। सारणी क्रमांक 5 में प्रमुख चूना पत्थर के उत्पादक क्षेत्र वर्णित है।

सारणी क्रमांक 5

नागौद तहसील के चूना पत्थर उत्पादन क्षेत्र एवं उनका क्षेत्रफल।

क्र.	नाम खदान	क्षेत्रफल हेक्टेयर में
1.	अम्होरी	37.028
2.	बम्होर	48.560
3.	धनिया	19.114
4.	जैतपुर	7.682
5.	पिथौरागढ़	6.553
6.	सलैया	8.090
7.	पठिया	3.990
8.	पिथौराबाद	16.187
9.	जैयतपुर	1.967
10		1.720
योग		151.471

स्रोत :– कार्यालय,जिला खनिज अधिकारी,सतना (म.प्र.) 1989–90

निष्कर्ष

इस जिले में बाक्साइट उत्पादन के कुड सीमित क्षेत्र पाये जाते हैं, जिले में रघुराज नगर, मैहर, रामपुर बघेलान तहसीलों में बाक्साइट निकाला जाता है।(परिशिष्ट क्रमांक 24), अमरपाटन और नागौद तहसीलो में तत्र कहीं मिलता है। (मानचित्र क्रमांक 33) सम्पूर्ण जिले में 244.145 हेक्टर क्षेत्रफल में इस खनिज का दोहन किया जा सकता हैं।

संदर्भ स्रोत–

1. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, सिंचाई विभाग, जिला सतना (मध्यप्रदेश)
2. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, सिंचाई विभाग, जिला सतना (मध्यप्रदेश)
3. Census Book of India, District Rewa, 1961.
4. मेगस्थनीज एण्ड ओरियन, पृष्ठ 20.
5. बॉध – ढालू– कृषित भूमि में वर्षा जल को रोकने हेतु छोटे–छोटे जलाशय।
6. वौरिआ – एक प्रकार का कुऑ, जिसमें जल–तल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियॉ बनी होती (बौली) हैं। तथा जो लम्बा चौड़ा काफी होता है, इसे बौली भी कहते हैं।
7. परिशिष्ट–4.
8. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, बाणसागर की रिपोर्ट पर आधारित जानकारी, वर्ष 1975.
9. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, बाणसागर की रिपोर्ट पर आधारित जानकारी, वर्ष 1975.

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

सतना जिले के प्रवाह प्रणाली का भौगोलिक अध्ययन

❑ डॉ. अशोक कुमार शर्मा*

शोध सारांश

प्राचीन काल से सभयता एवं संस्कृतियों की उत्पत्ति एवं विकास में नदियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्व की समस्त सभ्यताओं नदी घाटियों के मैदानी भागों में विकसित होकर पुष्पित एवं पल्लवित हुई हैं। भारतीय संस्कृतियों में नदियों की गौरव गाथा इनके महत्व को प्रदर्शित करती हैं।

प्रस्तावना

जल प्रवाह ढ़ाल का अनुगमन करता है। उच्चावच (मानचित्र क्रमांक 6) से विदित होता है, सतना जिले का ढाल पूर्वोत्तर, उत्तर एवं दक्षिण की ओर पाया जाता है। अतः इस जिले का भू–भाग गंगा बेसिन के अन्तर्गत होते हुए क्रमशः टमस, यमुना, एवं सोन उपबेसिन में विभक्त हैं। टमस जिले की प्रमुख नदी है। इसके अतिरिक्त कोई बड़ी नदी तो नहीं है किन्तु विभिन्न छोटे–छोटे नाले वर्षा के दिनों में अपने भयंकर स्वरूप के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं।[1]

भौगोलिक पृष्ठभूमि

धरातल दृष्टि से विकसित घटियों को निम्नांकित विभागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अनुवर्ती घाटी

अनुवर्ती घाटी अपने क्षेत्र की मुख्य नदी होती है, जो ढाल के अनुरूप अपने पथ को निर्धारित करती है। सतना जिले की प्रमुख अनुवर्ती नदियों में टोन्स (6752 वर्ग कि.मी.), सोन (600 वर्ग कि.मी), मंदाकिनी नदियाँ है। परसमनियाँ पठार से निकलने वाले नाले केन नदी तंत्र में स्थित हैं। किन्तु अध्ययन की दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं हैं।

2. परवर्ती घाटी

अपरदनकारी शक्तियों के द्वारा धरातल विखण्डित होकर कई उपभाग में विभक्त हो जाता है। और उस क्षेत्र की अपनी अलग प्रवाह प्रणाली विकसित होती है। जो मुख्य धरातल के ढाल के दिशा के प्रतिकूल भी हो सकते है। फलतः समस्त क्षेत्र का प्रवाह सहायक जलधाराओं के रूप में अनुवर्ती नदी के द्वारा सम्पन्न होता है। अध्ययन क्षेत्र में टमस नदी की परवर्ती धाराओं में सतना, असरावल, सिमरावल, कुशरावल, लिलजी, करियारी आदि हैं। इसी प्रकार सोन नदी में एवं मंदाकिनी की परवर्ती नदी पयस्वनी नदी हैं।

* भूगोल विभाग, शासकीय महाविद्यालय जैतपुर –जिला शहडोल (म0प्र0)

3. प्रत्यानुवर्ती नदी

धरातलीय विषमता बढ़ाने से प्रत्यानुवर्ती ध ाारायें विकसित होती हैं। प्रत्यानुवर्ती नदियाँ परवर्ती नदियों की सहायक होती हैं निष्कर्ष रूप में अनुवर्ती घाटी की सहायक घाटियॉ घाटी तथा परवर्ती घाटी की सहायक प्रत्यानुवर्ती घाटियॉ होती है। सतना जिले के प्रमुख प्रत्यानुवर्ती घाटियॉ में गोरसारी, अमरान आदि हैं।

सतना जिले में जहाँ लगभग 100 से. मी. वर्षा होती है, वर्षा के दिनों में यहाँ के प्रत्यानुवर्ती नदियों में जल की मात्रा आकस्मिक रूप से बढ़ जाती है, जबकि वर्षा के बाद धीरे–धीरे जल स्तर घटने लगता है। और ग्रीष्म ऋतु में वे पूर्णतः सूख जाती हैं। सिर्फ अनुवर्ती नदियॉ ही सतत वाहिनी हैं, किन्तु ग्रीष्म ऋतु में उनका जल स्तर भी काफी घट जाता है।[2]

टमस अथवा टोन्स नदी

यह सतना जिले की प्रमुख नदी है। पुराणों एवं रामायण में इस नदी को ''तमसा'' अथवा ''परनास'' के नाम से सम्बोधित किया गया है। यवन देश के सुप्रसिद्ध राज प्रतिनिधि एवं प्रसिद्ध यात्री 'मेगास्थनीज' (300 बर्ष ई.पू.) ने इसका नाम पीनास रक्खा है।[3] ब्रिटिश काल में इसका नाम टमस से बदलकर टोन्स कर दिया गया और यही अंग्रेजी नाम प्रायः समस्त भूगोल वेन्ताओं के बीच लोकप्रिय हो गया। यह नदी जिले के दक्षिण–पूर्व भाग में स्थित भूतपूर्व मैहर रियासत से झुकेही स्टेशन (मानचित्र क्रमांक 6) ($23^0 59^0$ उत्तर तथा $60^0 29^0$ पूर्व) के समीप से निकलती है। नदी श्रोत ''तमसा कुण्ड'' नामक एक तालाब है, जो कैमोर पर्वत पर समुद्रतल से 670 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यहॉ पर यह एक पतली जलधारा के रूप में प्रवाहित होती है किन्तु आगे चलकर इसमें अनेक नदी नाले मिलते हैं। ये नाले पूर्व तरफ कैमोर से तथा पश्चिम में भाण्डेर पहाड़ियों से निकलते हैं।

टमस अपवाह तंत्र की प्रमुख सहायक नदियॉ[4]

सारणी क्रमांक 1

क्रमांक	सहायक नदी का नाम	टमस के साथ संगम की, टमस श्रोत से दूरी	सहायक नदी की लम्बाई किलोमीटर
	दक्षिणी तटीयः		
1	सरैज्जी	50–60	40
2	मगरघा	120	25
3	नरनार	150	19
4	करियारी	180	35
	वाम तटीय :		
5	गुरसैर	50	30
6	बरूआ	70	27
7	सतना	100	70
8	सिमरावल	126	48
9	असरावल	170	30

दोनों पहाड़ियों के बीच स्थित सकरी लगभग 8 से 10 कि.मी. मैदानी नदियॉ प्रवाहित होती हैं। उत्तर–पश्चिम की ओर से मिलने वाली नदियों एवं नालों में कुसेरी, गुरसे, पकेरिया, तथा दक्षिण–पूर्व की ओर से सैनेनेजी, सनाई तथा बगरहा इत्यादि मुख्य हैं।

इनके अतिरिक्त अनेक बरसाती नाले प्रायः एक दूसरे के समानान्तर प्रवाहित होते हुए इससें मिलते हैं। प्रारम्भ में नदी की दिशा दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व को है, किन्तु लगभग 50 कि.मी. बहने के पश्चात् ग्राम सगमनियॉ के पास (जहॉ पश्चिम से गुरसेर नदी आकर मिलती है) इसकी प्रवाह दिशा उत्तर को उन्मुख हो जाती है। तदनन्तर यह नदी नागौद एवं रघुराजनगर तहसील की सीमा बनाती हुई उत्तर की ओर मुड़ जाती है। रघुराजनगर तहसील के ग्राम माधवगढ़ ($24^0 34^0$ उत्तर तथा 81^0 पूर्व) के निकट यह पुनः उत्तर–पूर्व

की ओर उन्मुख होकर रीवा जिले की किरमौर तहसील में प्रवेश करती है।

इसी भाग मे सतना सिमरावल असरावल (मानचित्र क्रमांक 6) जैसी वामवती तथा मगरछा नरनार एवं इसके दक्षिणवर्ती सहायक नदियॉ करिवारी मिलती हैं। इसके बाद 60 कि.मी. उत्तर–पूर्व की तरफ प्रवाहित होने के पश्चात् टमस नदी रीवा पठार के उत्तरी सिरे पर पहुॅचती हैं। जहॉ पुरवा ग्राम के निकट ''पुरवा जलप्रपात'' बनाती है। यह प्रपात 65 मीटर गहरा व 165 मीटर चौड़ा हैं। यहॉ पर टमस तथ उसकी सहायक नदियॉ जैसे ही पठार से मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती हैं, कई प्रपातों का निर्माण करती हैं। इस प्रकार प्रपातों की एक मेखला जैसी बन जाती है। जिसमें पुरवा, क्योंटी, चचाई आदि रीवा जिले में स्थित हैं। ये प्रवाह संयुक्त राज्य अमेरिका के अप्लेशियन पठार के सिरे में स्थित प्रपात पंक्ति का स्मरण कराते है। इन प्रपातों का जल विद्युत उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है किन्तु अभी तक यथेष्ट उपयोग नहीं हो सका हैं टमस नदी द्वारा निर्मित ''पुरवा जलप्रपात'' काफी मनोरम हैं।

विश्लेषण

सतना नदी

यह जिले के हृदय स्थल भाग में प्रवाहित होती है। इस नदी का उद्गम पन्ना पहाड़ियों के रामपुरा ग्राम से ($24^0 40^0$ उत्तरी तथा $80^0 12^0$ पूर्व) के निकट लगभग 514 मीटर की ऊॅचाई से होता है, जो क्षैतिज रूप से जिले को लगभग दो भागों में विभक्त करती है। तथा बाद में टमस नदी में मिल जाती है।

प्रारम्भ में इसकी प्रवाह दिशा उत्तर से दक्षिण तथा बाद में अत्तर–पूर्व को है। किन्तु ग्राम इटवा के पास यह पूर्व को उनमुख हो जाती है। पिपौरा ग्राम के पास यह नदी सतना जिले में प्रवेश करती हुई लगभग 6 कि.मी. की दूरी तक सतना–पन्ना जिला सीमा का भी निर्धारण करती है। सतना जिले में इसकी प्रवाह दिशा सामान्य तथा उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व को है। आगे चलकर यह नदी जिले की दो तहसीलों (रघुराज नगर एवं नागौद) के बीच लगभग 30 कि.मी. की दूरी तक सीमा निर्धारण का कार्य करती है। नागौद तथा सोहावल इस नदी के पूर्वी तट पर स्थित हैं। इस नदी में वर्षा ऋतु में बाढ़ आती है, किन्तु किसी विशिष्ट भयानक बाढ़ का प्रभाव नहीं देखा गया हैं। सन् 1930 में सबसे बड़ी बाढ़ का उल्लेख मिलता है। जिससे समीपवर्ती ग्रामों में कुछ घर बाढ़ के कारण ढह गये थे।[5] यद्यपि गर्मियों में इस नदी में जल प्रवाह बहुत कम हो जाता है तथापि नदी में बर्ष, भर पानी प्रवाहित होता रहता हैं।

सारणी क्रमांक 2[6]

सतना जिले में पूर्व मानसून ऋतु में जल प्रवाह

दिनांक	प्रवाह क्यूबिक मीटरों में ग्राम बेला के निकट	प्रवाह क्यूबिक मीटरों में हरदुआ के निकट
21–5–90	0.0554	0.2090
1–6–90	0.0100	0.01683
15–6–90	0.1680	0.3990

इसमें उत्तरी भाग से आकर मिलने वाले प्रमुख नाले मोहना, मंजारी तथा कुटिया इत्यादि हैं। इसी प्रकार दक्षिणी भाग से भी कई नदी नाले मिलते हैं। जिनमें उल्लेखनीय नदी अमरान नदी है। अन्त में यह नदी सतना नगर के 6 कि.मी. पूर्व–दक्षिणी ग्राम के निकट टमस नदी में मिल जाती है।

अमरान नदी

यह जिले के पश्चिमी भाग की सबसे उल्लेखनीय नदी है, जो नागौद से 35 कि.मी. दक्षिण में ग्राम कामताला से निकलती हैं। यहॉ धरातल की ऊॅचाई 640 मीटर है। इसके बाद गुढ़ा से लेकर ग्राम सक्सेना तक यह पठारी क्षेत्र से ही प्रवाहित होती है। ग्राम सक्सेना के पास भूमि का ढाल अपेक्षाकृत अधिक है तथा धरातल कटा फटा है। यहॉ पर चार–पॉच अन्य नाले आकर मिल जाते हैं इसके बाद यह नदी एक सकरी मैदानी पेटी से प्रवाहित होती हैं। ग्राम रामपुर के पास गरारा नाला मिलता है। प्रारम्भ में यह दक्षिण से उत्तर–पश्चिम को बहती है किन्तु मझगवां ग्राम के पास उत्तर–पूर्व को उन्मुख हो जाती है। नागौद ($24^0 35^0$ उत्तर तथा $80^0 35^0$ पूर्व) से 2 कि.मी. दक्षिण में उरदहा नाला मिलता है। इस नाले में भी साल भर जल रहता हैं। इसके बाद नदी का पथ उत्तर की ओर उन्मुख हो जाता है। तथा लगभग 12 कि.मी. उत्तर की ओर ग्राम पथकौनी के पास सतना नदी में मिल जाती है। यह नदी भी अपनी प्रौढ़वस्था में हैं। किन्तु ग्रीष्म ऋतु में जल प्रवाह कम रहता है।

सारिणी क्रमांक 3[7]

अमरान नदी में पूर्व मानसून ऋतु में जल प्रवाह

दिनांक	प्रवाह क्यूबिक मीटर में
21–5–90	0.1246
16–6–90	0.1566

सिमरावल नदी

यह टमस की एक अन्य प्रमुख वामवर्ती सहायक नदी है। यह नदी रघुराज नगर तहसील के मध्यवर्ती भाग से प्रवाहित होती है। यहॉ धरातल समतल एवं उपजाऊ है। यह नदी भी पन्ना पहाड़ियों में स्थित परिवार ग्राम के पास से निकलती है। प्रारम्भ में इसकी प्रवाह दिशा उत्तर से दक्षिणवर्ती लगभग 16 कि.मी. है। प्रवाहित होने पर ग्राम रामपुर के पास यह पूर्व दिशा की ओर उन्मुख हो जाती है। नदी के उद्गम स्थल की ऊॅचाई 415 मीटर है, उच्च भू–भाग है। अन्य कई नाले भी निकलते है, जो मैदानी क्षेत्र में आकर इस नदी में मिल जाते हैं। कोठी ($24^0 45^0$ उत्तर तथा $80^0 45^0$ पूर्व) ग्राम के दक्षिण में ग्राम 'सरोही' के निकट पनागर नाला भी अपने कई सहायक नालों का जल लेकर इस नदी में मिलता है। जैतवारा रेलवे स्टेशन क आगे इसकी धारा दक्षिण–पूर्व की ओर उन्मुख हो जाती है। तूरी ग्राम के पास हटिया एक अन्य प्रमुख नाला उत्तर दिशा से आकर मिल जाता है। यह इस क्षेत्र का सबसे बड़ा नाला है, जो बॉदा की सीमा से केवल 2 कि.मी. दक्षिण खजूरी ग्राम से निकलता है। और लागभग 45 कि. मी. की दूरी पारकर इस नदी में मिल जाता है। इस नदी के दोनो ओर नालीदार भूमि अपरदन हुआ है। फलतः यहॉ कई खण्ड मिलते हैं। अन्त में अतरहार ग्राम के निकट यह नदी टमस नदी में मिल जाती है।

असराल नदी

यह सतना जिले के उत्तर–पूर्वी भाग की प्रमुख नदी हैं। इसका उद्गम (मानचित्र क्रमांक 6) बॉदा (उत्तर प्रदेश) से 5 कि.मी. दक्षिण रेढ़रा ग्राम से होता है तथा दक्षिण–पूर्व दिशा में लगभग 40 कि.मी. प्रवाहित होने के बाद टमस नदी में मिल जाती है। इस नदी का संगम सिमरावल टमस संगम से केवल 3 कि.मी. उत्तर–पूर्व की ओर हैं। इस नदी के भी दोनों तटों के सहारे काफी भूमि अपरदन हुआ है।

बर्षा, ऋतु में इसमें बाढ़ आती है। नदी क सहारे जलदरियों का विकास हो गया है।

बीहर नदी

रीवा पठार में टमस नदी के बाद दूसरी महत्वपूर्ण, नदी बीहर है। यह नदी कैमोर पहाड़ियों में स्थित (मानचित्र क्रमांक 6) मोहवास ग्राम ($24^0 27^0$ उत्तर तथा $80^0 58^0$ पूर्व) से निकलती है। यह ग्राम अमरपाटन तहसील मुख्यालय से केवल 14 कि.मी. दूर स्थित है। यह नदी प्रारम्भ में ग्राम खुससारा तक लगभग 5 कि.मी. दूरी उत्तर में, उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। तत्पश्चात ग्राम साह के पास इसकी प्रवाह दिशा उत्तर–पूर्व की ओर उन्मुख हो जाती है। तदनन्तर यह कैमोर पहाड़ियों के समानान्तर दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व को प्रवाहित होती है। इसके प्रवाह मार्ग में दक्षिणावर्त पहाड़ियों से अनेक जलधारायें एवं नाले आदि आकर मिल जाते हैं। उत्तरी–पश्चिमी भाग से अनेक नाले मिलते हैं। ग्राम तमरा मुकुन्दपुर के आगे यह अत्तर की ओर प्रवाहित होती हुई रीवा जिले में प्रवेश करती है। यही पर मुड़सर ग्राम के पास लिलजी नाला पश्चिम की ओर से मिलता है। तदनन्तर रीवा नगर में इसकी दूसरी प्रमुख सहायक नदी ''बिछिया'' मिलती है। रीवा से आगे अत्तर की ओर 43 कि.मी. प्रवाहित होने के बाद यह नदी प्रसिद्ध ''चचाई प्रपात'' का निर्माण करके टमस नदी में मिल जाती हैं।

बीहर नदी भी विकास क्रम की दृष्टि से अपनी प्रौढ़ावस्था में है। वर्षा, ऋतु में बाढ़े भी आती हैं। जिससे कभी–कभी तटवर्ती ग्राम व नगरों को खतरा उत्पन्न हो जाता है। 12 जुलाई सन् 1922, 1939 तथा 6 अगस्त 1963 को भयानक बाढ़ो से इस नदी के समीपवर्ती क्षेत्रों को जन–धन की काफी हानि उठानी पड़ी थी।[8]

करियारी नाला

करियारी नाला रीवा तथा सतना जिलों के मध्य लगभग 20 कि.मी. की दूरी तक सीमा निर्धारण करता है। इसका उद्गम रीवा–सतना राजमार्ग, पर स्थित रामपुर बघेलान से 6 कि.मी. पूर्व ग्राम ''रिमार'' ($24^0 30^0$ उत्तर तथा $80^0 11^0$ पूर्व) हैं। तदनन्तर इसमें दायीं एवं बायीं तरफ से कई नाले आकर मिलते हैं। फलस्वरूप वर्षा ऋतु में इस नाले में प्रायः बाढ़े आती है। समीपवर्ती ग्रामों यह नाला बाढ़ के लिए कुख्यात हैं। ग्रीष्म ऋतु में जल–धारा टूट जाती है। इस समय यह अपनी युवावस्था में होता है। इन नालों के द्वारा यहॉ भूमि अपरदन भी हो रहा हैं ग्राम धोवा ($24^0 42^0$ उत्तर तथा $81^0 12^0$ पूर्व) के निकट यह टमस नदी में मिल जाता है।

नार नाला

यह नाला टमस नदी बेसिन (मानचित्र क्रमांक 6) का दूसरा महत्वपूर्ण दक्षिणवर्ती नाला है। करियारी नाले के लगभग 7 कि.मी. परिश्चम में उसके समानान्तर प्रवाहित होता है। इसक उद्गम ग्रेट डैकन रोड के (राष्ट्रीय राजमार्ग, क्रमांक 7) सहारे रामपुर बघेलान विकास खण्ड के अन्तर्गत खोकम ग्राम ($24^0 40^0$ उत्तर तथा $81^0 80^0$ पूर्व) से होता हैं। इसमें उत्तर की तरफ फुलवार, कल्ला, समोगढ़, पूना आदि ग्रामुं से अनेक नाले आकर मिलते हैं। रामपुर बघेलान के पास यह नाला उत्तर–पश्चिम की ओर उन्मुख हो जाता है। अन्त में 36 कि.मी. की दरी पार कर यह नाला गोरैया ग्राम ($24^0 22^0$ उत्तर तथा $81^0 2^0$ पूर्व) में टमस नदी में मिल जाता है। यहॉ पर टमस नदी को पार करने के लिए नावों का प्रयोग किया जाता हैं।

मगरघा नाला

करियारी एवं नार नालों के लगभग समानान्तर प्रवाहित होने वाला मगरघा नाला भी उल्लेखनीय

है। इस नाले में बर्ष भर जल रहता है। यह अमरपाटन तहसील के ''अन्धी'' एवं ''अन्धा'' पहाड़ियों के उत्तरी ढ़ालों से 600 मीटर की ऊँचाई से निकलता हैं। इसमें उत्तर की तरफ असरार, कोनिया, खरिवा, आदि ग्रामों से कई नाले आकर अपना जल समर्पित करते हैं। इसमें मुख्यतया पश्चिम की तरफ स्थित नरों पहाड़ी से कई छोटे–छोटे नले आकर मिलते है। जिनके द्वारा पहाड़ी ढालों में पर्याप्त भूमि अपक्षरण है। अन्त में बन्दरखा ग्राम के पास टमस नदी में मिल जाता है।

सिरेन्जी नाला

यह जिले के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित मैहर तथा अमरपाटन तहसीलों में प्रवाहित होता हुआ दक्षिण–पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर प्रवाहित होता हुआ टमस नदी में मिल जाता है। इस नाले का उद्‌गम बीहर नदी के उद्‌गम में केवल एक कि. मी. दूर हैं। किन्तु बीहर नदी पूर्व की ओर तथा सिरेन्जी नाला पश्चिम की ओर उन्मुख हो गया। लगभग तीन किलो मीअर बहने के बाद तरवारा ग्राम के पास यह उत्तर की ओर मुड़ जाता है किन्तु लगभग 2 फलांग की दूरी तय करके पुनः यह पश्चिम की ओर प्रवाहित होता है। इन नदियों में दक्षिण की ओर कैमोर श्रेणी से लगभग तीन दर्जन छोटे–छोटे नाले आकर अपना जल समर्पित करते हैं। इन नालों में केवल बर्षात में इनके द्वारा पहाड़ी ढालों में भमि का नालीदार अपरदन हुआ, एवं वर्षा ऋतु में पानी प्रवाहित होता है। अन्त में यह नाला ग्राम इखवा ($24^0 16^0$ उत्तर तथा $90^0 40^0$ पूर्व) में टमस नदी में मिल जाता है।

बरूआ नाला

यह टमस नदी में दक्षिण–पश्चिम की ओर से मिलने वाला महत्वपूर्ण नाला है। यह जिले के नागौद तहसील के दक्षिणी भाग में प्रवाहित होता हैं। इसका उद्‌गम माण्डेर पहाड़ियों में स्थित बसहा ग्राम ($24^0 17^0$ उत्तर तथा $80^0 36^0$ पूर्व) से होता हैं। प्रारम्भ में इसके प्रवाह की दिशा दक्षिण से उत्तर की ओर है। यहॉ पर बरौली पर समनियॉ मगदरहा आदि ग्रामों की ओर से लगभग एक दर्जन नाले आकर इसमें मिलते हैं। परसमानियॉ ग्राम के आगे इस नाले की प्रवाह दिशा पूर्व की ओर मुड़ जाती है, यह एक सकरी मैदानी पट्‌टी से होकर प्रवाहित होता है। ऊँचेहरा ($24^0 25^0$ उत्तर तथा $80^0 47^0$ पूर्व) इस नाले के पूर्वी तट पर बसा है। यहॉ वर्ष भर पानी बहता है। ऊँचेहरा नगर के बाद यह नाला पुनः दक्षिण की ओर घूमकर पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होता है। अन्त में यह कैरेवा ग्राम के निकट टमस नदी मे मिल जाता है। इस नाले के दोनों तटों पर भूमि अपरदन प्रभावशील है।

गुरसेर नाला

यह नाला जिले की मैहर (मानचित्र क्रमांक 6) तहसील के अन्तर्गत आता है। इसका उद्‌गम माण्डेर श्रेणियों से है। ग्राम वैकाओं ($24^0 8^0$ उत्तर तथा $80^0 32^0$ पूर्व) के पास यह नाला उत्तर की तरफ मुड़ जाता है। तदनन्तर लगभग 6 कि.मी. पश्चिम–पूर्व को प्रवाहित होता हुआ ग्राम सगमानियॉ के पास टमस नदी में मिल जाता हैं।

बाधिन नदी

इस नदी का उद्‌गम पन्ना जिले की अजयगढ़ पहाड़ियों से होता है, जो एक सकरी मैदानी पट्‌टी के मध्य प्रवाहित होती हुई कुड़कपुर ग्राम के पास सतना जिले में प्रवेश करती है। अपने उद्‌गम स्थान से इसकी प्रवाह दिशा दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व को है, किन्तु सतना जिले मे यह पूर्णतया दक्षिण से उत्तर दिशा में प्रवाहित होती है। इसके बाद तोतैला ग्राम ($24^0 56^0$ उत्तर तथा $80^0 28^0$ पूर्व) के अत्तर से यह नदी सतना एवं पन्ना जिले

की सीमा निर्धारित करती है। यद्यपि यह सतना जिले के केवल उत्तरी–पश्चिमी सिरे से होकर प्रवाहित होती है, तथापि यहाँ इसका अपवाह क्षेत्र 15 से 25 कि.मी. भू–भाग पर विस्तृत हैं। इसी नदी के पृष्ठ प्रदेश में यहाँ की पुरानी रियासतों पाथर कछार, बरौंधा एवं पालदेव का विस्तार है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक कालिंजर दुर्ग तथा मड़फा यहीं पर स्थित है। इस नदी में पूर्व की ओर से मिलने वाले नालों में कोहरी, कटवरिया, वनारी आदि मुख्य हैं। इसके बाद ग्राम मसौनी ($25^0 4^0$ उत्तर तथा $80^0 25^0$ पूर्व) के पास बाँदा जिले की नारैनी तहसील में पहुँचती है। उत्तरी मैदान में पहुँचने पर सतना जिले की अनेक नदी नाले इसमें मिलते हैं। ये सभी नदियाँ एवं नाले विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी से निकलते हैं। तथा दक्षिण की उच्च पहाड़ी क्षेत्र से जल लेकर उत्तरी मैदान में प्रवाहित होते है। इनमें मदरार, मरघा, बढार, छटैनी, खलैली, वामगंगा तथा इसके सहायक नाले मुख्य हैं। जैसे ही यह नाले और नदियाँ पठार से मैदानी सिंहपुर के निकट मोहनी प्रपात 30 मीटर ($25^0 2^0$ उत्तर तथा $80^0 42^0$ पूर्व) उल्लेखनीय है। सतना जिले के विन्ध्याचल पहाड़ी क्षेत्र में इस प्रकार के अनेक मनोरम प्रपात, प्रघातिकाएँ एवं जलश्रोत मिलते हैं। चित्रकूट व उसका समीपवर्ती क्षेत्र ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

पयस्विनी नदी

यह नदी पन्ना पहाड़ियाँ से निकलती है तथा उत्तर–पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। तदनन्तर लगभग 9 कि.मी. की दूरी तक यह सतना तथा बाँदा जिलों की सीमा निर्धारित करती हुई उत्तरी मैदान में प्रवेश करती है। अन्त में ग्राम सुमहा के निकट यह गंगा नदी में मिल जाती है।

सोन नदी

सोन नदी सतना जिले की लगभग 40 कि. मी. लम्बी दक्षिण सीमा (मानचित्र क्रमांक 6) निर्धारित करती हुई प्रवाहित होती है। स्वर्ण अथवा शोष (रजत) नदी मेकाल पर्वत के अमरकंटक नामक पर्वत चोटी ($22^0 40^0$ उत्तर तथा $81^0 46^0$ पूर्व) से निकलती है। ऐरियन तथा मेगस्थनीज नामक प्राचीन यूनानी भूगोलवेत्ता ने इस नदी का उल्लेख ''ईरानोवोआ'' नाम से किया है।[9] टालमी ने इसका नाम सोना लिखा हैं। जो सम्भवतः सोन शब्द का अनुवाद होगा। संस्कृत साहित्य में इसका नाम ''हिरनरावा'' है। अर्थात् सोना बहाने वाली मिलता है। श्री मद्भागवत या अन्य पुराणों में भी कई स्थानों पर इस नदी का उल्लेख मिलता है।

सतना जिले का लगभग 8 प्रतिशत क्षेत्र (कैमोर क्षेणी के दक्षिण) सोन नदी अपवाह के अन्तर्गत है। यहाँ कैमोर श्रेणी से कई नदी नाले निकालकर इस नदी में मिलते हैं। ग्राम कुसुमहा के निकट यह दक्षिण–पूर्व की ओर घूम जाती है और लगभग 9 कि.मी. का चन्द्राकार घुमाव पूर्ण कर यह पुनः पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती हुई सीधी जिले में प्रवेश करती है।

बौरिआ

जिले में कई बाँध[10] एवं बौरिआ[11] (वौली) भी मिलती हैं। बाँधों में लिलजी बाँध बहेलिया भाट बाँध (मानचित्र क्रमांक 7) (अमरपाटन तहसील) मुख्य हैं। इनका निर्माण भी रीवा रियासत के भूतपूर्व शासक महाराजा गुलाबसिंह ने करवाया था।[12]

यद्यपि जिले में पर्याप्त वौरिआ मिलती हैं, किन्तु आजकल इनकी हालत पर्याप्त उपेक्षित हैं। वौरिआ मध्य–पूर्व काल में प्रायः बाग बगीचों में खुदवाने का शौक था।

निष्कर्ष

संसाधन के रूप में प्रवाही जल का महत्वपूर्ण स्थान होता है। धरातल पर पाये जाने वाले प्राकृतिक कृषि पशुओं के चारागाह आदि प्रत्यक्ष रूप में वर्षा जल पर निर्भर करते हैं। यद्यपि घरेलू एवं औद्योगिक जल पूर्ति भूमिगत जल संसाधनों से कर लिया जाता है, किन्तु यदि ऐसे श्रोत सतही जल के सुलभ हों तो अति उत्तम होते हैं। सतना जिले में औद्योगिक एवं घरेलू जलपूर्ति के श्रोत सतही जल ही हैं। जिनमें नदियॉ, तालाब एवं बावलियॉ सम्मिलित हैं। सतना, मैहर, उचेहरा एवं नागौद जैसे नगरों की समस्त जलपूर्ति प्रवाही धाराओं, जिनमें टोन्स, सतना, अमरान आदि प्रमुख हैं, पर निर्भर पायी जाती है। यद्यपि सतना जिले के प्रवाही जल श्रोतों के संरक्षण एवं नियोजन पर तकनीकी आधार से विचार नहीं किया गया है, तथापि टोन्स एवं इसके सहायक नदी नालों में स्टेप डैम पूर्णकालिक बॉध एवं अल्पकालिक बॉधों के निर्माण द्वारा मृदा संसाधनों के संरक्षण हेतु एवं कृषि संसाधन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देखने को मिला है।

जिले की प्रमुख नदी टोन्स है, जो अपने सहायक उपसहायक नालों के साथ उत्तर–प्रदेश के सिरसा नामक स्थान पर गंगा नदी से मिलती है। इस स्थान पर वार्षिक 5910 मिलियन क्यूबिक मी.13 प्रवाह टमस नदी का पाया जाता है। टमस के ऊपरी भागों में बकिया बैराज के पास किये गये जल प्रवाह वार्षिक 2250 मिलियन क्यूबिक मीटर है14 यदि इस जल का नियोजन विधिवत किया जावे तो सतना जिले के कृषि उद्योग, पशु पालन उद्योग, उद्योग धन्धे, आदि काफी विकसित हो सकते हैं। इसी प्रकार सोन नदी का वार्षिक जल विमोचन की क्षमता 31800 मिलियन क्यूबिक मीटर है। इसका भी विधिवत उपयोग, अध्ययन क्षेत्र संसाधनों के विकास में लाभप्रद हो सकता है। सतना जिले के प्रचुर खनिज संसाधनों, वन संसाधनों कृषि संसाधनों के विकास में प्रवाही जल का उचित संरक्षण एवं संवर्द्धन बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होगा।

संदर्भ स्रोत

1. बाढ़ नियंत्रण रिपोर्ट, सहायक अभियंता कार्यालय, बाढ़ नियंत्रण, रीवा द्वारा प्राप्त श्रोतों में बीहर, करियारी, सिमरावल, असरावल, मंदाकिनी, सतना एवं अमरान नदी क्षेत्रीय लोगों को प्रभावित करती है।
2. कार्यालय, मुख्य अभियन्ता, बाणसागर से प्राप्त जानकारी पर आधारित।
3. Megasthanese and Ariyan MBR India page 134.
4. Survey of India, Topographical Sheet No. 63 C.D.H.
5. Luard C.E. (1907) Nagod State Zagetteer, Nawal Kishore Printing Press, kanpur.
6. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, सिंचाई विभाग, जिला सतना (मध्यप्रदेश)
7. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, सिंचाई विभाग, जिला सतना (मध्यप्रदेश)
8. Census Book of India, District Rewa, 1961.
9. मेगस्थनीज एण्ड ओरियन, पृष्ठ 20.
10. बॉध – ढालू– कृषित भूमि में वर्षा जल को रोकने हेतु छोटे–छोटे जलाशय।
11. वौरिआ – एक प्रकार का कुऑ, जिसमें जल–तल तक पहुॅचने के लिए सीढ़ियॉ बनी होती (बौली) हैं। तथा जो लम्बा चौड़ा काफी होता है, इसे बौली भी कहते हैं।
12. परिशिष्ट – 4.
13. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, बाणसागर की रिपोर्ट पर आधारित जानकारी, वर्ष 1975.
14. कार्यालय, कार्यपालन यंत्री, बाणसागर की रिपोर्ट पर आधारित जानकारी, वर्ष 1975.

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

शासकीय महाविद्यालय के ग्रंथालयीन सेवाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन
(कटनी जिला के विशेष सन्दर्भ में)

❑ वंदना सिंह*

आज पुस्तकालय हर प्रकार शिक्षा का अहम् हिस्सा है शास्त्री तथा विद्वान इस बात से सहमत हैं कि किसको कितनी उत्तम शिक्षा मिली इसका पता इससे नहीं लगाया जा सकता है। पुस्तकालय का उपयोग प्रायः सभी विद्यार्थी स्वयं विद्वान करते हैं। इस प्रकार शिक्षा बेहतर रूप से पुस्तकालयों के माध्यम से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। शिक्षा और सूचना प्राप्त करने में पुस्तकालय का महत्वपूर्ण योगदान होता है। पुस्तकालयों के द्वारा केवल पुस्तक ही उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं बल्कि पाठकों के लिये मार्गदर्शन तथा व्यक्तिगत सेवायें भी प्रदान की जाती हैं। जो पाठकों को आवश्यकताओं की सामग्री प्राप्त करने में उस सहयोग प्रदान करता है। हां विद्यार्थियों और शिक्षकों की पुस्तकें आदन–प्रदान, समाचार पत्र, फोटो कॉपी सेवा उपलब्ध है। पुस्तकालय में विभिन्न पाठ्य सामग्रियों को संग्रहित किये जाते हैं। जिनमें पुस्तकें ही नहीं बल्कि सामाजिक पत्रिकाएं समाचार पत्र हैं वे भविष्य के लिये प्रतियोगी परीक्षा में सहायक हों इन शासकीय महाविद्यालय के पुस्तकालयों द्वारा दी जाने वाली सूचना सिर्फ हैं शासकीय महाविद्यालय तक सीमित नहीं होती है भविष्य के लिये प्रतियोगी परीक्षा में सहायक है।

यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में कटनी विकासशील है जिसमें कई विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर के विकास में सहभागी हो रहे हैं यहां पर भारत सरकार द्वारा शिक्षा क्षेत्र में प्रयास भी जारी है जो शिक्षा को नई दिशा प्राप्त होती है कई शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालय की स्थापना इस जिले के अन्तर्गत की गई है, जो शिक्षा के प्रचार–प्रसार में पुस्तकालय महत्वपूर्ण होता है।

उच्च शिक्षा के अन्तर्गत शासकीय तिलक स्नात्कोत्तर अग्रणी महाविद्यालय की स्थापना भारत सरकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा म.प्र. उच्च शिक्षा विभाग द्वारा की गई है। जिसमें बहुत सारे विषयों के साथ स्नातक, स्नातकोत्तर की शिक्षा दी जाती है। चूना पत्थर के शहर के नाम से लोकप्रिय उत्तरी मध्यप्रदेश का कटनी 4950 वर्ग किमी के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहाँ का मुख्यालय है। ढीमरखेड़ा बहोरीबंद, मुड़वारा और करोन्दी यहां के लोकप्रिय पर्यटन स्थल हैं। मुड़वाड़ा कटनी, छोटी महानदी और उमदर यहां से बहने

* एम.फिल. पुस्कालय एवं सूचना विज्ञान

वाली प्रमुख नदियां हैं। कटनी कालीमनाबाद गांव संगमरमर के पत्थरों के लिए प्रसिद्ध है। कटनी जिला म.प्र. के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित है, यह जबलपुर संभाग का उत्तरी जिला है क्षेत्र के आध ार पर मुड़वारा जबलपुर की सबसे बड़ी तहसील थी जो 1998 में कटनी जिले में शामिल कर दी गई इसकी समुद्र तट से ऊँचाई 392 मीटर है इस जिले में तीन बड़ी नदियाँ मुड़वारा कटनी, छोटी महानदी और .... है। कटनी का नाम कटनी नदी के नाम पर रखा गया जो मुड़वारा से दो किलोमीटर की दूरी पर है। इस जिले का आकार ओवल की तरह है।

कटनी नगर का नामकरण कटनी नदी के नाम पर हुआ है। इस नदी पर नगर पश्चिम में 2 किमी दूर कटाव घाट है वास्तव में यह 'कटाव घाट' है, उस कटाव पहाड़ी का जो बहोरीबंद में है। घाट का आशय चढ़ाव है। डॉ शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'नीला चाँद' में इस कटाव घाट के रास्ते से होकर युद्ध के लिए जाने की सलाह काशी नरेश को दी। कालीन चट्टानों में तत्कालीन मानव के औजारों, हथियारों, पशु पक्षी, मानवाकृतियॉ, पेड़ और पत्तों आदि के शैलचित्रों को देखा जा सकता है। ये शैलचित्र 10000 ईसा पूर्व से 4000 ईसा पूर्व के माने जाते हैं। सरकारी संरक्षण के बावजूद अब ये समाप्त की ओर हैं।

बिलहरी

बिलहरी कटनी से करीब 14 किमी की दूरी पर स्थित है। प्राचीनकाल में पशुपति नगरी के नाम से विख्यात इस नगर में अनेक प्राचीन मूर्तियां देखी जा सकती है। यहां से प्राप्त अनेक ऐतिहासिक और प्राचीन वस्तुओं को नागपुर संग्रहालय में रख गया है।

बहोरीबंद

बहोरीबंद के आस–पास अनेक ऐतिहासिक स्मारकों को देखा जा सकता है। जैन तीर्थकर भगवान शांतिनाथ की 12 फीट की ऊंची प्रतिमा, भगवान विष्णु और सूर्य की प्रतिमाएं यहां का मुख्य आकर्षण है। यहां एक कुंड के निकट स्थित एक पत्थर में भगवान विष्णु के दस अवतारों को प्रदर्शित किया गया है। यहां स्टोन पार्क की स्थापना के बाद इस गांव का महत्व और बढ़ गया है।

तिगावन

कटनी जिले के यह छोटा सा गांव प्रारंभ में झारखंड के नाम से जाना जाता था। सपाट छत वाला 1500 साल पुराना मंदिर यहां देखा जा सकता है। तिगावन में 30 से भी अधिक मंदिरों को अवशेष है। इस गांव के चारों तरफ अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती है। भागवद नरसिंह और पार्श्वनाथ की प्रतिमा काफी लोकप्रिया है।

आवागमन–वायुमार्ग

जबलपुर विमान क्षेत्र कटनी का नजदीकी एयरपोर्ट है यह एयरपोर्ट भारत के अनेक शहरों से वायुमार्ग द्वारा जुड़ा है। जबलपुर यहां से करीब 100 किमी की दूरी पर है।

रेलमार्ग

कटनी जंक्शन रेल्वे स्टेशन मध्य भारत का प्रमुख स्टेशन है। देश के अनेक हिस्सों से यहां के लिए नियमित ट्रेनें चलती हैं।

सड़क मार्ग

राष्ट्रीय राजमार्ग 7 कटनी को राज्य और पड़ोसी राज्यों के अनेक शहरों से जोड़ता है। मध यप्रदेश, उत्तर प्रदेश के अनेक शहरों से यहां के लिए राज्य परिवहर निगम की नियमित बसों की व्यवस्था है।

पुस्तकालय संग्रह का सत्यापन प्रति वर्ष अप्रैल में किया जाता है। शासकीय तिलक महाविद्यालय में उपयोगकर्ताओं को पुस्तक अदान प्रदान सेवा, प्रलेखन सेवा, सूचना सेवा, इन्टरनेट सेवा, दीर्घकालीनसेवा, अल्पकालीन सेवाएँ, रिप्रोग्राफी सेवा, इत्यादि प्रदान करता है यहां पर सात प्रकार के समाचार पत्र प्रति दिन आते हैं इस पुस्तकालय में पाठकों के लिए उपयुक्त व्यवस्था है पाठकों के शिकायतों एवं सुझाव के लिए पेटी रखा गया है जिसमें पाठक अपनी शिकायतें एवं सुझाव दे सकें।

पुस्तकों की कुल संख्या 30138 है अलग से शिक्षकों एवं छात्रों को पढ़ने के लिए अध्ययन कक्ष है। शासकीय कन्या विद्यालय कटनी में पुस्तक आदान–प्रदान, वाई–फाई सेवा, सूचना सेवा, अल्पकालीन सेवा, दीर्घ कालीन सेवा उपलब्ध हैं। शिक्षा के क्षेत्र में कल्या महाविद्यालय कटनी बहुत ही विकास शील है जिसमें कई विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर के विकास में सहभागी हो रहे हैं यहां पर भारत सरकार द्वारा शिक्षा क्षेत्र में प्रयास भी जारी है जो शिक्षा को नई दिशा जिसमें बहुत सारे विषयों के साथ स्नातक, स्नातकोत्तर की शिक्षा दी जाती हैं प्रत्येक वर्ष नवीन विषयों को मान्यता दी जाती है।

उपसंहार

अध्याय दो के कटनी जिला में समान परिचय जनसंख्या दार्शनिक स्थल, आवागमन, कटनी जिला के सात शासकीय महाविद्यालय का वर्णन, पुस्तकालय क्रियाकलाप का विवरण, शोधार्थी द्वारा दिया गया है इस शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि कटनी एक जिला है जहां सात शासकीय महाविद्यालय की स्थापना 2016 तक हो चुकी है उन शासकीय महाविद्यालय के क्रियाकलाप उन्नति की ओर अग्रसर है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

शोधार्थी ने पाया कि शासकीय तिलक अग्रणी स्नातकोत्तर महाविद्यालय की स्थापना सबसे पहले हुई है। वहां सिर्फ पुस्तकीय सामग्री की संख्या सबसे ज्यादा है लेकिन शासकीय बरही महाविद्यालय के ग्रंथालय की विकास पुस्तकालय यंत्रीकरण में सबसे आगे है।

इस शोध अध्ययन हमें निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं:–

1. समय–समय पर नवीन पुस्तकें आती रहती है।
2. पुस्तकालय का सेवा संचालन पूर्ण रूप से हो रहा है।
3. समाचार पत्रों की उपलब्धता है।
4. आधुनिकीकरण पर प्रयास जारी है।
5. कुछ पुस्तकालय में जैसे तिलक महाविद्यालय और बरही महाविद्यालय में पुस्कालय स्वाचालीकरण आरम्भ हो चुका है।
6. शासकीय अनुदानों में कमी हैं।
7. पुस्तकालय बजट में कमी हैं।
8. सभी कर्मचारी कर्त्तव्य निष्ठा से काम करते हैं।

सुझाव

इस लघु शोध प्रबंध के दौरान शासकीय महाविद्यालय के ग्रंथालय पर किये अध्ययन के बाद प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर सुझाव दिये गये हैं:–

1. महाविद्यालय विज्ञान समूह के विभाग पाठ्यक्रमों का संचालन करता है जिन पर ग्रंथालय में बड़ी मात्रा में अनेक लेखकों की पाठ्य पुस्तके उपलब्ध हैं। अतः यह आवश्यक है कि समय–समय पर उपलब्ध पुस्तकों के नवीन संस्करण का क्रय भी किया जाए।

2. महाविद्यालय ग्रंथालय में पुस्तकों की संख्या एवं उनके उपयोगकर्ता की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए ग्रंथालयीन सेवाओं के सुचारू संचालन हेतु कर्मचारियों की अत्यंत कमी है। जिसे तकनीकी

रूप से ग्रंथालय विज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति कर पूरा किया जाना चाहिए।

3. ग्रंथालय में कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ उपलब्ध है परन्तु इसमें से ज्यादातर पुराने संस्करण हैं चूंकी विज्ञान विषयों पर नित–नवीन शोध होते रहते हैं, अतः संदर्भ ग्रंथ पर नवीन संस्करण अत्यन्त आवश्यक है।

4. महाविद्यालय के विभिन्न विभाग में विज्ञान विषयों पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध है जो कि संबंधित विभाग के विभागाध्यक्ष के आधीन रखे होते हैं। जिसकी वजय से उपयोगकर्ता को यह आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं अतः यहॉ यह आवश्यक है कि ऐसे ग्रंथों की कुछ प्रतिमा मुख्य ग्रंथालय में उपलब्ध कराई जायें।

5. पुस्तकालय में पुस्तकों के संग्रहण एवं उनके व्यवस्थापन हेतु पर्याप्त स्थान की अत्यन्त कमी है। जिसे दूर किया जाना चाहिए।

6. पुस्तको के व्यवस्थापन एवं संरक्षण हेतु अपनाई जाने वाली विधियों में नवीन तकनीकी का उपयोग किया जाना चाहिए। जिससे ग्रंथों को अधिक से अधिक समय तक उपयोग हेतु सुरक्षित रखा जा सके।

7. पुस्तकालय में तकनीकी कर्मचारियों का अभाव हैं जिसके कारण पुस्तकों का तकनीकी कार्य नहीं हो पा रहा है।

8. किसी भी पुस्तकालय में क्रय की गई पुस्तकों को उपयोग में लाने से पहले विभिन्न प्रकार के तकनीकी कार्यों से गुजरना पड़ता है। महाविद्यालय ग्रंथालय में रूप तकनीकी से प्रशिक्षित कर्मचारियों का होना आवश्यक है। इसके लिए कर्मचारियों के तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

9. वर्तमान समय में ग्रंथ अदान–प्रदान की जो परम्परागत प्रक्रिया अपनाई जा रही है इस कारण से उपयोगकर्ता एवं कर्मचारी दोनों के समय की बर्बादी होती है। अतः स्वचालन की नवीन तकनीकी का उपयोग किया जाना चाहिए।

10. वर्तमान समय में ग्रंथालय में स्वचालन के लिए सोल सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जा रहा हैं जो आज के समय में पुराना सॉफ्टवेयर हो चुका है आज लायब्रेरी के क्षेत्र में कई अन्य यूजर फ्रेंडलीसॉफ्टवेयर उपलबा है अतः ऐसे ही किसी नवीन सॉफ्टवेयर का उपयोग स्वाचलन हेतु किया जाना चाहिए।

11. किसी कार्य की पूर्णता तब तक नहीं होती जब तक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष किसी आधार पर उसकी समस्याओं के निराकरण हेतु समुचित सरलतम एवं व्यवहारिक सुझाव दिये जायें। वास्तव में अध्ययन के अन्त में यह अवलोकन किया जाता है कि शोधार्थिनी ने अध्ययन प्रारंम्भ करते समय क्या परिकल्पनाओं को महसूस किया था। क्या अध्ययन का कार्य उन परिकल्पनाओं पर खरा उतरा कि नहीं। यह जानने का कार्य प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

संदर्भ सूची

1. Dutta (D.N):Manual of Library Management Calculate, World Press, 1998.
2. Mittal (R.L)% Library Administration: Theory and Practice, Ed. 5 Delhi: Metropolitan Ed. 5,1984
3. Kumar, Krishan. Library Organization of India. Delhi: Vikas, 1987 pp. 197.
4. Presher, R.G, Developing Library collection, New Delhi: Medaliwu press, 1998
5. Singh, Sonal university Libraries: A current appraisal, Jaipur: RBSA, 1987
6. दत्ता जी के भारतीय पुस्तकालय एवं उनकी समस्यांए नई दिल्ली, 1958,19–20
7. सूद एस.पी. : प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान–जयपुर राज पब्लिकेशन
8. रंगनाथन एस.आर. पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका, बम्बई एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

पुस्तकालय प्रबंधन परिचयात्मक अध्ययन

❑ श्रीमती कमलेश कुशवाहा*

शोध सारांश

ज्ञान की देवी माता सरस्वती की उपासना के लिए दो मंदिर हैं–एक विद्यालय और दूसरा पुस्तकालय। विद्यालय में हम गुरु के चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करते हैं और पुस्तकालय में बैठकर मौन अध्ययन करते हैं।

पुस्तकालय का अर्थ है–पुस्तक + आलय अर्थात् पुस्तकें रखने का स्थान। पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय में पुस्तकालय होते हैं। इनसे छात्र और अध्यापक दोनों लाभ उठाते हैं। दूसरे प्रकार के पुस्तकालय व्यक्तिगत होते हैं। कुछ स्थानों पर सरकारी पुस्तकालय भी होते हैं। पब्लिक पुस्तकालय भी होते हैं।

पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान की शिक्षा के माध्यम से ही पुस्तकालयों का व्यवस्थापन तथा संचालन हेतु योग्य और कुशल कर्मचारियों को तैयार किया जाता है। पुस्तकालय विज्ञान तकनीकी विषयों की श्रेणी में आता है तथा एक सेवा सम्बन्धी व्यवसाय है। यह प्रबंधन, सूचना प्रौद्योगिकी, शिक्षाशास्त्र एवं अन्य विधाओं के सिद्धान्तों एवं उपकरणों का पुस्तकालय के सन्दर्भ में उपयोग करता है।

पुस्तकालय विकासशील संस्था है क्योंकि उसमें पुस्तकों और अन्य आवश्यक उपादानों की निरंतर वृद्धि होती रहती है। इस कारण इसकी स्थापना के समय ही इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक होता है। यह संचरण इकाइयों के इतिहास, संगठन, प्रबंधन, विभिन्न तकनीकों, सेवाओं, समाज के प्रति उनके कर्तव्यों तथा सामान्य कार्यकलापों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन पर आधारित एक वृहद् विषय है। इसका आकार-प्रकार तथा परिसीमा विषय व सूचना जगत के साथ निरंतर बदलता रहता है। इसलिए पुस्तकालय विज्ञान की शिक्षा में पुस्तकालय की विभिन्न तकनीकियों एवं प्रविधियों के साथ-साथ पुस्तकालय सम्बन्धी विभिन्न सेवाओं का भी पर्याप्त ज्ञान एवं जानकारी प्रदान की जाती है।

* पुस्तकालय विज्ञान

वस्तुतः भारत में पुस्तकालय विज्ञान की शिक्षा का स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य डॉक्टर रंगनाथन द्वारा ही किया गया। उन्हें भारतीय पुस्तकालय विज्ञान का जनक भी कहा जाता है।

परिवर्तित परिवेश में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान की जा रही पुस्तकालय विज्ञान की शिक्षा का शोध के आधार पर पुनः आकलन करने की आवश्यकता है जिससे पुस्तकालय एवं सूचना के क्षेत्र में कार्यरत जनशक्ति को सम्पूर्ण रूप से सक्षम बना सकें तथा वे दक्षता के साथ कुशलतापूर्वक अपने कार्यों का निष्पादन कर सकें। पुस्तकालय विज्ञान को उसी दिशा में सक्रिय होना चाहिए जो कि आज के सन्दर्भ में आवश्यक रूप से अपेक्षित है।

एक व्यवसाय के रूप में पुस्तकालयाध्यक्षता (लाइब्रेरियनशिप) रोजगार के विविध अवसर प्रदान करती है। पुस्तकालय तथा सूचना-विज्ञान में आज करियर की अनेक संभावनाएँ हैं। अर्हता प्राप्त लोगों की विभिन्न पुस्तकालयों तथा सूचना केन्द्रों में रोजगार दिया जाता है। प्रशिक्षित पुस्तकालय व्यक्ति, अध्यापक तथा लाइब्रेरियन दोनों रूप में रोजगार के अवसर तलाश कर सकते हैं। वास्तव में, अपनी रुचि तथा पृष्ठभूमि के अनुरूप पुस्तकालय की प्रकृति चयन करना संभव है। लाइब्रेरियनशिप में पदनाम पुस्तकालयाध्यक्ष (लाइब्रेरियन), प्रलेखन अधिकारी, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, उप पुस्तकालयाध्यक्ष, वैज्ञानिक (पुस्तकालय विज्ञान/प्रलेखन), पुस्तकालय एवं सूचना अधिकारी, ज्ञान प्रबंधक/अधिकारी सूचना कार्यपालक, निदेशक/सूचना सेवा अध्यक्ष, सूचना अधिकारी तथा सूचना विश्लेषक हो सकते हैं।

विभिन्न पाठ्यक्रमों में पाठ्यक्रम के नाम तथा अर्हता अंक अलग-अलग विश्वविद्यालय में अलग-अलग हो सकते हैं। पहले इस विषय को पुस्तकालय विज्ञान कहा जाता था किंतु अब सूचना के विस्तार के कारण पुस्तकालय विज्ञान सूचना विज्ञान में परिवर्तित हो रहा है।

वेतन संगठनों की प्रकृति के आधार पर भिन्न-भिन्न है। अपने कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों ने पुस्तकालय-स्टाफ के लिए विअआ वेतनमान लागू किए हैं। केन्द्रीय सरकार की बड़ी संस्थापनाओं की संघटक इकाइयों जैसे वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर), रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) वैज्ञानिक स्टाफ पर यथा लागू वेतनमान देती है। कार्य निष्पादन के आवधिक अंतराल पर मूल्यांकन के आधार पर उन्नति के अवसर इस कार्य को आकर्षक बनाते हैं।

विभिन्न पुस्तकालयों का अपना क्षेत्र और उद्देश्य अलग-अलग होता है और वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुकूल रूप धारण करते हैं। इसी के आधार पर इसके अनेक भेद हो जाते हैं; जैसे–राष्ट्रीय पुस्तकालय, सार्वजनिक पुस्तकालय, व्यावसायिक पुस्तकालय, सरकारी पुस्तकालय, चिकित्सा पुस्तकालय और विश्वविद्यालय तथा शिक्षण संस्थाओं के पुस्तकालय आदि।

यूनेस्को और भारत सरकार के संयुक्त प्रयास से स्थापित दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी का उद्घाटन स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरूप ने 27 अक्टूबर 1951 को किया। 15 वर्ष की इस अल्प अवधि में इस पुस्तकालय ने अभूतपूर्व उन्नति की है। इसमें ग्रंथों की संख्या लगभग चार लाख है। नगर के विभिन्न भागों में इसकी शाखाएँ खोल दी गयी हैं। इसके अतिरिक्त प्रारंभ से ही चलता-फिरता पुस्तकालय भी इसने शुरू किया।

इसके अतिरिक्त इस विभाग के पास आधुनिकतम दृश्यश्रव्य उपकरण भी हैं। इस पुस्तकालय के सदस्यों की संख्या लगभग एक लाख है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कोलकाता की स्थापना श्री जे.एच. स्टाकलर के प्रयत्न से 1836 ई. में कोलकाता में हुई। इसे अनेक उदार व्यक्तियों से एवं तत्कालीन फोर्ट विलियम कालेज से अनेक ग्रंथ उपलब्ध हुए। प्रारम्भ में पुस्तकालय एक निजी मकान में था, परन्तु 1841 ई. में फोर्ट विलियम कालेज में इसे रखा गया। सन् 1844 ई. में इसका स्थानान्तरण मेटकाफ भवन में कर दिया गया।

इसमें ग्रंथों की संख्या लगभग 12 लाख है। 'डिलीवरी ऑव बुक्स एक्ट 1954' के अनुसार प्रत्येक प्रकाशन की एक प्रति इस पुस्तकालय को प्राप्त होती है। वर्ष 1964-65 में इस योजना के अन्तर्गत 18,642 पुस्तकें इसे प्राप्त हुई एवं भेंट स्वरूप 7,000 से अधिक ग्रंथ मिले।

केन्द्रीय संदर्भ पुस्तकालय ने राष्ट्रीय ग्रंथूची की नौ जिल्दें प्रकाशित की एवं राज्य सरकारों ने तमिल, मलयालम तथा गुजराती की ग्रंथसूचियाँ प्रकाशित कीं।

प्रत्येक पुस्तकालय में ऐसा प्रवेशद्वार होना आवश्यक है जिससे आने-जाने वालों पर कड़ा नियंत्रण संभव हो सके। पुस्तकालय में प्रकाश के साथ ही शुद्ध वायु की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। एक भाग में संचय कक्ष हो और नियमित पाठकों, अनुसंधाकर्त्ताओं के लिए अध्ययन कक्ष होना चाहिए।

पुस्तकों के वर्गीकरण में भारतीय विद्वान डॉ. एस.आर. रंगनाथन द्वारा 1925 ई. में आविष्कृत द्विबिंदु वर्गीकरण पद्धति है। सर्वप्रथम मद्रास पुस्तकालय संघ ने इसका प्रकाश 1933 ई. में किया।

जिस पद्धति को पुस्तकालय स्वीकार करता है उसके अनुसार ही वर्गसंख्या पुस्तक के प्रमुख भागों पर अंकित कर दी जाती है।

पुस्तकालयों में पुस्तकों के देने-लेने की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। कहीं सदस्यों को कार्ड दिये जाते हैं तो कहीं रजिस्टर में ही पुस्तकों का हिसाब रखा जाता है। इस दिशा में अनेक विधियों का आविष्कार हो चुका है।

पुस्तकालय में प्रवेश करने से पूर्व, पाठकों को अपना सामान काउण्टर में रखना होगा, तथा रजिस्टर में हस्ताक्षर करने होंगे।

पुस्तकालय से बाहर निकलते समय, पाठक किताब/पत्रिकाओं को मेज पर ही रखें। उन्हें शेल्फ में वापस रखने की जरूरत नहीं है।

पुस्तकालय एवं सूचना केन्द्र में और आस-पास धूम्रपान, जोर से बातें करना एवं समान आपत्तिजनक आचरणों की अनुमति नहीं है।

पाठकों से अनुरोध है कि वे किसी पुस्तक, नियत कालिकाओं एवं पुस्तकालय की किसी सामग्री पर न लिखें, न अंकित करें अथवा अन्यथा क्षतिग्रस्त करें।

किताबों अथवा अन्य सम्पत्ति को की गई कोई भी क्षति अथवा हानि के लिए पाठक जिम्मेदार होंगे और क्षति अथवा हानि के संदर्भ में उसका पूरा मूल्य अथवा वरिष्ठ पुस्तकालयाध्यक्ष अथवा प्रभारी अधिकारी अथवा निदेशक, सीपीआरआई द्वारा निर्धारित मूल्य चुकाना होगा।

सन्दर्भ :

- शंकर सिंह : कंप्यूटर और सूचना तकनीक : पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, 2005
- शंकर सिंह : इन्टरनेट और आधुनिक पुस्तकालय : पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, 2005
- शंकर सिंह : सूचना प्रौद्योगिकी और इन्टरनेट : पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, 2007
- शंकर सिंह : सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं ग्रंथालय : पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, 2010
- शंकर सिंह : सूचना प्रौद्योगिकी और पुस्तकालय : एस.एस. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

हिन्दी की महिला आत्मकथा लेखिकाओं के लेखन में नारी संघर्ष का चित्रण

(अमृता प्रीतम विशेष संदर्भ में)

❑ रेशमा पयासी*

जन्म : अमृता प्रीतम का जन्म 31 अगस्त, 1919 गुँजरावाला (पंजाब) भारत में हुआ था। मेरे माँ-बाप दोनों पंचखंड भसोड़ के स्कूल में पढ़ाते थे। वहाँ के मुखियाँ बाबू तेज सिंह की बेटियाँ उनके विद्यार्थियों से थी। इन बच्चियों को एक दिन न जाने क्या सूझी, दोनों ने मिलकर गुरुद्वारे में कीर्त्तन किया, प्रार्थना की और प्रार्थना के अन्त में कह दिया दो जहानों के मालिक हमारे मास्टर जी के घर एक बच्ची बख्श दो।

मैंने अध्ययन करते समय यह जानकारी प्राप्त की कि मशहूर पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम की मोहब्बत को अपने शोध में शामिल किया है। अमृता की प्रेम गाथा उनके जीवन के दो करीबी मित्रों से होकर गुजरती है, अमृता की मोहब्बत आज की आधुनिक युवतियों की तरह न होकर एक सर्वश्रेष्ठ शिखर को स्पर्श करती है। अमृता के जीवन में उनके मित्र शायर और गीतकार साहिर लुधियानवी एवं इमरोज रहते थे। अमृता प्रीतम का प्यार, इश्क, मोहब्बत उनके जीवन में आधुनिक अर्थ नहीं रखते थे। उनके साथ प्यार आत्मा की परछाई बनकर, ईश्क ईश्वर की इबादत बनकर तथा मोहब्बत ज़िन्दगी का मकसद बनकर उभरी थी।

कृतियाँ :

पिघलती चट्टान : अमृता प्रीतम कृत कहानी "**पिघलती चट्टान**" में लेखिका लिखती है कि रात के चौथे पहर में अकेली रास्ते पर राजश्री अपने पाँवों से बात करती हुई जाती है। उसको महसूस होता है कि इस रास्ते में उसके पाँव की बातचीत लंबी और और बहुत पुरानी हो रही है। शायद दो सौ बरसों से भी अधिक पुरातन।... अचानक वह एक जगह आकर ठहर जाती है और विचार करती है कि वह इस तरह कहाँ जा रही है। सामने नदी में बहुत बड़ा भँवर पड़ा रहता है जो कि उसकी तरफ मुस्कुराता है और कहने लगता है कि वहीं जा रही है जहाँ दो सौ वर्ष पहले तुम्हारे वंश की एक कुमारी रतन राजलक्ष्मी जाती है। यह श्रवण कर वह राजलक्ष्मी घबरा जाती है और अपने आसपास देखती है उसके सिवा नहीं रहता है। उसकी आँखों में एक हसरत सी कौंधती है कि पैरों के लिए सिर्फ और सिर्फ एक ही रास्ता क्यों है? राजश्री चट्टानों के बीच खड़ी होती है और लगता है कि सजैसे वह स्वयं एक चट्टान हो गयी हो उसके सवालों का जवाब भी कहीं से नहीं मिल पाता है। इस तरह कहानी 'पिघलती चट्टान' का मानवीकरण कर अमृता

* शोधकर्ता (छात्रा)

प्रीतम नायक कुमार व सनायिका राजश्री दुबारा कहानी को सम्पन्न करती है।

2. शाह की कंजरी : अमृता प्रीतम अपने गद्य विधा में कहानी संग्रह **'शाह की कंजरी'** की रचना करती है कि अब उसे नीलम नाम से कोई संबोधन नहीं करता है सब शाह सकी कंजरी ही कहते रहते हैं। नीलम को लाहौर हीरामंडी के एक चौबारे में जवानी चढ़ी होती है और वहाँ की एक रियासती सरदार के हाथों ही पूरे पाँच हजार में उसकी नथ उतरी रहती है पर फिर वह एक दिन हीरामंडी का रास्ता चौबारा छोड़कर शहर के सबसे बड़े होटल में रहने आ जाती है। सारा शहर उसका नाम एक ही रात्रि में विस्मृत कर देता है। वह गाने में मशहूर थी अपनी आवाज के लिए।

शाहनी का कहना होता है कि वह आज बताशे बाँटेगी। जिस तरह लोग उस दिन गीत बैठाये जाते हैं पर गाने के खतम होने पर चाय और मिठाइयाँ पेश होती हैं...

शाहनी अपनी मुट्ठी में 100 रुपये को निकालकर अपने बेटे के सिर पर से वारती है और फिर उस शाह की कंजरी को पकड़ा देती है। वह कहती है–रहने दे शाहनी! आगे भी तेरा ही खाती हूँ वह जवाब देकर हँसती है। शाहनी के चेहरे का रंग उतर जाता है वह सोचती है कि जैसे शाह की कंजरी ने आज भी भरी सभा में शाह से अपना संबंध जोड़कर उसकी हद कर देती है। वह जोर से हँसती है और नोट पकड़ाती हुई कहती है—''शाह से तो तूने नित लेना है, पर मेरे हाथ से तूने फिर कब लेना है? चल आज लेले... और शाह की कंजरी नोट पकड़कर एक ही बार में रीनी सी हो जाती है... कमरे में शाहनी की साड़ी का शगुन वाली गुलाबी रंग फैल जाता है इसी के साथ कहानी अमृता प्रीतम संपन्न करती है।

निधन—अमृता प्रीतम ने लम्बी बीमारी के बाद 31 अक्टूबर, 2005 को अपना शरीर छोड़ा। वे 86 साल की थीं और दक्षिणी दिल्ली के हौजखास इलाके में रहती थी। अब वे हमारे बीच नहीं हैं।

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

''प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों का तुलनात्मक अध्ययन''

❐ डॉ. देवेन्द्र कुमार*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यक्तित्वशील गुणों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन में प्रतिदर्श के रूप में 50 प्रतिशत एवं 50 अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं को सम्मिलित किया गया है। जिनकी आयु 25 से 40 वर्ष के बीच है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, तप, स्वाध्याय तथा धैर्य व्यक्तित्व शीलगुणों के मध्यमानों में .05 स्तर पर भी सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। जबकि बुद्धिशील गुण के मध्यमान में .05 स्तर पर सार्थक अन्तर है तथा शौच, संतोष एवं ईश्वर प्रणिधान शीलगुणों के मध्यमानों में .01 स्तर पर सार्थक अन्तर है।

की वर्ड्स–*व्यक्तित्वशीलगुण, प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें, अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें।*

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने के साथ ही व्यक्ति के सर्वांगीण विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना है। प्रत्येक व्यक्ति के सफल समायोजन में व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अवलोकन करने पर समाज में संस्कृतियों के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। कुछ संस्कृतियाँ सरल होती हैं और कुछ जटिल। विदेशी संस्कृतियों के प्रभाव के कारण अपने देश की संस्कृति भी दिन–प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। फलस्वरूप आज के भौतिकवादी युग में लोगों को स्वयं को समायोजित करने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। वास्तव में मनुष्य को अपने जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए दो पहलुओं के मध्य संतुलन रखना पड़ता है। प्रथम वास्तविक परिस्थितियाँ तथा द्वितीय चेतना अर्थात् आंतरिक मनोभाव। इन दोनों पक्षों में यद्यपि प्रथम पक्ष के परिणाम प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उन परिणामों के

* पूर्व प्रवक्ता- मनोविज्ञान विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

पीछे जो शक्ति कार्य करती है वह चेतना है। अतः चेतना हमारे सभी कार्यों पर सर्वाधिक प्रभाव डालती है। इस चेतना या 'स्व' को सामान्य भाषा में व्यक्तित्व कहा जाता है।

आज के भौतिकवादी युग में अधिकतर व्यक्तियों को अपने उचित समायोजन में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। जिसका प्रमुख कारण है कि व्यक्ति मानवीय मूल्यों को भौतिकवादी दृष्टिकोण से परखने लगा है। यद्यपि यह सब करने से उसे तात्कालिक सुख एवं शांति तो मिलती है परन्तु धीरे–धीरे एक ऐसे 'स्व' का विकास करता है जिस पर शिक्षा एवं अन्य मानवीय मूल्यों का कोई चिरकालीन प्रभाव नहीं पड़ता। समाज उसे अपने दायरे से बाहर नहीं आने देता। जबकि वह स्वयं की चेतना के अनुसार कार्य करता है। इस स्थिति में वह मँझधार में फँस जाता है। मानव की आवश्यकतायें एवं अपेक्षाऐं समय के साथ बढ़ती जा रही हैं। उनके पूरा न होने के कारण दुश्चिंता, कुंठा, सांवेगिक अस्थिरता एवं भय आदि मानसिक विकार उत्पन्न हो रहे हैं। व्यक्ति की अतृप्त इच्छायें उसके चेतन पर दबाव डालती हैं तथा उसे विघटनकारी कार्यों की ओर अग्रसर कर रही हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वह पाश्विक प्रवृत्ति का होता जा रहा है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के व्यक्तित्व संगठन के वर्तमान गुणों को जाना जाये तथा उसमें मानवीय गुणों को 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' के स्तर तक लाया जाये। जिससे वे अपने मूल ध्येय विश्व शांति, मानवता एवं कल्याण की भावना से ओत–प्रोत होकर मानव समाज को अधिकतम सकारात्मक योगदान दे सकें।

व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के शब्द 'Personality' का पर्याय है। जिसकी व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के 'Personal' शब्द से मानी जाती है। जिसका अर्थ है 'मुखौटा'। तत्कालीन समय में यूनानी लोग मुखौटा पहनकर मंच पर अभिनय करते थे। पात्र के अनुरूप मुखौटा पहनते थे। अतः इस अर्थ में व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के मुख्य रूप से है। व्यक्तित्व एक व्यापक प्रत्यय है। इसके स्वरूप एवं अर्थ के सम्बन्ध में विस्तार से विचार हुआ परन्तु अभी तक कोई सर्वमान्य अर्थ या परिभाषा निर्धारित नहीं की जा सकी है। सामान्य बोल–चाल की भाषा में व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग शारीरिक बनावट एवं सौन्दर्य के लिए किया जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। इसी व्यक्तित्व के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है तथा एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरे व्यक्तियों पर पड़ता है तथा वह विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में अभिव्यक्त होता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की भिन्न–भिन्न परिभाषायें दी हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्न प्रकार हैं–

मन के अनुसार – ''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रूचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं एवं तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।''

मॉर्टन प्रिंस के शब्दों में– ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के समस्त जन्मजात संस्थाओं, आवेगों, प्रवृत्तियों, झुकावों एवं मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों के द्वारा अर्जित संस्कारों एवं प्रवृत्तियों का योग है।''

वैलेनटीन के मतानुसार– ''व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।''

बोरिंग के शब्दों में– ''व्यक्तित्व, व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ अपूर्व और स्थायी समायोजन है।''

इन सभी विचारधाराओं के अतिरिक्त व्यक्तित्व के सम्बन्ध में समय–समय पर अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, किन्तु इन सभी में ऑलपोर्ट महोदय द्वारा प्रस्तुत विचार सभी से उपयुक्त माना गया है।

ऑलपोर्ट के अनुसार– ''व्यक्तित्व व्यक्ति के मनौदेहिक गुणों का वह गत्यात्मक संगठन है जो व्यक्ति के वातावरण के प्रति अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।''

इन उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व सम्बन्धी उपर्युक्त धारणायें एवं परिभाषायें उसके अर्थ की यद्यपि पूर्ण व्याख्या नहीं करती है परन्तु उसको स्पष्ट अवश्य करती हैं। जैसे कि हम जानते हैं कि व्यक्तित्व में मनुष्य के न केवल शारीरिक एवं मानसिक गुणों का समावेश होता है बल्कि उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है। सामान्यतः मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को मानव के गुणों, लक्षणों, क्षमताओं एवं विशेषताओं आदि की संगठित इकाई मानते हैं।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख दृष्टिकोण निम्न प्रकार हैं–

शर्मा, प्रेमा एवं चौहान, शालिनी (2010) ने 100 छात्रों को 4 स्कूलों से चयनित कर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। इन्होंने अपने अध्ययन में रचनात्मक और व्यक्तिगत विशेषता बहिर्मुखता और अंतर्मुखता के बीच सम्बन्धों को जाँचने का प्रयास किया। अपने अध्ययन में इन्होंने यादृच्छीकरण विधि का प्रयोग किया। वाकर मेंहदी का रचनात्मक मौखिक परीक्षण एवं नैमैन कोहिलस्टेड की अंतर्मुखता–बहिर्मुखता (जय प्रकाश द्वारा भारतीय अनुकूलन) परीक्षण का उपयोग सम्बन्धों को मापने के लिए किया। अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि इन 100 छात्रों में से 84 छात्र औसत तथा 14 छात्र अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी पाये गये तथा जो छात्र अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी थे वे सभी व्यक्तियों की मदद एवं रचनात्मक के बीच किसी भी रिश्ते से इंकार करते थे।

सेरपिल आइटेक एवं अन्य (2012) ने विश्वविद्यालय के छात्रों के व्यक्तित्व एवं उनके कैरियर सम्बन्धी विशेषताओं के बीच सम्बन्धों की जानकारी के लिए 377 छात्रों का चयन प्रयोज्यों के रूप में किया। इस संदर्भ में 5 व्यक्तित्व विशेषताओं को सभी पुरुष एवं महिला प्रयोज्यों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। जिससे वे अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को सहज भाव से प्रस्तुत करते हुए अपने कैरियर सम्बन्धी पक्षों के बीच उपयुक्त तथ्यों को प्रस्तुत कर सकें। इस सम्बन्ध में सह सम्बन्ध से सम्बन्धित तथ्य यह व्यक्त करते हैं कि इन दोनों के बीच उच्चतम सह सम्बन्ध देखा गया है।

शर्मा, रेनुका (2008) ने हरियाणा के कॉलेज शिक्षकों के व्यक्तित्व एवं समायोजन चरों के बीच सह सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए 31 प्राइवेट, 18 सरकारी (49 महाविद्यालयों) के 336 पूर्ण कालिक शिक्षकों पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। व्यक्तित्व शीलगुणों एवं समायोजन के बीच सहसम्बन्ध गुणांक .05 स्तर पर सार्थक पाया गया। इसमे ळए भ्ए स्ए ड एवं फ कारकों के बीच व्यक्तित्व के 16 च्थ् से सम्बन्धित हैं। संगठनात्मक प्रतिबद्धता से महत्वपूर्ण ढंग से सम्बन्धित थे। परिणाम यह भी व्यक्त करते हैं कि कॉलेज के शिक्षक स्वाभाविक रूप से ईमानदार, अनुशासनबद्ध, दिलेर (साहसी), सामाजिक दृष्टि से दृढ़, विश्वास योग्य, समायोजनशील, व्यावहारिक बाह्य वास्तविकताओं से नियंत्रित, आत्म नियंत्रित, स्वयं अवधारणा नियंत्रण में उपयुक्त, विनियमित तथा गृह, स्वास्थ्य, संवेगात्मक एवं व्यावसायिक समायोजन में अपनी संगठनात्मक संस्थाओं के प्रति अत्यधिक समायोजित रहते हैं।

पर्विज एलाविनिया एवं अन्य (2012) ने प्रस्तुत अध्ययन अंतर्मुखता और बहिर्मुखता के बीच संभावित सम्बन्धों को ज्ञात करने के लिए 120 मध्यवर्ती शिक्षार्थियों जिनमें 62 पुरुष एवं 58 महिलायें

सम्मिलित थीं तथा जो ईरान से सम्बन्ध रखते थे। इनके संदर्भ में यह अध्ययन किया गया। इसके लिए आइजनेक की व्यक्तित्व प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। इसके आधार पर प्रयोज्यों को अंतर्मुखता एवं बहिर्मुखता के आधार पर अलग किया गया। प्रयोज्यों को सुनने की क्षमता के सम्बन्ध में यह पाया गया कि अंतर्मुखी व्यक्तित्व के लोग बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लोगों की तुलना में इस क्षमता की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ होते हैं। इस संदर्भ में लिंग का कोई विशेष महत्व नहीं देखा गया। इस अध्ययन में यह भी देखा गया कि प्रयोज्यों की आयु तथा उनकी सुनने की क्षमता के संदर्भ में उपयुक्त सह सम्बन्ध था।

परिकल्पना– प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों में सार्थक अंतर नहीं होता है।

विधि –

प्रतिदर्श– प्रस्तुत अध्ययन में अलीगढ़ जनपद के 50 प्रशिक्षित एवं 50 अप्रशिक्षित अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को लिया गया है। जिनमें 25 प्रशिक्षित अध्यापक एवं 25 प्रशिक्षित अध्यापिकायें हैं। इसी प्रकार 25 अप्रशिक्षितअध्यापक एवं 25 अप्रशिक्षित अध्यापिकाओं को सम्मिलित किया गया है। अध्ययन में केवल जूनियर विद्यालयों में पढ़ाने वाले प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं को रखा गया है। जिनकी आयु 25 से 40 वर्ष के बीच है। प्रतिदर्श में प्रयोज्यों के चयन के लिए 'स्तरानुसार यादृच्छीकरण विधि' का प्रयोग किया गया है।

चर– प्रस्तुत अध्ययन में चरों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. स्वतंत्र चर – प्रस्तुत अध्ययन के स्वतंत्र चर निम्नलिखित हैं–

क्षेत्र – (अ) प्रशिक्षित
(ब) अप्रशिक्षित

लिंग – (अ) अध्यापक
(ब) अध्यापिकायें

2. आश्रित चर – प्रस्तुत अध्ययन के आश्रित चर निम्नलिखित है–

(i) सत्य, (ii) अहिंसा, (iii) ब्रह्मचर्य, (iv) अपरिग्रह, (v) अस्तेय, (vi) शौच, (vii) संतोष, (viii) तप, (ix) स्वाध्याय, (x) ईश्वर प्रणिधान, (xi) बुद्धि, (xii) धैर्य।

3. प्रासंगिक चर– प्रस्तुतअध्ययन के कुछ प्रमुख प्रासंगिक चर इस प्रकार हैं– जाति, धर्म, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर, संस्कृति, बुद्धि, संकाय इत्यादि को मान लिया गया है।

अध्ययन सामग्री–प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिए व्यक्तित्वशील गुणों का मापन करने के लिए डॉ0 आर0पी0 सिंह की व्यक्तित्व प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। जिसके द्वारा व्यक्तित्व के 12 महत्वपूर्ण पक्षों का मापन किया जाता है। इस प्रश्नावली में 120 पदों को एक निश्चित क्रम में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक शीलगुण के लिए 10 पदों को रखा गया है। पदों का विवरण क्रमशः सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान, बुद्धि एवं धैर्य हैं।

प्रक्रिया– प्रस्तुत अध्ययन अलीगढ़ जनपद के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं पर प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन के लिए प्रतिदर्श में चुने गये सभी प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं पर प्रत्येक परीक्षण को अनुशासित किया गया है। इन परीक्षणों से प्राप्त प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है। जिससे कि उपयुक्त निष्कर्ष प्राप्त हो सकें।

परिणाम एवं विवेचन– एकत्रित प्रदत्तों का सारणीकरण एवं विवेचन निम्नतालिका में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका

प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–मूल्यों को प्रदर्शित करने वाली तालिका

क्र.सं.	व्यक्तित्वशील गुण	प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें			अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें			एस.ई.डी.	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर
		संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन			
1	सत्य	50	5.30	0.99	50	5.66	1.43	0.24	1.50	एन.एस.
2	अहिंसा	50	6.10	1.49	50	5.64	1.42	0.29	1.58	एन.एस.
3	ब्रह्मचर्य	50	4.76	1.60	50	5.30	1.63	0.32	1.68	एन.एस.
4	अपरिग्रह	50	5.66	1.86	50	5.08	1.55	0.34	1.70	एन.एस.
5	अस्तेय	50	4.94	1.50	50	4.98	1.64	0.31	0.12	एन.एस.
6	शौच	50	5.02	1.76	50	5.84	1.30	0.30	2.73	x x
7	संतोष	50	6.66	1.65	50	5.59	1.84	0.34	3.14	x x
8	तप	50	5.60	1.38	50	5.72	1.34	0.27	0.44	एन.एस.
9	स्वाध्याय	50	5.52	1.48	50	6.02	1.14	0.26	1.92	एन.एस.
10	ईश्वर प्रणिधान	50	7.52	1.54	50	5.84	1.86	0.34	4.94	xx
11	बुद्धि	50	6.38	1.11	50	5.88	1.30	0.24	2.08	x
12	धैर्य	50	6.68	1.60	50	6.14	1.20	0.28	1.92	एन.एस.

नोट – एन.एस. = .05 स्तर पर भी सार्थक नहीं है।
X = .05 स्तर पर सार्थक।
XX = .01 स्तर पर सार्थक।

प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों के मध्यमानों को प्रदर्शित करने वाला स्तम्भ चित्र

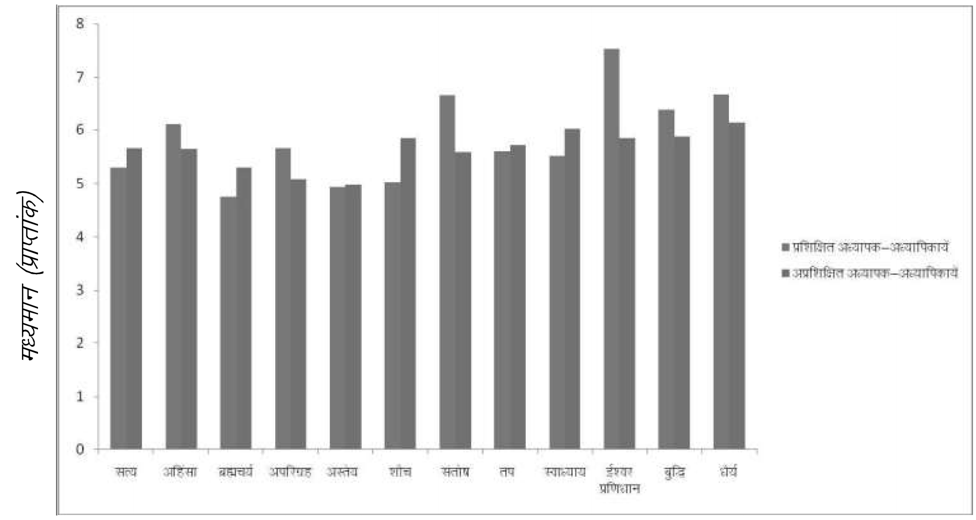

व्यक्तित्व शीलगुण

व्यक्तित्व के शौच, संतोष, ईश्वर, प्रणिधान शीलगुणों में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के मध्यमानों में पाया गया अंतर .01 स्तर पर सार्थक देखा गया है। जबकि बुद्धि शीलगुण में प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं का मध्यमान अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाऐं के मध्यमान से अधिक है तथा इनके मध्यमानों का अंतर .05 स्तर पर सार्थक है। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं की तुलना में कुछ अधिक विस्तृत परिवेश में जीवन यापन करने के कारण तन–मन की शुचिता पर जिस प्रकार बल देते हैं, अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें इनकी तुलना में कुछ पीछे रह जाती हैं। इसी प्रकार प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें जिस प्रकार के नैसर्गिक एवं आध्यात्मिक परिवेश में जीवन यापन करते हैं उसके कारण उनमें संतोष की प्रवृत्ति अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक विकसित होती है। प्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं की तुलना में ईश्वर में अपेक्षाकृत कुछ अधिक निष्ठा व विश्वास रखते हैं। आध्यात्मिक चिन्तन एवं चेतना से अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावित होने के कारण जीवन के विवेकशील पक्षों पर भी विशेष बल देते हैं। व्यक्तित्व के अन्य शीलगुणों में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, तप, स्वाध्याय एवं धैर्य शीलगुणों में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के मध्यमानों में पाया गया अंतर .05 स्तर पर भी सार्थक नहीं है। तार्किकता के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें दोनों ही लगभग समान रूप से 'जीओ और जीने दो' के सिद्धांत का पालन करते हैं तथा जिनके द्वारा दया, ममता एवं करूणा जैसे भाव सहज रूप से इनमें विकसित होते हैं। ये दोनों ही इन्द्रियों से सम्बन्धित विषय वासनाओं पर लगभग समान रूप से अपेक्षित नियंत्रण रखते हैं। यह अपनी आवश्यकता से अधिक संचय करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखते हैं। जिससे इनमें सामाजिक समरसता अनवरत् बनी रहे और सामाजिक जीवन में बंधुत्व की भावना स्थापित रहे। यह दोनों ही अपने जीवन में उन आदर्शों एवं मूल्यों को धारण करने पर बल देते हैं जिनके द्वारा उनमें चोरी, बेईमानी, छल–कपट एवं द्वेष इत्यादि जैसी प्रवृत्तियाँ विकसित न हो सकें। प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकायें दोनों ही परिश्रम को महत्व देते हैं क्योंकि परिश्रम के द्वारा ही अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति हो सकती है। इसके साथ ही साथ व्यक्ति सभी प्रकार से कलह, निद्रा एवं विभिन्न प्रकार के व्यसनों से मुक्त होता है। इसके साथ ही साथ ये दोनों ही आध्यात्मिक चिन्तन पर विशेष बल देते हैं। क्योंकि इससे इनके जीवन दर्शन एवं जीवन शैली को उपयुक्त दिशा में बढ़ने का अपेक्षित मार्ग मिलता है तथा ये दोनों ही धैर्य के कारण अपने जीवन के नैतिक पथ से विचलित नहीं होते हैं और इदम्, अहम् तथा नैतिक अहम् में संगठनात्मक समरसता को बनाये रखने में सक्षम होते हैं। शायद यही कारण है कि व्यक्तित्व के इन सभी शील गुणों में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है।

निष्कर्ष–उपर्युक्त परिणामों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापक–अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व शीलगुणों में सार्थक अंतर नहीं होता है। अतः परिकल्पना स्वीकार की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जायसवाल, सीताराम : व्यक्तित्व का मनोविज्ञान (नवीनतम संस्करण) प्रकाशक–विनोद पुस्तक मंदिर (आगरा)।
- पर्विज एलाविनिया एवं अन्य (2012) : पोटेंशियल बोंड्स विटवीन एक्स्ट्रोवर्जन। इंट्रोवर्जन एण्ड ईरानियन इ एल एल लर्नर्स लिसनिंग कंप्रीहेंसन एबिलिटी। जर्नल ऑफ रिसर्च इन पर्सनेलिटी। वॉ0–5, नं0–5, पृ0 19–30.
- वालिया, जे0एस0 (2000) : शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें, प्रकाशक–पाल पब्लिशर्स, गोपाल नगर, जालंधर (पंजाब)।
- शर्मा, प्रेमा एवं चौहान, शालिनी (2010) : क्रियेटिविटी एण्ड पर्सनेलिटी डायमेंसंस (इंट्रोवर्जन–एक्स्ट्रोवर्जन) ऑफ हायर सेकेण्ड्री स्टूडेंट्स। द जर्नल ऑफ प्रोग्रेसिव एजूकेशन। वॉ0 3, नं0–1, पृ. 51–57.
- शर्मा, रेनुका (2008) : पर्सनेलिटी एण्ड एडजस्टमेंट कोरिलेट्स ऑफ आर्गेनाइजेशनल कमिटमेंट एमोंग कॉलेज टीचर्स। द जर्नल ऑफ प्रोग्रेसिव एजूकेशन। वॉ0–1, इश्यू–2, पृ. 46–56.
- सिंह, अरूण कुमार (2001) : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ। प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास, चौक, वाराणसी।
- सिंह, आर.पी., कुमार, देवेन्द्र एवं अन्य (2002) : व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, प्रकाशक–शोध सुमन प्रकाशन, अलीगढ़।
- सेरपिल आइटेक एवं अन्य (2012) : द इंफ्लूएंस ऑफ पर्सनेलिटी ऑन स्टूडेंट्स कैरियर वैल्यूज। एनाडोलू यूनीवर्सिटी। जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज, वा0–12 (2), पृ. 181–190.

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

वायुपुराणेसृष्टिप्रक्रिया

❑ डॉ. नीतू गुप्ता*

शोध सारांश

अस्य रहस्यमयंब्रह्मण्डस्योत्पर्त्तिविषये मानवं परंविस्मयं संजातम्। वैज्ञानिकाः अपि अस्मिन् विषये परं चिन्तनं क्रियते। पुराणसाहित्यत्यस्य पञ्चलक्षणानुसारेण पृथ्व्योत्पत्तिः तथा च सृष्टिप्रक्रिया 'सर्ग' इत्येवं नाम्ना ज्ञायते। पृथ्व्योत्पत्तिः तस्योपरि जलपर्वतवनस्पतयः इत्यादीनामोत्पत्तिं पुराणे मानवीकरणस्य माध्यमेन कथ्यते। ब्रह्म विशालकायवाराहरूपं धारयित्वा सलिलं समुद्रेषु, नदीषु विन्यसन्। तदोपरान्तं पृथ्वीं निर्दिष्टस्थाने नीत्वा पर्वतशिलानां च विभागं कृत्वा लोकान् असृजत्। इत्येवं अस्मिनविषये मतैक्य नास्ति; किन्तु पुराणे निर्दिष्टतं सृष्टिप्रक्रियाविषये अत्र विचारं क्रियते।

सर्गप्रतिसर्गवंशोमन्वन्तरवंशानांचरितञ्चेति पञ्चलक्षण-स्यानुसारेण पुराणे विस्तृतविवेचनं वर्तते। सृष्टिप्रक्रिया-ब्रह्माण्डोत्पर्त्ति, ग्रहनक्षत्रादीनामोत्पत्तिः विश्वनिर्माणं इत्यादि-विषयकचिन्तनं वायुपुराणे विद्यते। सामान्यतः सर्वेषु महापुराणेषु सृष्ट्रयोत्पर्त्तिविवेचनं समानरूपे विद्यते। वेदेऽपि सृष्ट्रयोत्पत्तिः ब्रह्माणा एव कथितम्।

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चन मिषत। स ईक्षत लोकान्नु सृा इति[1]।

अत्र 'स' ब्रह्माणो परिचायकोऽस्ति। वायुपुराणेऽपि सृष्ट्रयोत्पत्तिः ब्रह्मणा एव प्रतिपद्यते यथा–

नारायणः परोऽव्यक्तादणडमव्यक्तसंभवम्।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्म लोकास्तेन कृतास्वयं[2]॥

पुराणानुसारेण सृष्टिकालं ब्रह्मणो दिनं तथा च प्रलयकालं रात्रिरुच्यते[3]। यदा पृथ्व्योपरि किंचिदपि नासीत्। केवलं जलमेव जलमासीत्[4]।

ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम्।
भूराद्याश्चतुरो लोकान्पुनः सोऽथ प्रकल्पयत्[5]॥

लोकानां सृष्ट्रयोपरान्तं सः प्रजासृष्टिः कृतवान्।

पुराणे प्रकृतिः त्रिगुणात्मिका वर्तते। यदा रजस्तमसत्त्वैः इति गुणानां वषम्येन तेषां परस्परऽऽश्रयेण सृष्टिं भवति[6]।

गुणवैषम्यमाषाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः[7]।

सृष्टिकाले प्रधानप्रकृतिपुरुषः च परस्परसमभावेन स्थिरो भूत्वा त्रिषु गुणेषु स्थितं भवता।

रजोगुणब्रह्मरूपः; तमोगुणरूपाग्निः; सत्त्वगुणरूपोविष्णुः प्रधानप्रकृतेः सह सृष्टिकार्ये प्रवर्तते[8]। ब्रह्मा लोकसृष्ट्रियोपरान्तं महेश्वरेन सह प्रजासृष्टिकार्य करोति इत्येवं पुराणे वर्णितम्[9]। ब्रह्मा प्रजासृष्टिकार्याय सप्तमानसपुत्रान् असृजत।

भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वशिष्ठं च महातेजाः ससृजे सप्तमानसान्॥
पुत्रानात्मसमान्नन्यान्सोऽसृजद्विश्वसंभवान्[10]।

---

* एम.ए., समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

तेषां सप्तमानसपुत्राणां नामानि इमानि सन्ति - भृगुः, अङ्गिरा, दक्षः, पुलस्त्यः, पुलहः, क्रतु, वशिष्ठश्च। एताः सप्तमानसपुत्राः रुद्रदेवस्य अनुगामी आसन्। अतो ते रुद्रदेवस्य आज्ञां प्रात्वा ब्रह्मणा कृत् सृष्टिकार्ये प्रवृत्ताः अभवन्। तेषु सप्तपुत्रेषु दक्षः श्रेष्ठः प्रजापतिः आसीत्। अतो सृष्टिकार्यापि त्रिदेवानामिच्छानुसारेण चालयति। किन्तु पुराणे एकत्त्वरुपेऽपि ब्रह्मैव प्रजाऽभिलाषी कथ्यते। तेन ब्रह्मणैव प्रजासृर्ष्टि जायते। वेदेऽपि जगतोत्पर्त्ति ब्रह्मणैव स्वक्रीयते।

''ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपाश्चतेति तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या औषधयः। औषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्यदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति[12]।''

सन्दर्भग्रन्थनामावली

1. एतरेयोपनिषद (1/1/12)
2. वायुपुराणम् (6/78)।
3. वायुपुराणम् (5/2)।
4. वायुपुराणम् (6/2)।
5. वायुपुराणम् (6/33)।
6. पुराणों में त्रैगुण्य-गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी।
7. वायुपुराणम् (5/13)।
8. वायुपुराणम् (5/15)।
9. वायुपुराणम् ((26/79-80)।
10. वायुपुराणम् (26/83)।
11. वायुपुराणम् (26/91)।
12. तैत्तरयोपनिषद (द्वितीयवल्ली/प्रथमोऽनुवाकः)।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

सुभद्रा कुमार चौहान : एक तेजोमय व्यक्तित्व

❑ डॉ. (श्रीमती) पूनम मिश्रा*
❑ करुणापति त्रिपाठी**

शोध सारांश

भारत में आजादी के लिये लड़े गये अनेक आन्दोलनों में भारतीय स्त्रियों ने न केवल भाग लिया बल्कि उन्होंने कई आन्दोलनों का सफल नेतृत्व भी किया। प्राचीनकाल से लेकर आज तक अनेक भारतीय नारी रत्नों ने संसार में कई उच्चतम आदर्शों की स्थापना की और अपने सुकृत्यों एवं सेवाओं से नारी जाति के नाम को उज्जवल किया चाहे 1857 का स्वतंत्रता संग्राम हो अथवा असहयोग आन्दोलन, चाहे म0प्र0 का झण्डा सत्याग्रह, जंगल सत्याग्रह हो अथवा सविनय अवज्ञा आन्दोलन, क्रांतिकारी आन्दोलन या भारत छोड़ो आन्दोलन हो, स्वतंत्रता की हर लड़ाई में वह पुरूषों के साथ बराबर सहयोग करते देखी गई। उसने अपने जबरदस्त कारनामों से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि वीरता पर केवल पुरूषों का ही एकाधिकार नहीं है, नारी में भी असीम शक्ति है और उसकी शक्ति को अधिक समय तक दबाकर नहीं रखा जा सकता है। रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हजरत महल, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, ऐनी बेसेन्ट, अरूणा आसफ अली, कमला नेहरू आदि अनेक ऐसी ही वीरांगनाएं हैं, जिनमें आश्चर्यजनक धैर्य, साहस एवं नेतृत्व की क्षमता थी। म0प्र0 के झण्डा सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने एवं समस्त स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करने वाली महान स्वतंत्रता सेनानी लेखिका सुभद्रा कुमारी चौहान के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को इस शोध पत्र में उजागर करने का प्रयास किया गया है।

* प्राध्यापक (इतिहास), शा.ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी (इतिहास), शा.ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सामान्य रूप से जब हम ''खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी'' कविता की पंक्तियां याद करते हैं तो झांसी की रानी तो याद आती है साथ ही झांसी की रानी को अपनी कविता की पंक्तियों से अमर बनाने वाली सुभद्रा जी का अपने आप स्मरण हो आता है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से भारत के हर घर में स्वतंत्रता का दीप जलाया था। वे केवल कलम की ही धनी नहीं थी, अपितु उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय होकर तथा आर्थिक कष्ट सहकर भी देश प्रेम का परिचय दिया था। उनका जन्म 1905 ई0 में प्रयाग के निहालपुर मुहल्ले में हुआ। वे अपने माता पिता की सातवीं सन्तान थी, उनके मन में बचपन से ही करूणा और दया थी। नौकरों और गरीबों के लिये उनमें अपार करूणा की भावना थी। कई बार उन पर दया करने के कारण उनको डांट भी खानी पड़ती थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा प्रयाग में ही हुई थी। वे एक तेज एवं कुशाग्र बुद्धि की छात्रा थी। बचपन में वह चंचल और शरारती थी। उन्होंने उच्च शिक्षा क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में प्राप्त की थी। विद्यार्थी जीवन में ही उनका परिचय महादेवी जी के साथ हुआ था। दोनों के स्वभाव में काफी अन्तर था। महादेवी जी शान्त और गंभीर स्वभाव की थी, जबकि सुभद्रा जी मुहफट और तेज पर दोनों में एक समानताा अवश्य थी, दोनों मौज में आने पर गणित की कापी में ही कविता लिख डालती थी। इनका विवाह 14 वर्ष की आयु में जबलपुर के प्रसिद्ध वकील लक्ष्मण सिंह जी से हो गया था। स्वभाव से तेज एवं रूढ़ि विरोधी होने के कारण जब ससुराल में इन्होंने परदा नहीं किया तो उन्हें काफी विरोध सहना पड़ा, परन्तु इनके पति ने इनका पूरा साथ दिया, क्योंकि वे स्वयं रूढ़ि विरोधी एवं स्वतंत्रता प्रेमी थे, और सुभद्रा जी की भावनाओं को भली–भांति समझते भी थे।

सुभद्रा जी ने अपनी प्रथम काव्य रचना 15 वर्ष के आयु में की थी, उन्होंने कहानी तथा निबन्ध लिखने में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। मुकुल, नक्षत्र, सभा का खेल तथा त्रिधारा उनके कविता संग्रह में प्रमुख है। सुभद्रा जी को कविता लेखन के साथ–साथ अपनी पढ़ाई को आगे रखने का काफी शौक था, परन्तु देश में निरन्तर होने वाली राजनैतिक हलचलों ने उनकी पढ़ाई को आगे जारी ना होने दिया। जलियावाला बाग काण्ड से दोनों पति–पत्नी अत्यन्त आहत हुये और उसके बाद असहयोग आंदोलन के समय उनके पति लक्षमण सिंह ने आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। सुभद्रा जी ने इसी समय से राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत प्रेरणादायी कवितायें लिखना आरम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों किशोरावस्था में उन्होंने 'राखी की लाज' तथा 'जलियावाला बाग में बसन्त' जैसी ओजस्वी तथा राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कवितायें लिखी। उनके पति जब पढ़ाई छोड़कर वकालत कर रहे थे, तभी उनको सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने सुभद्रा जी को लिखा था – ''बहन तुम्हारे रहते, लक्षमण सिंह मां की पुकार न सुन वकालत में कैसे'', पत्र की बात दोनों पति–पत्नी को लग गई। विद्यार्थी जी ने दोनों पति–पत्नी को जबलपुर बुलाया तथा कर्मवीर पत्र जिसका संपादन पं0 माखनलाल चतुर्वेदी जी 'एक भारतीय आत्मा' नाम से कर रहे थे, का उन्हें साहित्य सम्पादक बना दिया। वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से दोनों का रिश्ता यही से जुड़ गया था, क्योंकि सुभद्रा जी का कार्य क्षेत्र अब जबलपुर हो गया था। जबलपुर में उन्होनें तिलक राष्ट्रीय विद्यालय के माध्यम से महिलाओं में सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागृति लाने का प्रयास किया, उन्होंने देश के लिये कार्य करने हेतु कई स्वयंसेवकों को संगठित

करना यहीं से प्रारम्भ कर दिया। पं0 माखनलाल चतुर्वेदी जब गिरफ्तार हो गये थे तब उनकी मुंह बोली बहन सुभद्रा जी ने बिलासपुर क्षेत्र में गांव–गांव जाकर लोगों को संगठित करने का कार्य किया। इसी बीच उनका परिचय जैनेन्द्र कुमार से भी हुआ। झण्डा सत्याग्रह में सुभद्रा जी को पंडित सुन्दरलाल तथा महात्मा भगवानदीन जैसे प्रबुद्ध विचारक और संगठनकर्ताओं के साथ कार्य करने का अवसर भी प्राप्त हुआ, उन्होंने सभी राष्ट्रीय स्तर के स्वतंत्रता सेनानियों के साथ अत्यन्त सूझ–बूझ के साथ कार्य किया। जबलपुर में 1923 में जब झण्डे का अपमान किया गया था, तब इस अपमान के विरोध में पं0 सुन्दरलाल जी ने दस व्यक्तियों की एक समिति बनाई थी। इन दस लोगों में एक सुभद्रा जी भी थी, जो तिरंगा लेकर छावनी की ओर बढ़ी थी। इस कारण 18 वर्षीय सुभद्रा जी को पुलिस हिरासत में रहना पड़ा था। इस सत्याग्रह में गिरफ्तारी देकर जबलपुर से गिरफ्तार होने वाली वे पहली महिला सत्याग्रही बनी। जेल में उन्होंने कई कवितायें लिखी जो देश प्रेम से ओत–प्रोत थी। जेल में बीमार हो जाने के कारण उन्हें समय से पहले रिहा कर दिया गया था। इसके बाद उन्हें पांच हजार स्वयंसेवक तथा पांच हजार रूपये जुटाने का भार सौंपा गया था। जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 1929 ई0 में राष्ट्रीय नेताओं के जबलपुर आने पर निषेधाज्ञा थी, परन्तु इस आज्ञा को तोड़कर वे जुलूस में शामिल हुई, परन्तु इस समय उन्होनें गिरफ्तारी नहीं दी। झण्डा सत्याग्रह की समाप्ति पर उन्होंने एक बालिका को जन्म दिया। इसी समय कर्मवीर का कार्यालय खण्डवा चले जाने के कारण लक्ष्मण सिंह को वकालत का सहारा लेना पड़ा। 1931–32 के सत्याग्रह आन्दोलन में दोनों पति–पत्नी पुनः देश की सेवा करने को तत्पर हो गये। इसी बीच उन्होंने एक पुत्र को भी जन्म दिया। 1932 में जब लक्ष्मण सिंह जेल में थे, तब अपने बच्चों की पूरी देखभाल उन्होंने ही की थी और इसी समय आर्थिक संकट के कारण सुभाष चन्द्र बोस ने उनके बच्चों के लिये फल, मिठाई और कुछ आर्थिक सहायता भी भेजी थी, वे उन्हें झांसी की रानी कविता की प्रसिद्ध के कारण बहुत अच्छे से जानते थे।

1932 ई0 में ही सुभद्रा जी गांधी जी के सम्पर्क में आई और कुछ समय में उनकी विश्वास पात्र भी बन गई। 1936 के चुनाव में जबलपुर की सुरक्षित महिला सीट के लिये सरदार वल्लभ भाई पटेल जी ने उनका नाम प्रस्तावित किया था, उन्हें प्रांतीय कमेटी से स्वीकृति भी मिल गई, परन्तु उनके विरोध में कुछ लोगों ने एक अन्य महिला को भी खड़ा कर दिया था, परन्तु उसका नामांकन गलत होने के कारण इन्हें निर्विरोध चुन लिया गया और काफी समय तक वे मध्य प्रान्त असेम्बली की सदस्य बनी रही। ऐसा नहीं कि उनके विरोधी नहीं थे, परन्तु अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण वे सबके विरोध को सहती हुई आगे बढ़ती गई।

इसके बाद आगे भी देश की सेवा में सुभद्रा जी ने हमेशा अपने को आगे रखा। त्रिपुरा अधिवेशन में अत्यन्त बीमार होने के बाद भी उन्होंने एक कर्मठ स्वयंसेविका की भांति ही कार्य किया। 1941 के आंदोलन में व्यक्तिगत सत्याग्रह में बापू ने उन्हें सत्याग्रह करने की आज्ञा दी थी, जिसमें उन्होंने गिरफ्तारी नहीं दी थी। दूसरी बार उन्होंने गिरफ्तारी दी थी, पर उन्हें एक दिन के बाद ही रिहा कर दिया था। तीसरी बार जब उन्हें गिरफ्तार किया गया था, तब वे एक महीने जेल में रही। वहां पर भी वे महिला बन्दियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के विरूद्ध वहां के अधिकारियों से जूझती रही। सुभद्रा जी में देश प्रेम और देश भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी। वे किसी भी परिस्थिति में अपने

इस प्रेम से समझौता करने को तैयार नहीं होती थी। भारत छोड़ो आन्दोलन में जब उनके पति जेल में थे तब भी वे भी घर में राशन आदि की व्यवस्था करके जेल जाने की तैयारी में जुट गई, पर वहां की स्थानीय महिलाओं ने उनका साथ नहीं दिया, परन्तु फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और लोगों को प्रोत्साहित करने हेतु एक सभा का आयोजन किया। जहां मंच पर भाषण देते समय पुलिस द्वारा छोड़े गये अश्रु गैस के गोले से वे घायल हो गई। इसी बीच पुलिस उनके घर पर तलाशी लेने जा पहुंची। घायल अवस्था में जब ये समाचार उन्हें मिला तब वे घर नहीं गई, बल्कि अपनी एक पुस्तक के अधिकार को बेचने के लिये सीधे इण्डियन प्रेस के प्रतिनिधि के पास गई और उस अधिकार को बेचकर जो पैसे मिले उनमें से 125 रूपये देकर रामानुज श्रीवास्तव को अपने बच्चों का संरक्षक बनाया और बाकी 125 रूपये अपनी बड़ी बेटी सुधा को देकर जेल जाने को तैयार हो गई। इसी समय जब वे जेल में थी तब किसी ने उनके पति के संबंध में झूठी जानकारी दी और बच्चों के लिये कहा कि बच्चे घर में अकेले हैं, मांफी मांग कर घर चली जाओ। इस समाचार देने वाले को उन्होंने कहा यदि बच्चों की इतनी फिक्र है तो बच्चे उनके भी तो हैं, उन्हें बच्चों की अधिक चिन्ता है तो वे स्वयं क्यों नहीं माफी मांग लेते उनके इस उत्तर से उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। घर में आर्थिक परेशानी, स्वयं की बीमारी एवं बड़ी बेटी सुधा के विवाह की चिन्ता, घर पर तो उन्हें इन सब समस्याओं को सुलझाना था। समय और परिस्थितियों के साथ के कारण उनकी पुत्री सुधा का विवाह बिना दहेज के मुंशी प्रेमचन्द्र के पुत्र अमृत राय के साथ साधारण तरीके से सम्पन्न हो गया। पिता लक्ष्मण सिंह पैरोल पर जेल से आये और कच्चे सूत की दो मालायें बेटी और दामाद को पहनाकर आर्शीवाद देकर जेल चले गये, इसके बाद भी सुभद्रा जी देश के लिये लगातार संघर्ष करती रही। 1947 ई0 में भारत की आजादी के बाद ही उन्होंने चैन की सांस ली, परन्तु स्वतंत्रता प्रेमी सुभद्रा जी स्वतंत्र भारत में ज्यादा दिनों तक सांस न ले सकी और 15 फरवरी 1948 ई0 को एक दुर्घटना में उनका देहावसान हो गया और सुभद्रा जी जैसा तेजोमय व्यक्तिगत उस ईश्वर रूपी परम तेज में जा मिला।

वास्तव में वे एक अलौकिक व्यक्तित्व की धनी थी। अपने जीवन में उन्होंने जिन आदर्शों को स्थापित किया था वह न केवल उस युग की नारियों के जीवन में अपनाने योग्य थे बल्कि आज की हर नारी को उस आदर्श नारी के जीवन एवं कृत्यों से एक प्रेरणा मिलती है। जिस प्रकार अमृत की एक बूंद पीने से व्यक्ति अमर हो जाता है उसी प्रकार सुभद्रा जी की कविता की एक पंक्ति गुनगुनाने से राष्ट्र के प्रति अपार प्रेम की भावना का संचार होने लगता है। अतः देश के अमरत्व के लिये, भारत मां के जीवन के लिये वे अमृत तुल्य प्रेरणा स्त्रोत के रूप में दिखाई देती है। भले ही आज वो हमारे बीच नहीं है पर उनका साहित्य हमें हमेशा उनके देश के प्रति किये गये बलिदान और त्याग को स्मरण कराता रहेगा। आज के युग में तो उनके साहित्य को और भी अधिक पढ़ने की आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता दिखाई देता है। हर जगह लोभ, लालच और बेईमानी की परत जमती जा रही है। अतः आज लोगों को अपने मन को स्वस्थ और जीवन को पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है। अतः वर्तमान समय में उस महान व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर आज का स्त्री वर्ग उन्हीं के समान जीवन को कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ाते हुये अपने जीवन को और अधिक सुदृढ़, पवित्र और आशावादी

बनाये रख सकता है और इस तरह से आज की स्त्रियां मजबूत इरादों के साथ स्वतंत्र भारत की स्त्रियों की स्थिति एवं जीवन में परिवर्तन एवं सुधार हेतु नये उपायों को प्रकाश में ला सकती है। उन उपायों को सरकार द्वारा कानून रूप से परिणित कराकर देश एवं स्त्री जाति के कल्याण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। जब स्वतंत्रता सेनानी महिलायें अपने दृढ़ इरादों एवं कार्यों से देश को स्वतंत्र करा सकती है तो आज की स्त्रियां क्यों नहीं अपना योगदान देकर देश की स्थिति में सुधार हेतु कार्य कर सकती है। आवश्यकता है सिर्फ मजबूत इरादों की।

सन्दर्भ –

1. डा0 मुरारी लाल गोयल 'क्रान्तिकारी महिलायें, सूर्य भारती प्रकाशन, नई दिल्ली – 2000
2. आशारानी व्होरा, सवतत्रंता सेनानी लेखिकाय दिल्ली – 2004
3. शालिनी सक्सेना, स्वाधीनता आन्दोलन में मध्य प्रान्त की महिलायें, स्वराज संस्थान भोपाल – 2001
4. म0 प्र0 जिला गजेटियर जबलपुर, गजेटियर संचालनालय संस्कृति विभाग, भोपाल – 1992
5. शम्भू दयाल गुरू, म0 प्र0 में स्वतंत्रता आन्दोलन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल – 2008

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

श्रीमद्भागवत में रासलीला

❒ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❒ पूजा वर्मा**

श्रीमद्भागवत में राधाकृष्ण की ललित तथा मधुर लीलाएँ बड़े विस्तार के साथ वर्णित हैं। परन्तु राधा का नाम स्पष्टतया अंकित नहीं है। भागवत में रासलीला के प्रसंग में वर्णन आता है कि श्रीकृष्ण रास मण्डल से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर निहित हो जाते हैं। इस व्यापार से सब गोपियाँ व्याकुल हो जाती हैं और श्री कृष्ण को खोजने का प्रयत्न करती हैं। अन्वेषण करते हुए कृष्ण के पद चिन्ह दिखाई पड़ते हैं।

''भगवान्पि ताः रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।[1]

श्रीमहारास के नायक श्रीकृष्ण चन्द्र हैं तथा प्रधान नायिका रासेश्वरी श्री राधा जी हैं। जिन्हें शुकदेव स्वामी भगवान् और योग माया शब्द से कहा है; अस्तु इन दोनों के विषय में यत्किंञ्चित चर्चा कर लेना आवयश्क है।

अकेले नहीं उसके पास किसी ब्रजबाला का पदचिन्ह दृष्टिगोचर होता है उसके सौभाग्य की प्रशंसा करती हुई गोपियाँ कह उठती हैं–

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनय द्रहः।।[2]

इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान् ईश्वर कृष्ण आराधित हुए हैं। क्योंकि गोविन्द हमको छोड़कर प्रसन्न होकर उसे एकान्त मे ले गये हैं। धन्या गोपी की प्रशंसा में उच्चरित इस पद्य में राधा नाम झीने चादर से ढके हुए किसी वहुमूल्य रत्न की तरह स्पष्ट झलकता है।

इस श्लोक की टीका में गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने स्पष्ट ही राधा का गूढ़ संकेत खोज निकाला। अनया राधितः का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया अनया+राधितः तथा अनया+आराधितः। दोनों में समान अर्थ की ही अभिव्यक्ति होती है। श्री सनातन गोस्वमी ने अपनी 'वृहत्तोषिणी' व्याख्या में लिखा है–राधयति आराधयति श्री राधेति नामकरणञ्च'' श्री जीव गोस्वामी ने यही बात दोहराई है अपनी वैष्णव तोषिणी व्याख्या में।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती अपनी ''सारार्थदर्शिनी'' में कहा है कि पदचिन्हों को देखकर गोपियों ने यह समझ लिया कि ये चिन्ह निःसन्देह वृषभानु नन्दिनी के ही हैं, परन्तु नाना प्रकार की गोपियों के यूथ में उसका बाहर प्रकाशन उन्हे अनुचित जान पड़ा। इसलिए उस विशिष्ट गोपी की नाम निरुक्ति द्वारा उसके सौभाग्य को सहर्ष अभिव्यक्त किया–

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

पदचिन्हैरेव तां वृषभानुनन्दिनीं परिचित्य अन्तराश्वस्ता बहुविध गोपीजन संघट्टे तत्र वहिरपरिचयमि–वार्भभनयन्त्यः तस्याः सुहृद तन्नामनिरुक्ति द्वारा तस्याः सौभाग्यं सहर्षमाहुः।

"विशुद्धिरस दीपिका" ने इस श्लोक की व्याख्या में गोविन्द नाम की महत्ता प्रदर्शित की है। वाराहतन्त्र का वचन है कि भगवान् हरि वृन्दावन में गोविन्द नाम से प्रख्यात होते हैं, अर्थात् ये वृन्दावन के ईश्वर हैं। फलतः आराधन के द्वारा उस गोविन्द को अपने वश में करने वाली गोपी निःसन्देह वृन्दावनेश्वरी है। इस प्रकार इस श्लोक के द्वारा प्रधान गोपी का नाम ही संकेतित नहीं होता प्रत्युत उसकी भूयसी महत्ता भी प्रदर्शित होती है–सच अनया सहयातया राधितः वशीकृतः सन् गोविन्दः श्री वृन्दावनेश्वरीत्वाद् अस्याः। तस्य च वृन्दावने श्वरत्वा दितिभावः वृन्दावने तु गोविन्दमितिवाराह–तन्त्रोक्तेः।

श्री निम्बार्क मतानुयायी टीकाकार शुकदेव ने अपने सिद्धांन्त प्रदीप में राधितः पद की एक विलक्षण व्याख्या की है। राधितः का अर्थ है राधा से संयुक्त। अर्थात् कृष्ण के विहार में राधा ही हेतुभूत हैं, उनके बिना वृन्दावन में कृष्ण कर विहार ही फीका और निष्प्राण है। राधा के कृष्ण का निकु०ज विहार नितान्त गोपनीय होता है। वह अनुभवैकगम्य दिव्य वस्तु है। इसी अभिप्राय से श्री शुक्रदेव जी महराज ने न उस विशिष्ट गोपी का नाम निर्देश किया है, और न कृष्ण के साथ उनके विहार का ही स्पष्ट शब्दो में वर्णन किया है–राधा सह जाता अस्य तथा तारकादिभ्य इतच्"। राधाकृष्ण विहारे हेतु–भूतेयमित्यर्थः तया सह विह्वारीऽतिगोप्य–त्वन्नोक्तः।

शुकूदेवाचार्य जी के मत में यह श्लोक कृष्ण की निकुञ्ज लीला का संकेत करता है।[3] यह लीला नितान्त गोप्य तथा रहस्यभूता है। जहाँ किसी का भी प्रवेश निषिह् है। परमरसाभूत मूर्ति सकल सौन्दर्य निकेतन का रस रूप भगवान् रस के आस्वादन के लिए दो रूप धारण करते हैं। जिनमें एक है श्रीकृष्ण रूप, दूसरा श्री राधा रूप। इस प्रकार राधाकृष्ण की विशुद्धि इसके लिए ही निकुञ्ज लीला के द्वारा ही प्रतिष्ठित होती है। वह नितान्त गोपनीय होती है। इसलिए मुनि ने दोनो को यहाँ गोप्य रखा।

श्री सनातन गोस्वामी की कल्पना है कि जब शुकूदेव जी गोपियों के अद्भुत प्रेम की लीला प्रस्तुत कर रहे थे तब उनकी विरहाग्नि की कणिका से उनका हृदय इतना विकल हो उठा कि वे अपना देहानुसन्धानभूल गये। ऐसी विकलता में राधा का नाम उनके मुख से बाहर नहीं निकला तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है?

गोपीनां विततादभुतस्फुटतर प्रेमानलार्चिच्छटा,
दग्धानां किल नामकीर्तनकृतात् तासां विशेषात् स्मृतेः।

तत्तीक्ष्णोज्जलनच्छिखाग्र कणिका स्पर्शेन सद्योमहा–

वैकल्यं स भजन् कदापि न मुखे नामानिकर्तुं प्रभुः।।

एक दूसरा भी कारण है इसका। यह तो लोकप्रसिद्ध बात है कि इष्ट को गोपन से ही रखा जा सकता है। रसिक श्री व्यासजी ने अपने पद में इसी तथ्य की ओर संकेत किया है

रसिक का कथन है कि राधा का नाम गुप्त रखना शुकदेवजी की चातुरी है, कि उन्होंने अन्य लीलाओं का वर्णन तो नदी के समान उन्मुक्त शैली में किया, परन्तु रास का वर्णन कूप जल के समान निगूढ़ शैली में किया–

लीलाशुकस्य लीलयं लीलान्यासोपवर्णिता।
कल्लोलिनी स्वरूपेण रासं कूप जलोप मम्।।

इसका आशय यह है कि जिस प्रकार नदी से कोई प्यासाविना पात्र के ही जल पीकर अपनी प्यास बुझा सकता है, इसी प्रकार भागवत में श्री

कृष्ण के ख्यू वात्सल्य आदि लीलाओं का आस्वादन प्रत्येक प्रकार का भक्त कर सकता है किन्तु रास का वर्णन भंगी कुएँ के जल के समान है। लोटा और डोरी जिस व्यक्ति के पास न हो तो वह प्यासा होने पर अपनी प्यास नहीं बुझा सकता। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के पास निष्ठा रूपी डोरी तथा प्रेम रूपी पात्र का अभाव है, वह चाहे कितना भी जिज्ञासु क्यों न हो रास पच्चाध्यायी का एक अक्षर भी यथार्थतः नहीं समझ सकता रास पञ्चाध्यायी के प्राण हैं श्री राधा।

पझपुराण के ब्रह्म खण्ड में राधा जी के जन्म के विषय में कहा गया है कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को वृषभानु जब यज्ञ के लिए भूमि का शोधन कर रहे थे, तब उन्हें राधाजी मिली और उन्हें लाकर वृषभानु जी अपनी पत्नी कीर्ति को दिया जिसने कन्या का लालन–पालन कर बड़ा किया।[4]

यहीं पर माणिक्य के सिंहासन पर विराजमान् गोविन्द के रूप का बड़ा ललित तथा साहित्यिक विवरण है। इसी प्रसंग में राधा जी का उल्लेख है–

तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्ण बल्लभा।
तत्कलाकीटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः।।
तस्या अंगिरजः स्पर्शात् कोटि विष्णुः प्रजायते।।[5]

राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा हैं। दुर्गा आदि त्रिगुणमयी देवियाँ उसकी कथा के करोड़वें अंश को धारण करती हैं और उनके चरण की धूलि के स्पर्शमात्र से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं। यहीं पर राधा मूल प्रकृति बताई गयी हैं और उस प्रकृति की अंश रूपिणी नाना गोपियों का उल्लेख है, जो उनके स्वर्ण सिंहासन के आस–पास रहती हैं। इसी खण्ड के 77वें अध्याय में राधा विद्या तथा अविद्या रूपिणी वृन्दावनेश्वरी बताई गयी हैं। जिनका आलिंगन कर वृन्दावनेश्वर सर्वदा आनन्दमग्न रहते हैं–

तासां मध्ये तु या देवी तप्तचामीकरप्रभा।।
द्योतमाना दिशः सर्वाः कुर्वती विद्युदुज्ज्वलाः।
प्रधानं या भगवती यदा सर्वामिदं ततम्।।
सृष्टिस्थित्यन्त रूपा या विद्याऽविद्या त्रयी परा।
स्वरूपा शक्तिरूपा च माया रूपा च चिन्मयी।।
ब्रहम विष्णु शिवादीनां देह कारण कारणाम्।
चराचरं जगत् सर्वं यन्मायापरिरम्भितम्।।
यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वन्हौ च दाहिका।
भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव।।[6]

जिस प्रकार दूध में धवलता, अग्नि में दाहकता, पृथ्वी में गन्ध, जल में शीतलता का निवास रहता है, उसी प्रकार कृष्ण में तुम्हारी स्थिति है।

वैदिक मन्त्रों में कृष्णचरित का अनुसन्धान महाभारत के प्रख्यात टीकाकार नीलकष्ठ चतुर्धर ने सांगोपांग रूप से किया है इस ग्रन्थ का नाम है "मन्त्रभागवत"[7] जिसमें कृष्ण के नाना चरित तथा लीला के प्रदर्शक मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत किये गये हैं और उनके ऊपर नीलकण्ठ ने अपनी नयी व्याख्या की है जिसमें उन मन्त्रों का कृष्णपरक तात्पर्य स्पष्टतया निर्दिष्ट किया गया है। नीलकण्ठ के अनुसार राधाकृष्ण का नाम इस मन्त्र में निर्दिष्ट है–

"अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्रषिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आवक्षाणाः पृणध्वं यातशीभम्।।[8]

यह मन्त्र प्रसिद्ध विश्वमित्र नदीसूक्त के अन्तर्गत आता है जिसमें विश्वामित्र तथा नदियों में सम्बाद है इस तथ्य को स्वीकार करते हुए भी नीलकण्ठ जी का कथन है नदी समुद्र के व्याज से विश्वामित्र गोपियों को श्रीकृष्ण के प्रति अभिसार करने के लिए प्रेरित करते हैं राधा जी को अत्यन्त महत्वशालिनी होने के कारण गोपियाँ यहाँ सुराधा कहीं गयी है। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र के पास जाकर अपने को पूर्ण करती हैं और जीवन को चरितार्थ करतीं हैं उसी प्रकार गोपियों को भी

जिनमें श्री राधा मुख्य गोपी है, श्री कृष्ण से मिलकर अपने जीवन को पूर्ण बनाने का उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है। कृष्ण का सूचक यहाँ शीभ शब्द हैं। इसकी व्याख्या है।

शेतेऽस्मिन सर्वमितिशीः। भातिस्वयं ज्योतिष्ट्वेन् प्रकाशते इति भः। शीश्चासौ भश्चेति शीभः। तं सर्वलयाधिष्ठानचिन्मात्रस्वरूपमित्यर्थः यद्वाशीभः कथ्यते। शीभन्ते कत्थन्ते श्लाघन्ते आत्मान मनेन् इति शीभः। अकर्तरि च कारके संज्ञायानितिकरणे घः। यं प्राप्य भक्ताः कृतार्थमात्मानं मन्यन्ते इत्यर्थः।[9]

श्रीमद्भागवत के प्रथम मंगलाचरण के पद्य में ही श्री राधा जी का परिचय प्राप्त होता है। ''परंधीमहि'' परं श्री राधाकृष्ण तत्वं (नपुंसकमन–पुंसकेनेकवद्यास्यान्यतरस्याम्) अत्र एक शेषो परंञ्च, पराच, परै, मत्तःपरतरंनान्यत्किंचिदस्ति धनंजय'' इति श्रीमदभागवत गीता वाक्य से यहाँ परं शब्द में एक शेष है जैसे कि 'जगतः पितरौ बन्दे' यहाँ पितरौ एक शब्द से ही माता पिता दोनों का ग्रहण होता है, इसी प्रकार पर शब्द से परा और पर दोनो का ही बोध होता है। अब परा श्रीराधा गौतमीयतन्त्र में 'शक्तिः स्वतन्त्रा परा' ऐसा स्पष्ट ही निरूपण है और पर श्री कृष्ण ही हैं।

गोपी श्रीकृष्ण विरह गान में करती है कि वे कान्त समस्त कामनाओं को देने वाला अपना श्री हस्तकमल हमारे शिर पर धारण कीजिए। वह हस्तकमल कैसा है? ''श्रीकरग्रहम'' श्रियाः श्रीराधायाः करस्य ग्रहों ग्रहणं येन तं अर्थात् जिस हस्त कमल से श्री राधा जी का पाणिग्रहण हुआ।

श्रीमद्भागवत के अनेक स्थलों में विहम वर्णन भी है यथा–

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतिमनाः पशून।
रेमेसग्ंचारयन्नद्रःसरिद्रोधस्सु सानुगः।।[10]

इस पद्य की सारार्थ दर्शिनी टीका में श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती महोदय लिखते हैं– भोश्रीमदर्य! क्षण यह मन्त्र सुवलेन सार्धं गोबर्धन कन्दारा रोधसि विश्राम्या गन्तास्मि व्मग्रे कालिन्दी रोधस्क्षु तावद्विहरेत्युक्त्वा ततो विजुज्य पैगरोडपि कैशोरा विर्भावाद् हसि ब्रजवालभिः सार्ध रेमे इत्याह। एवमग्रजं स्तुत्वा तद्वारैव पशून वृन्दावनं सम्च्चार मन् अद्रे सरितः मानस गहंया रोधस्सु रेमे इत्यन्वयः श्रीमती ब्रजयोषिन्मुख्या सैव प्रीता प्रेमवती यस्यिन्सः अनुगाभिः सखीभिः सहितः व्याख्यानस्यास्य रहस्य त्वादेतस्या वरकं रत्नस्य कनकसम्पुटमिव व्यारूयान्तरम्।।

संदर्भ स्रोत

1. श्रीमद्भागवत पुराण 10 – 29 – 01
2. श्रीमद्भागवत पुराण 10– 30 – 28
3. भागवत सम्प्रदाय– पृष्ठ– 654– 56। नागरी प्रचारणी सभा काशी–सं0 2010
4. श्रीमद्भागवत पुराण, श्लोक–10–39–40
5. श्रीमद्भागवत पुराण पातालखण्ड़–10–अ0 69
6. श्रीमद्भागवत पुराण पातालखण्ड़– 212
7. मन्त्रभागवत का प्रकाशन खेमराज श्रीकृष्ण दास मुम्बई सं0 1967
8. ऋग्वेद 3/33/12
9. ऋग्वेद– 3/33/12 की व्याख्या मन्त्र भागवत
10. श्रीमद्भागवत पुराण 10/15/9

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना

❑ डॉ. आशुतोष कुमार द्विवेदी*
❑ अजय कुमार मिश्र**

शोध सारांश

प्रसाद ऐसे कालजयी विद्वान मनीषी एवं कवि थे जो समय के विराट फलक पर कभी भी कालातीत नहीं होंगे। आपकी कुशल लेखनी जिधर भी चली उधर का पूरा साहित्य खिल उठा। साहित्य मर्मज्ञ एवं सुधीजनों को यदि कहीं विश्राम मिलता है तो वह है प्रसाद साहित्य की वनस्थली। सुधी जनों को प्रसाद साहित्य में गोता लगाकर तृप्त होने का एहसास होता है। इसी कारण से हमें प्रसाद साहित्य में सर्वाधिक अनुसंधान एवं विवेचना देखने को मिलती है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रसाद साहित्य में अनुसंधान का कार्य पूर्ण हो चुका है। प्रसाद साहित्य ऐसा दही है कि उसको जितनी बार मथा जायेगा उसमें उतना ही स्वादिष्ट नवनीत प्राप्त होगा। यदि प्रसाद के नाटकों को इस दृष्टि से देखा जाय तो उनके नाटकों के विवेचना की हमको लम्बी परम्परा दिखाई देती है। चाहे प्रसाद की नाट्य–कला हो या उनके नाटकों में ऐतिहासिकता की विवेचना हो या उनकी भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य परंपरा की दृष्टि से तुलना व विवेचना हो इन सभी क्षेत्रों में प्रसाद के नाटकों पर प्रसाद के नाटकों में अनुसंधान हुआ है, परन्तु 'प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना', विवेचना की दृष्टि से अछूता रह गया। जैसा कि हम जानते है कि प्रसाद के नाटक हिन्दी साहित्य के गौरव है, इनकी विवेचना प्रत्येक दृष्टि से की जा सकती है, और बार–बार की जा सकती है। क्योंकि विवेचना और अनुसंधान से नए निष्कर्ष एवं नवीन सिद्धान्तों की स्थापना हो सकती है।

प्रस्तुत आलेख में 'प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना' प्रसाद के सम्पूर्ण नाटकों में राष्ट्रीय भावना, जनजागरण एवं तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में राष्ट्रीय चेतना के अनुसंधान परक विवेचना का अभिनव प्रयास

* प्रोफेसर (हिन्दी), शासकीय कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए., हिन्दी, नेट

सिद्ध होगा। प्रसाद काल, स्वतन्त्रता आन्दोलन का समय था जिसके परिणाम स्वरूप पूरे देश में राष्ट्र प्रेम और जन–जागरण की लहर थी। निश्चित रूप से इसका प्रभाव प्रसाद साहित्य में और उनके नाटकों में हमें स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। प्रसाद के नाटकों में चाहे वह चन्द्रगुप्त हो स्कन्दगुप्त हो, आजातशत्रु हो आदि सभी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्र प्रेम का भाव उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है।

परिचय–

प्रसाद महान कवि, उत्कृष्ट कथाशिल्पी, युग प्रवर्तक नाटककार, गम्भीर दार्शनिक और प्रबुद्ध चिन्तक ही नहीं, हमारी सांस्कृतिक और सारतत्व परम्परा के श्रेष्ठतम व्याख्याता थे। प्रसाद के नाट्य साहित्य का राष्ट्रीय दृष्टि से अनुशीलन से पूर्व उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है, क्योंकि साहित्य एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। साहित्य और साहित्यकार अपने समाज और युग की व्यापक भावनाओं की देन होते है। नाटककार के जीवन, सिद्धान्त उसकी मनोवृत्ति, भाषाशैली, उसकी साहित्य साधना, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश पर निर्भर करता है। जयशंकर प्रसाद जी का जन्म काशी के प्रतिष्ठित घराने में माघ शुक्ल दशमी संवत 1946 सन् 1889 में हुआ था। आपके पितामह शिवरत्न साहू वाराणसी के अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक थे और एक विशेष प्रकार की सुरती बनाने के कारण सुंधनी साहू के नाम से विख्यात थे। उनकी दानशीलता सर्व विदित थी। प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद साहू ने भी अपनी परम्परा का पालन किया। यह परिवार वाराणसी का सर्वाधिक सम्पन्न घराना था और धन वैभव की कोई कमी नहीं थी। इनके माता पिता ने अपने इष्टदेव शिव जी से पुत्र रत्न की कामना की। इसके लिये वैद्यनाथ धाम से उज्जैयनी तक की आराधना की थी। प्रसाद जी की शिक्षा घर पर ही हुई। उन्होंने संस्कृत हिन्दी, उर्दू, फारसी भाषा का अध्ययन किया। बारह वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता का देहान्त हो गया और परिवार अनेक आर्थिक कठिनाइयों से घिर गया। जब ये सत्रह वर्ष के थे तब उनके बड़े भाई का भी देहान्त हो गया और प्रसाद को परिवार का सारा दायित्व सम्हालना पड़ा। उनका अधिकांश जीवन वाराणसी ही में व्यतीत हुा। प्रसाद जी की पिता की मृत्यु के बाद परिवार ऋणग्रस्त हो गया। ऋणमुक्त होने के लिये प्रसाद को श्रम पूर्वक पैतृक व्यवसाय में लगना पड़ा। स्कूली शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था न हो सकी। वे एक ओर कष्टों से जूझते रहे तो दूसरी ओर अध्यापन मनन और लेखन से राष्ट्र प्रेम की भावना का प्रसार करते रहे। यद्यपि उनके नाटकों पर पारसी रंगमंच का भी प्रभाव था। प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है कि– ''पारसी नाटकों के प्रभाव से जन साधारण के मुख गुफा से शेर निकला करते थे।'' जहॉ तक कविता का सम्बन्ध था तात्कालीन वाराणसी रत्नाकरी प्रभा मण्डल के अन्तर्गत था। स्वयं प्रसाद जी रत्नाकर के रशिक मण्डल में सम्मिलित होते थे। उनकी दुकान से थोड़ी ही दूर पर पारसी रंगमंच के प्रसिद्ध नाट्यकार आगाहश्र काश्मीरी रहते थे। जिनसे प्रसाद का कभी साक्षात्कार नहीं

हुआ। थोड़ा और आगे प्रेमचन्द रहते थे। प्रातःकाल टहलते समय उनका नित्य मिलन होता था। इनके बीच प्रसाद नया मार्ग खोज रहे थे।

''प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना'' के अन्तर्गत प्रसाद के नाटकों की राष्ट्रीय चेतना को अनुसंधान पूर्वक विवेचन के प्रयास का आरंभ है। राष्ट्र प्रेम का भाव सनातन शाश्वत एवं परम्परागत है। प्रसाद इसी परम्परा के पोषक एवं आग्रही मनीषी थे। प्रसाद के नाटकों की विवेचना से पूर्व हम राष्ट्र प्रेम की भावना से संबंधित धारणा को स्पष्ट करना चाहेंगे। प्रत्येक युग में राष्ट्र प्रेम संबंधी साहित्य के सृजन की लम्बी परम्परा रही है। ऋग्वेद से लेकर तमाम संस्कृत वाङ्मय में हमें राष्ट्रीयता के भाव से संबंधित बहुत सी सामग्री मिल जायेगी। राष्ट्र और राष्ट्रीयता एक नैसर्गिक देन है जिससे कोई देश और समाज अलग नहीं रह सकता। राष्ट्रीयता को समझने के लिये साहित्य का मंथन आवश्यक है। यदि साहित्य जैसी विधा राष्ट्रीयता की चर्चा करे तो इस बात की खोज आवश्यक है कि राष्ट्रीयता का उद्भव किस तरह हुआ। वस्तुतः जब इंसान धरती पर रहने लगा तो अपना क्षेत्र अपनी सामर्थ्य व शक्ति के अनुसार निश्चित कर लिया और वही सीमा उसके लिये राज्य का स्वरूप बन गई। किन्तु राज्य अपने आपमें एक निर्जीव इकाई है, क्योंकि उसमें जन–जीवन और उसकी गतिविधि का प्रतिबिंब नहीं दिखाई देता। इस कारण ही यह सोचने के लिये मजबूर होना पड़ता है कि राज्य को सजीव बनाने के लिये कोई और शब्द अभिहित किया गया जिसे राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है।

राष्ट्र और राज्य की सत्ता को विश्लेषित करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि राज्य निर्जीव (मैकेनिज्म) है, जबकि राष्ट्र सजीव अर्थात् जीवमान अस्तित्व है जिसे अंग्रेजी में 'लिविंगआर्गेनीज्म' कहा गया है। जन सामान्य की भाषा में कहा जाय तो राज्य शरीर है और राष्ट्र आत्मा है। यदि हम अपने राष्ट्र के स्वरूप को स्पष्ट करना चाहेंगे तो हमें कुछ उन बातों को भूलना होगा या उनकी भावना को समझना होगा जो मूल राष्ट्र की संकल्पना को ओझल करते है। वास्तव में राष्ट्र एक जीवमान संज्ञा है तथा राष्ट्र का जीवनाधार उसका तत्वज्ञान होता है। जिन सिद्धान्तों के पालन से राष्ट्र एवं समाज का हित होता है, राष्ट्र के विचारी पुरूषों द्वारा निर्धारित उन्हीं सिद्धान्तों, उनके समर्थन और उनकी मीमांसा को राष्ट्र का तत्वज्ञान कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह की किसी भूमि से एकात्मकता होने के लिये प्रदीर्घ साहचर्य की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार केवल संवैधानिक प्रावधान, कानून की धारा, या संसद के प्रस्ताव के आधार पर एकात्मकता नहीं होती। हम यह देखते हैं कि राष्ट्र शब्द का उल्लेख हमारे वेदों में भी किया गया है। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि यदि वेदों में राष्ट्र शब्द का उल्लेख है तो फिर हमें यह भी मानना पड़ेगा कि भारत राष्ट्र शब्द की पहचान करवाने के लिये जगत में शिरोमणि हैं। राष्ट्र शब्द 'राज दीप्तो' धातु से बना है। 'राजते दीप्यते प्रकाशते इति राष्ट्र' अर्थात् वह भूखण्ड जो स्वयं प्रकाशित हो, विदेशयों से पदाक्रान्त न हो और स्वयं स्वतन्त्र हो राष्ट्र कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण में समृद्धि युक्त ओजस्वी जनसमूह को राष्ट्र कहा गया है। यानी प्रजा को ही राष्ट्र की संज्ञा दी गई है। अथर्ववेद में ''अहं राष्ट्रे स्यामिवर्गे निजी भूयासमुतमः'' के माध्यम से कहा गया कि मैं राष्ट्र की जनता में उत्तम निज होऊ। राष्ट्र का कोई भी व्यक्ति स्वयं को मुख्य धारा से अपने को अलग न समझे।

राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीयता की अवधारणा एक भाववाचक संज्ञा है, जो आत्मबलिदान या त्याग से पैदा होती है। हर देश की राष्ट्रीयता अपने राष्ट्र के सामाजिक मानवीय मूल्यों से पैदा होती है। राष्ट्र किसी भौगोलिक राजनीतिक इकाई के निवासियों की सामूहिक चेतना का नाम है। इस चेतना के विकास में उस देश के भूगोल से अधिक उसके इतिहास का हाँथ होता है। सुदीर्घ इतिहास की परम्पराओं में राष्ट्र की एक प्रवाहमान संस्कृति जन्म लेती है।

''राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना ही उसकी राष्ट्रीयता होती है। राष्ट्रीयता ही किसी देश के अन्दर निवास करने वाले समाज की संजीवनी शक्ति होती है। राष्ट्र की चेतना शक्ति ही उसकी अपनी अस्मिता होती है और यही उसकी अपनी पहचान भी होती है। यह उसका 'स्व' होता है। अपने देश में जब हम भारतीयता की बात करते है तो उसका तात्पर्य उन्हीं विशेषताओं से होता है जो भारत के घटक को अन्य राष्ट्रों से अलग करके उन्हें एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है।'' उसमें रहने वाले प्रत्येक मनुष्य का उसके प्रति वही स्नेह बना रहता है जिस प्रकार एक माता अपने शिशु के प्रति तथा शिशु का अपनी माता के प्रति परस्पर प्रेम का अन्तर्सम्बन्ध बना रहता है। इस सम्बन्ध में बिल ड्यूरान्ट का कथन सटीक लगता है–''जब किसी व्यक्ति की निष्ठा किसी देश या समाज से जुड़ती है जिसमें वह रहता है तो हम मानते हैं कि उसकी राष्ट्रीय चेतना जागृत है या हो रही है।''

जब किसी राष्ट्र की चेतना जागृत रहती है तो उसके कुछ लक्षण स्पष्ट दिखाई देते है। जब समाज का आत्माभिमान जाग्रत होता है तो वह समाज समस्त संकीर्ण भेदभावों को भुलाकर व्यापक अस्मिता की भावना के साथ खड़ा होता है। इस प्रकार राष्ट्रीयता के अन्तर्गत किसी देश की भौगोलिकता के साथ भौतिक परिवेश, विविध मानव समूहों की अनेकता में एकता की भावना का समाहित होना, प्राकृतिक पर्यावरण, आर्थिक सम्पन्नता इतिहास एवं पुरातात्विक अवशेष, शासन व्यवस्था, नेतृत्व और सुरक्षा के प्रभावकारी आयाम, राष्ट्र प्रेम की भावना, सांस्कृतिक विरासत, परम्पराएँ आदि सभी तत्व एकत्रित होते हैं जो एक संगठित वृहद इकाई का निर्माण करते हुए एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। वास्तव में हमारे देश में सामंतशाही जैसी कोई रचना नहीं थी। हॉ लार्ड कार्नवालिस द्वारा परमानेन्ट सेटलमेंट लाने के पश्चात सामंतशाही का सीमित स्वरूप यहॉ दिखाई दिया। अब तो यह बात कम्यूनिस्टों को भी माननी पड़ रही है और इसीलिए अब उन्हें सामंतशाही पद्धति कहने के बजाय उसको एक अलग नाम देने के लिए उसे एशियाई सामाजिक व्यवस्था कहा। पाश्चात्य देशों की नकल के कारण यह गलत भाव पैदा हुआ और पश्चिम के मापदण्ड से हमारे देश की प्रगति को नापा जाने लगा। हमारे यहॉ वैचारिक संभ्रम निर्माण किया गया। आज यह सोचने के लिए उपयुक्त समय आ गया है कि क्या पश्चिम की राष्ट्र की अवधारणा और हमारी राष्ट्र की संकल्पना दोनों एक ही है? क्या नेशन को राष्ट्र का पर्यायवाची माना जा सकता है। भारत में विकास का क्रम इस तरह रहा कि बिल्कुल प्रारम्भ में यहॉ लोग तो थे, लेकिन संस्थाएँ नहीं थी।

श्री स्नापडर के 'वेरायटीज ऑफ नेशनलिज्म' से तो यह स्पष्ट है कि पश्चिम में भी विभिन्न देशों की राष्ट्रीयता के मनोवैज्ञानिक अवयव तत्व एक जैसे नहीं है। अलग–अलग देशों का विकास क्रम अलग–अलग रहा है और अपने अपने ऐतिहासिक विकासक्रम के अनुसार अलग–अलग देशों में गुणात्मक दृष्टि से भिन्नता रखने वाली राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। किन्तु उस भावना को एक ही नाम दिया– राष्ट्रीयता। 'नेशन' लैटिन भाषा के शब्द नोटियो से उत्पन्न है। नोटियो जन्मगत एकात्म मानव समूह की ओर संकेत करता है। किन्तु आधुनिक नेशन के निर्माण में केवल यह वांशिक तत्व

ही योगदान नहीं करता। अलग–अलग 'नेशन' का भिन्न–भिन्न ऐतिहासिक विकास क्रम रहा है। इसी कारण सभी देशो के 'नेशनइड' के घटक अवयवों में एकरूपता नहीं है।'' जहाँ 'नेशन' और नेशनलिज्म से सम्बन्धित प्रश्न उठता है वहाँ सभी की दृष्टि संयुक्त राष्ट्र संघ (यूनाइटेड नेशन्स आर्गनाईजेशन) पर जाती हैं। किन्तु यह धारणा अस्पष्ट है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद के नाटकों की विवेचना कई दृष्टियों से हो चुकी है। 'प्रसाद की नाट्य कला', 'प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिकता', 'प्रसाद के नाटक : परंपरा और प्रक्रिया' आदि कई शीर्षकों के अन्तर्गत प्रसाद के नाटकों के विषय में अनुसंधान पूर्वक विवेचन हो चुके है। नाट्य कला के अन्तर्गत उनके नाटकों को शास्त्रीयता, भारतीय एवं पाश्चात्य आदि शैलियों के आधार पर जॉचा परखा जा चुका है। इसी तरह नाटकों की परम्परा में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य परम्परा को आधार बनाकर बहुत कुछ विवेचन एवं अनुसंधान हो चुका है। प्रसाद भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों परम्परा के पोषक एवं आग्रही रहे हैं। इसी कारण उनके नाटक न तो भारतीय शैली के हैं और न ही पाश्चात्य शैली के बल्कि वे प्रसाद शैली के नाटक माने जा सकते हैं।

अतः सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के नाटक कई दृष्टियों से व्याख्यायित हुए हैं किन्तु 'प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना' विषय में अभी अनुसंधान की आवश्यकता है। अतः इसी कारण से मैंने अपने आलेख में ऐसा विषय चुना है, जिससे हमारे मन के राष्ट्रीय भाव व तात्कालीन समय में हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप उस राष्ट्रीय भावों को विश्लेषित कर उनके महत्व को जानने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में यह बताना चाहते हैं कि 'प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना' जहाँ एक तरफ नवीनतम और अभी तक का छूटा हुआ विषय है तो वही दूसरी ओर इसमें अनुसंधान के लिये व्यापक संभावनाएँ मौजूद हैं। इसी कारण आलेख के रूप में 'प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना को चुना है। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास और आशा है कि मेरा यह शोध कार्य साहित्य में नवीन और मौलिक स्थापनाएँ करने के साथ सुधी जनों के लिये उपयोगी एवं लोकप्रिय सिद्ध होगा। राष्ट्र प्रेम जन–जीवन से जुड़ा हुआ एवं देश के प्रति हमारी भावना से जुड़ा हुआ होने के कारण भूत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों के लिए समान रूप से प्रासंगिक रहेगा। प्रसाद के नाटकों में विद्यमान राष्ट्रीय भावना ही हमारे शोध को प्रासंगिकता प्रदान करेगी।

सन्दर्भ स्रोत

1. जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली – सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद
2. जयशंकर प्रसाद – सम्पूर्ण नाटक, चिन्तन, प्रकाशन, हंशपुर, कानुपर 2003
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, राजकमल प्रकाशन, 2003
4. दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्‌भव एवं विकास, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2003
5. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक– राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली संस्करण 2001
6. डॉ. गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिन्दी नाटक संघर्ष चेतना : हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्ड़ीगढ़, संस्करण 1990
7. पं. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
8. डॉ. रामकुमार वर्मा, सम्पादन हिन्दी नाटक और रंगमंच : हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद 1984
9. डॉ. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद : भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1976
10. जयशंकर प्रसाद, डॉ. रमेश चन्द्र शाह, साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

साम्प्रतिके युगे गृहप्रवेशविचारः

❑ डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय*

स्रष्टुः सृष्ट्यां संस्कृतविद्या सर्वोत्कृष्टा। विविधविद्यासु वा कलासु एषैव चमत्कारिणीति मन्यते। गृहप्रवेशविषयेऽपि एतस्यां भाषायां सविस्तरं चिन्तन कृतं प्राच्यैः। इदानीमाधुनिकयुगः, सर्वे विचाराः नवीनाः, सर्वा दृष्टिराधुनिकी। प्राच्याणां प्रत्येकेषु कार्येषु धार्मिकाध्यात्मिकविचाराः एव लोके प्रचलिताः बभूवुः। सम्प्रति कालक्रमेण प्रायः सर्वा व्यवस्था परिवर्तिता, चिन्तनं परिवर्तितम्। वैज्ञानिकयुगोऽयम्। समाजस्य प्रत्येकवर्गस्य जीवनशैली आधुनिकदृष्ट्या परिवर्तिता। जीवनस्य प्रत्येककार्यस्य व्याख्या आधुनिकशैल्या वा वैज्ञानिकशैल्या क्रियते। तेन जीवनस्य नवीना पद्धतिः समागता। एतस्यामाधुनिकशैल्यां गृहप्रवेशसदृशो विषयः यावत् आध्यात्मिको आसीत् तावत् एतस्य वैज्ञानिक आधारः क इति अचिन्त्य आसीत्। तस्मिन् आकांक्षा नैवासीत् किन्तु नवीन–वैज्ञानिकचिन्तनपरम्परया जीवनस्य प्रत्येककार्येषु वैज्ञानिकाधारं दातुमनुसन्धानं क्रियते। अनया दृष्ट्या गृहप्रवेशसदृशविषयोऽपि आधुनिकदृष्ट्या वैज्ञानिक–दृष्ट्या विचारणीयः। तस्य का प्रासंगिकता। इदानीं यत्किमपि क्रियते तस्मिन् जिज्ञासा भवत्येव यदेतत् किमर्थम्, का आवश्यकता, का हानिः को लाभः इत्यादिविषयाः मानवमस्तिष्के सहजरूपेण समायान्ति। अतएव गृहप्रवेशविषयेऽपि विचाराः वैज्ञानिकदृष्ट्या विवेचनीयाः। अस्माकं प्राच्यविद्या–पोषकाः सूक्ष्मदर्शिनः ऋषयः धर्मिकदृष्ट्या सार्द्धं वैज्ञानिकदृष्ट्याऽपि एतस्मिन् विषये गम्भीरविचारान् चेतयाञ्चक्रिरे। तेषां विविधशुभाशुभविचारकतृणां महत्प्रयासैः विचारमन्थनैः केचन ग्रन्थाः उत्पादिताः। तेषु वास्तुप्रदीपमुहूर्तगणपतिवृद्धनारदवास्तुमाणिक्य–रत्नाकरसिद्धान्ततत्त्वविवेक मुहूर्तभूषणमुहूर्तचिन्ता–मणिगृहरत्नभूषणवास्तुराजवल्लभवृहत्संहितामुहूर्त–मंजरीमण्डनसूत्राधारमहाभारतप्रभृतिमहनीयग्रन्थेषु धार्मिकवैज्ञानिक दृष्ट्या वास्तुशास्त्राविषये विचाराः मथिताः। ऐतेषु ग्रन्थेषु कस्मिन् दिने कस्मिन् ग्रहे प्रवेशः करणीयः इत्यादिविषयेषु आधुनिकविज्ञानं कारणस्य अन्वेषणं करोति। प्रायः त्रिविधः प्रवेशः प्रदिष्टः प्राच्यग्रन्थेषु। यथा–

अपूर्वसंज्ञं प्रथमप्रवेशं यात्रावसाने च पूर्वसंज्ञम्। द्वन्द्वाह्वयश्चाग्निभयादि जातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः।।[1]

गृहणातीति गृहम्। दूरस्थान् प्राणीन् यदाकर्षयति तत्गृहम्। गृहनिर्माणस्य द्विविधा परम्परा प्राप्यते। प्रथमोत्तरापथीया परम्परा विश्वकर्मणा प्रोक्ता अन्या च दक्षिणापथीया मयदानवेन। इदानीं प्रायः उत्तरपथीया लोके अवलोक्यते। तेन प्राच्यशास्त्र–कारैरुक्तम्–

आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तुप्रवेशनम्। राज्ञा यात्रानिवृत्तौ च यद्वा द्वन्द्वप्रवेशनम्।।[2]

विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां बलिक्रियाम्। माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।।[3]

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, सनातन धर्म आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, डोहगी, जिला : ऊना (हि.प्र.)

प्रवेशा मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः। प्रवेशे निर्णयः प्रोक्तः शास्त्रज्ञैः पूर्वसूरिभिः।।[4]

अर्थात् नवनिर्मितगृहे सूर्यस्योत्तरायणे सति प्रवेशः उत्तमः। वैज्ञानिकदृष्ट्या सूर्यः यदा उत्तरायणो भवति तदा तस्य किरणेषु अधिकः तापः अनुभूयते। तापाधिकात् नवीने गृहे प्रयुक्तानि वस्तूति दृढतरानि भवन्तीति। तेन तेषु गृहेषु एतस्मिन् काले प्रवेशश्शुभकरः वृद्धिकरश्च। इदानीं गृहस्य क्षयस्य सम्भावना नगण्यैव भवति। अतएवोक्तम्

सौम्यायने कार्यं नववास्तु प्रवेशनम्।[5]

एवं सूर्यस्योत्तरायणे सति गृहप्रवेशस्य वैज्ञानिकता प्रासंगिकी। एतस्मिन् सन्दर्भेऽपि सूर्योत्तरायणे सति मासानामपि महत्त्वं वर्णितम्। अर्थात् माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु प्रवेशः उत्तमः।

माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशः पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च। चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः।।[6]

एते सर्वे मासाः प्रायः सूर्योत्तरायणे सति आगच्छन्ति। मासविचारानन्तरं गृहप्रवेशसमये नक्षत्रवाराणामपि वैशिष्ट्यमुच्यते। यथा–

गृहारम्भोदिते मासे धिष्ण्ये वारे विशेद् गृहम्। विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा।।[7]

अर्थात् सूर्योत्तरायणे सति शुभेषु फलदायकेषु नक्षत्रेषु तिथिषु इष्टिकया पाषाणेन वा निर्मिते गृहे प्रवेशः शुभकरः। तृणेन निर्मिते गृहे कस्मिंश्चित् समये प्रवेशं कर्तुं शक्यते। अत्र ध्यातव्यमिदं यत् तृणैः निर्मितगृहसम्बन्धे कालदृष्ट्या विचारो नैव कृतः। एतस्य वैज्ञानिकाधारोऽपि वर्तते। यदि तृणैः गृहनिर्माणं भवति तदा निर्माणकालादेव तद् गृहं दृढतरं भवत्येव तस्य कृते कालस्य वा कालसम्बन्धीविचारस्य आवश्यकतैव न भवति। यतोहि सूर्यस्य वा तापस्य तस्योपरि प्रभावः न भवति अतएव सूर्यः उत्तरायणः दक्षिणायनः वा एतस्मिन् विषये जिज्ञासा न क्रियते। किन्तु इष्टिकया वा पाषाणेन निर्मिते गृहे प्रवेशविषये सूर्यस्य स्थानविषये चिन्तनं महदावश्यकम्।

पापग्रहाणां प्रभावोऽपि जीवने दृश्यते। अतएव गृहप्रवेशसमये तेषामपि चिन्तनमावश्यकमुक्तमपि–

क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे।

शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्ध्यै कृष्णे च तावद्दशमीं च यावत्।।[8]

अर्थात् यस्मिन्नक्षत्रे पापग्रहाः स्युः वा यन्नक्षत्रं पापग्रहैराविद्ध स्यात् तस्मिन्नवसरे गृहप्रवेशः निषिद्धः। अत्रैतत् स्वीकरणीयं यत् पापग्रहाणां प्रभावः जीवने भवत्येव नास्ति काचिच्छंका। अतएव एतस्मिन्काले प्रवेशः वर्जनीयः। प्रत्येके मासे द्वौ पक्षौ स्तः। एतयोः वर्धनेच्छुः शुक्लपक्षे गृहप्रवेशं कुर्यात्। शुक्लपक्षे प्रवेशपृष्टे एका मनोवैज्ञानिकदृष्टिर्दृश्यते यत् शुक्लपक्षे चन्द्रः क्रमेण वर्धनं करोति एषा भावना मानस्य मनोविज्ञाने बहुप्रभावकारी भवति। तात्पर्यमिदं यत् यथा चन्द्रः नित्यप्रतिवर्धनं करोति तथैव मानवोऽपि गृह प्रवेशं कृत्वा प्रतिक्षण वर्धनं कुर्यात्। कृष्णपक्षेऽपि दशमीतिथिपर्यन्तं प्रवेशं कर्तुं शक्यते। कारणं एतावत्पर्यन्तं चन्द्रः किंचित् अक्षीणः भवति किन्तु चन्द्रः यदा क्षीणः स्यात् तस्मिन्काले प्रवेशः न करणीयः। अत्र चन्द्रस्याल्पता निरन्तरह्रासस्य सूचिकास्ति। एतस्मिन्काले प्रवेशे ह्रासप्रवृत्तिः सम्भवा। अतएव प्रवेशः निषिद्धः। एवमेव चित्रात्रिविधोत्तरा–रोहिणीमृगशिराऽनुराधाधनिष्ठारेवती शतभिषादि नक्षत्रेषु प्रवेशादायुर्धनारोग्यपुत्रपौत्रादिवंशबृद्धि र्भवत्येव। तत्रोक्तम्–

चित्रोत्तराधातृशशाङ्क मित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्।

आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः।।[9]

अत्र चित्रा नक्षत्रं चान्द्रमासस्य चतुर्दशं नक्षत्रं सार्द्धमेव सर्वाणि नक्षत्राणि वैज्ञानिकदृष्ट्या येन केन प्रकारेण विशेषफलदायकानि सन्ति। एतस्मिन्नास्ति काचिच्छंका।

शुभयोगसन्दर्भेऽपि प्राच्यैः मन्थनं कृतम्। यथा–रेवती धनिष्ठाशतभिषारोहिणी त्रिविधोत्तरादीनि नक्षत्राणि यदा शुक्लपक्षे स्युः तथा काचित् रिक्तातिथिः अपि न स्यात् तदा गृहप्रवेशः शुभः। यथोक्तम्

पौष्णे धनिष्ठास्वथवारुणेषु स्वायंभुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु।

अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः।।[10]

ध्यातव्यमिदं यत् इमानि सर्वाणि नक्षत्राणि शुक्लपक्षदृष्ट्या शुभानि, यतोहि निरन्तरवृद्धये मनोविज्ञानम्, शुक्लपक्षस्य चन्द्रः निरन्तरवर्धकः। अनेन स्वाभाविकरूपेण मानवमस्तिष्के आयाति यत् एवमेवास्माकमपि वृद्धिर्भवेत्।

एवमेव बृहस्पतिशुक्रश्च यदा उदयकाले स्याताम्, रविमंलवासरं त्यक्त्वा रिक्तातिथिः अपि न स्यात् तथा धनिष्ठापुष्यरेवतीमृगशिराशतभिषाचित्रा–ऽनुराधा–उत्तरानक्षत्राणि स्युः तदा रात्रौ वा दिने प्रवेशः शुभः। यथोक्तम्–

शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः। व्यर्कारवारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च।।[11]

वस्वीज्यान्त्येन्दुवरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु। दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः।।[12]

एवमेव चैत्रमासे प्रवेशः धनक्षययुक्तः। तथा च वैशाखमासे प्रवेशेन सन्ततिसुख– धनधान्येत्यादिलाभो भवति। यथोक्तम्–

चैत्रे गृहप्रवेशाद्धि क्षीयते कोषसम्पदः। वैशाखे सन्ततेः कीर्त्याः वृद्धिश्च धनधान्ययोः।।[13]

सर्वेषु मासेषु ज्येष्ठमासे गृहप्रवेशः उत्तम। आषाढश्रावणमासयोः प्रवेशः मध्यमः। भाद्रपदे अधमः अशुभकरः कार्तिकमार्गशीर्षयोश्च मध्यमः सुखकरश्च।

ज्येष्ठे श्रेष्ठा च शर्मिष्ठा वसतिर्नूतने गृहे। आषाढे श्रावणे मासे प्रवेशात्मध्यमं सुखम्।।[14]

अत्र ध्यातव्यमिदं यत् ज्येष्ठमासे सूर्यस्य तापः अत्यन्तोष्णः अनुभूयते तेन गृहनिर्माणानन्तरं तस्य दृढता अतीव दृढतरा भवति। केनापि प्रकारेण तत्र हानेः जिज्ञासा न भवति। अतएव एतस्मिन् काले प्रवेशः उत्तमः। तथा भाद्रपदे वर्षाकालः भवति। ऐतेषु दिवसेषु प्रायः गृहनिर्माणमेव न करणीयं तथा च प्रवेशोऽपि वर्जनीयः। प्रवेशविषये अन्यदपि उक्तम्–

पौषः पुष्णाति समृद्धिं परिवारे समन्वयम्। माघो विभिन्नस्रोभिर्धनाऽऽप्तिं यच्छति ध्रुवम्।।[15]

फाल्गुने फलति प्रीतिर्वंशवृद्धिसमुन्नतिः। एवं मासान् समीक्ष्यैव प्रविशेन्नूतने गृहे।।[16]

एवमेवानेके विषयाः आधुनिके भौतिकवादयुगे यत्र वैज्ञानिकाधार एव सर्वत्र प्रामुख्येन विचार्यते तत्र गृहप्रवेशसमये विचारपूर्वकं धार्मिकाध्यात्मिक–वैज्ञानिकचिन्तनमतीवावश्यकमिति।

टिप्पण्यः

1. वसिष्ठधर्मसूत्रम् 3.3
2. बृहत्वस्तुमाला पृष्ठ 103
3. बृहत्वस्तुमाला पृष्ठ 103
4. भारतीयसंस्कृतिः पृष्ठ 14
5. गृहप्रवेशमुहूर्त पृष्ठ 31
6. वसिष्ठधर्मसूत्र
7. बृहत्वस्तुमाला पृष्ठ 103
8. गृहप्रवेशविचारः पृष्ठ 104
9. गृहारम्भे विशेषविचारः पृष्ठ 104
10. बृहत्वास्तुमाला (शुभयोनिर्देशः) पृष्ठ 105 श्लोक 1
11. तत्रैव श्लोक 10
12. तत्रैव श्लोक 111
13. वास्तुविज्ञानम् पृष्ठ 102 श्लोक 7
14. तत्रैव श्लोक 1
15. तत्रैव श्लोक 11
16. वास्तुविज्ञानम् पृष्ठ 103 श्लोक 12

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

पातंजल योग एवं उसका शैक्षिक महत्व

❑ डॉ. एस.के. त्रिपाठी*

संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'युज' धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से योग शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ मेल करना या जोड़ना होता है। पुराणकार ने लिखा है कि ''संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः'' जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग या मेल करना योग कहलाता है। महर्षि पातंजल कहते है, ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'' चित्त वृत्तियों का निरोध योग है। सागर की लहरों की भाँति चित्त में अनन्त वृत्तियाँ या विचार उत्पन्न होते है। उन चित्त वृत्तियों से चित्त को अलग रखना योग है। गणित विषय में भी योग संक्रिया का निरूपण किया जाता है, जिसमें संख्याओं का परस्पर जोड़ योग कहलाता है। योग में तत्व का परम् तत्व से, व्यक्तिगत सत्ता का परम् सत्ता से तथा गणित में एक संख्या का दूसरी संख्या से योग करते है। जब आत्मा का परम्सत्ता से, मन का अपरमित सत्ता से संबंध हो जाता है तो मन में अपरमित, अनन्त शक्ति का समावेश हो जाता है। यही अत्यंत सूक्ष्म आत्मा अत्यंत शक्ति संम्पन्न हो जाता है। जब तक मन चंचल वृत्तियों से अलग नही होगा, निरूद्ध भूमि में स्थिति होकर बाह्य वृत्तियों से अलग नही होगा, तब तक मन के द्वारा किसी सार्थक सकारात्मक परिणाम की कल्पना नही की जा सकती। गीता में ''योगः कर्मसु कौशलम्'' को योग कहा गया है, अर्थात कर्म में कुशलता प्राप्त करना योग है। किसी भी कार्य में कुशलता या सफलता तभी प्राप्त की जा सकती है जब मन उस कार्य के साथ पूर्णरूपेण संलग्न हो जाता है। वायुयान उड़ाने के लिए उड़ान संबंधी प्रशिक्षण के साथ–साथ पायलट को ध्यान का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। पायलट के पाठ्यक्रम में ध्यान क्रिया भी शम्मिलित है, क्यों कि ध्यान के बिना मन को स्थिर रखना असंभव है। वायुयान उड़ाने की प्रक्रिया जानना जितना आवश्यक है उतना ही उड़ान प्रक्रिया में मन को जोड़ना परम् आवश्यक है।

किसी एक कार्य में ही मन की संलग्नता का महत्व नही है बल्कि कर्म जगत् में ही मन की ही पूर्ण भूमिका है। शिक्षा के क्षेत्र में यदि मन की भूमिका का अनुशीलन करें तो शिक्षक अध्यापन कार्य में तभी सफल होता है जब वह अध्यापन प्रक्रिया में पूर्णतः केन्द्रित होता है। एक क्षण के लिए भी विकेन्द्रित होता है तो वह अध्यापन प्रक्रिया के समग्र (शत्प्रतिशत) परिणाम से वंचित हो जाता है। ठीक शिक्षक की भाँति शिक्षार्थी भी अध्ययन प्रक्रिया (सीखने की प्रक्रिया) से विकेन्द्रित है तो अधिगम् प्रक्रिया का प्रतिशत न्यून हो जाता है। शिक्षक का अध्यापन के साथ–साथ अध्येता बालक का ध्यान पूर्णतः केन्द्रित होना चाहिए, तभी अधिगम् प्रक्रिया में वृद्धि होती है। कार्य के साथ मन की संलग्नता का प्रतिशत ही उसके परिणाम का प्रतिशत निर्धारित करता है। अतः हम निष्कर्षतः कह सकते

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

है कि सफलता के सकारात्मक परिणाम के लिए मन का कार्य के प्रति केन्द्रित होना नितान्त आवश्यक है, जितना की शिक्षण में अन्य सहायक सामग्री या प्रक्रिया जरूरी है।

पातंजल योग दर्शन में मन को केन्द्रित करने की सर्वोत्म एवं सफलतम् विधि का प्रतिपादन किया गया है। पातंजल योग सूत्र में योग के यम्, नियम, आसन, प्रणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ अंगों का वर्णन है। योग के प्रथम अंग यम के पाँच उपांग है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह। ये पाँचों अहिंसा आदि क्रियाएं मानसिक क्रियाएं है। अहिंसा वृत्ति मानसिक क्रिया है, किसी प्राणि, जीव मात्र के लिए द्वेष भावना न होना अहिंसा है। किसी प्राणी के लिए द्वेष हो जाना भी उसकी हिंसा कर देना है। सभी जीवों के लिए हित कर, कल्याणकारी सकारात्मक चिन्तन ही अहिंसा वृत्ति है। हत्या कर देना ही हिंसा नही है बल्कि किसी का अहित कर देना, मन दुखा देना भी उसकी हिंसा कर देना है। लोभ, स्वार्थ आदि वृत्तियों से अलग रह कर इमान की रक्षा करना सत्य का पालन करना है। जीव का अपने धर्म में स्थिर रहना सत्यानुशीलन है। सत्य भी मानसिक प्रक्रिया है, अस्तेय का तात्पर्य है कि चोरी आदि वृत्तियों से मन का विरत रखना, किसी की वस्तु को बिना उसकी अनुमति, अनुमति ही नही बल्कि बिना उसकी हार्दिक पसन्नता के वस्तु लेना चोरी है। मन की चौर्य वृत्ति ही स्तेय है। स्तेय न होना अस्तेय वृत्ति है। ब्रम्हचर्य आठ प्रकार के स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय, क्रिया इन कुसंगों से मन को बचाना तथा संसर्गादि की भावना से मन को बचाना ब्रम्हचर्य है। अपरिग्रह– आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, संग्रह वृत्ति से अपने आपको बचाना अपरिग्रह वृत्ति है। उर्युक्त इन पाँचों मनोंवृत्तियों के अभ्यास से मन, ध्यान, समाधि आदि क्रियाओं की साधना के लिए बलिष्ठ या बलवान हो जाता है और साधक के मन में सामर्थ्य आ जाती है तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कुशल हो जाता है। इस प्रकार योग के प्रथम अंग यम की इन पाँचों क्रियाओं द्वारा मन को नियंत्रित करने की शक्ति प्राप्त की जाती है, और हम नियंत्रित मन से किसी भी कार्य को सहजता के साथ सम्पन्न कर लेते है। उक्त योग की मानसिक क्रियाओं द्वारा आन्तरिक शक्ति का विकास करके साधक असाधारण क्षमतावान बन जाता है।

योग में इसी प्रकार सातवां अंग है ध्यान। साधक यम की मानसिक क्रियाओं से बलिष्ठ मन के द्वारा ध्यान की सूक्ष्मतम् विधियों का, क्रियाओं का, अभ्यास करता है जिसके परिणामस्वरूप मन को निगृहीत करने की, मन को लक्ष में केन्द्रित करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है तथा क्रियाओं के नियमित अभ्यास से कार्य करने की दीर्घकालिक क्षमता प्राप्त होती है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए योग की अहम् भूमिका है। योग की पूर्वोक्त क्रियाओं द्वारा शिक्षक शिक्षार्थी दोनों की कार्य क्षमता में गुणात्मक वृद्धि देखी गई है। योगाभ्यास द्वारा शिक्षक में सम्प्रेषण क्षमता की भी वृद्धि तो होती ही है, शिक्षार्थी में ग्रहण करने की क्षमता का विकास भी देखा गया है।

ध्यान विधि –

मन को एकाग्र करके किसी चिन्तन विशेष में स्थिर रहना ध्यान कहलाता है, मन के द्वारा नेत्र बन्द करके चिन्तन किये जा रहे, स्वरूप का दर्शन करते हुए उसी स्वरूप में स्थिर रहना ध्यान है। स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान ये ध्यान के तीन प्रकार है।

स्थूल ध्यान – स्थूल ध्यान वह ध्यान कहलाता है जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान हो,

जोतिर्मय ध्यान– जोतिर्मय ध्यान वह है जिसमें तेजोमय जोतिरूप ब्रम्ह का चिन्तन हो,

सूक्ष्म ध्यान– सूक्ष्म ध्यान उसे कहते है जिसमें बिन्दुमय ब्रम्ह का कुण्डलिनी शक्ति में चिन्तन किया जाय।

स्थूल ध्यान– नेत्रों को बन्द करके हृदय कमल में अमृत के सागर का ध्यान करें कि उसमें रत्नमय द्वीप की शोभा रत्नमय बालुका से हो रही है। उसके चारों तरफ कदम्ब के वृक्षों की शोभा हो रही है, और वे वृक्ष पुष्पों के खिलने से सुशोभित हो रहे है। उस कदम्ब वन के चारों ओर मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्पा, पारिजात और कमल से इस द्वीप में खाई बनी हुई है और उन पुष्पों की सुगंध से सभी दिशाएं सुगंधित हो रही है। योगी को यह ध्यान करना चाहिए की उस वन के मध्य में चार वेदरूपी चार शाखाओं वाला एक कल्प वृक्ष है चारों शाखाएं पुष्प तथा फलों से सुशोभित है। उन पर भौरें गुंजार रहे है, कोकिले अपने कुहू–कुहू शब्द द्वारा मन को लुभा रही है। उस कल्पवृक्ष के नीचे महामाणिक्य निर्मित एक मण्डप है, जिसमें मनोहर पर्यंक बिछा है और उस पर इष्टदेवता विराजमान है। फिर गुरू ने जैसा आदेश दिया हो उसी के अनुसार योगी को उन देवताओं से भूषण वाह्नादि का ध्यान करना चाहिए।

ज्योतिर्मय ध्यान– इस ध्यान में योग की सिद्धि एवं आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है। मूलाधार में सर्पाकार रूप में कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। यहीं दीप कलिका के आकार में जीवात्मा विद्यमान रहता है, यहां तेजोमय परात्पर ब्रम्ह का ध्यान करना ही तेजो ध्यान अर्थात ज्योतिर्ध्यान है। भौहों के मध्य में मन के उर्द्ध भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है, उस ज्वालामयी ज्योति (शक्ति) का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान कहलाता है।

सूक्ष्म ध्यान– बहुत बड़ा भाग्योदय होने पर कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है वह आत्मा के साथ संयुक्त होकर और नेत्र रंध्र से निर्गत होकर ऊर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थान में विचरण करती है परन्तु सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण वह दिखाई नही देती। शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ योगी कुण्डलिनी का ध्यान करे यहीं सूक्ष्म ध्यान कहलाता है।

योग का शैक्षिक महत्व– समाज के लिए मानव मस्तिष्क ईश्वर का दिया हुआ अनुपम उपहार है, मानव मस्तिष्क अनन्त ज्ञान का भण्डार है। सुना जाता है महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन अपने मस्तिष्क का मात्र 0.5 प्रतिशत ही दोहन या उपयोग कर सके थे। अपरमित ज्ञान के भण्डार आइन्स्टीन के मस्तिष्क का भी 99.5 प्रतिशत उपयोग नही हो सका। उस अनन्त ज्ञान के भण्डार मानव मस्तिष्क से ज्ञान का दोहन पूर्णरूपेण हो सके एवं मस्तिष्क में सुप्त ज्ञान शक्ति को जागृत किया जा सके इसके लिए योग की अद्भुत क्रियाओं की आवश्यकता है। किसी भी कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिए पूर्ण मनोयोग की आवश्यकता पड़ती है। मन को नियंत्रित करने की उत्तम् विधि योग में ही है। योग की अनुपम विधियों द्वारा मस्तिष्क गुफा में छिपे रहस्यों का उद्घाटन कर शैक्षिक गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। मास्टर ग्लैण्ड पीयूष ग्रन्थि से टपकने वाले पीयूष (अमृत) का पान करके साधक दीर्घ जीवन जीते हुए दीर्घकालिक क्षमता भी प्राप्त कर लेता है तथा सामान्य से अधिक ऊर्जा प्राप्त करके असाधारण प्रतिभा सम्पन्न होकर वांछित उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाता है।

उद्देश्य

- शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए यौगिक क्रियाओं का महत्व प्रतिपादित करना।
- यौगिक क्रियाओं द्वारा बुद्धि की ग्रहण शक्ति को विकसित करना।
- यौगिक क्रियाओं द्वारा स्मरण शक्ति को विकसित करना।
- यौगिक क्रियाओं के द्वारा शिक्षक एवं शिक्षार्थी के स्वास्थ्य को समुचित बनाये रखने के लिए मार्गदर्शन करना।
- यौगिक क्रियाओं द्वारा चिन्तन शक्ति को बढ़ाना।

- यौगिक क्रियाओं द्वारा दीर्घकालिक अध्ययन क्षमता को बढ़ाना।
- मस्तिष्क गुफा में छिपे गुप्त रहस्यों से परिचित होने के लिए जागरूक करना।

परिकल्पनाएँ – परिकल्पना किसी भी शोध का संभावित निष्कर्ष होती है। शोधाध्यन में निम्नाकित परिकल्पनाएं सृजित की गई है।

- यौगिक क्रियाओं के द्वारा शिक्षार्थी की मेधा शक्ति की दीर्घकालिक अध्ययन की क्षमता विकसित की जाती है।
- यौगिक क्रियाओं द्वारा ध्यान क्षमता विकसित करके अधिकाधिक शैक्षिक उपलब्धि के लिए स्मरण शक्ति विकसित की जाती है।
- सामान्य छात्र/छात्राओं के सापेक्ष योगाभ्यासी छात्र/छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई जाती है।
- योग की क्रियाओं द्वारा मस्तिष्क में छिपे हुए गुप्त रहस्य उद्‌घाटित किये जाते है।

शोध विधियाँ :– शोध पत्र शिक्षा के गुणात्मक विकास में योग की भूमिका एवं सम्प्रयोग से संबंधित है। अतः अध्येता ने निम्नलिखित शोध विधियों का प्रयोग किया है।

- सर्वेक्षण एवं अवलोकन विधि।
- साक्षात्कार एवं अभिलेख विश्लेषण विधि।

निष्कर्ष:– भारतीय योग ध्यान पद्धति ध्यान की प्रयोग सिद्ध ध्यान पद्धति है। योग की शिक्षा बालकों के शैक्षिक, मानसिक एवं नैतिक उत्थान के लिए वरदान है, वर्तमान समय में मध्य प्रदेश सरकार ने भी स्कूल शिक्षा के पाठ्‌यक्रम में योग शिक्षा का समावेश किया है। राज्य सरकार ने योग के चमत्कारिक प्रभाव को देखते हुए 12 जनवारी को स्वामी विवेकानन्द जयंती के उपलक्ष्य में योग की क्रियाओं, प्राणायाम् एवं सूर्य नमस्कार आदि का किया जाना अनिवार्य कर दिया है। योग के महत्व को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि योग की वैश्विक उपयोगिता है।

- मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि मानव मस्तिष्क अपरमित ज्ञान का भण्डार है, कोई भी व्यक्ति उस ज्ञान का सम्पूर्ण उपयोग नही कर पाता किन्तु योग पद्धति द्वारा अधिकाधिक मेद्या शक्ति का दोहन किया जाना देखा गया है तथा अधिक समय तक अध्ययनाध्यापन की क्षमता बढ़ाई जा सकती है।
- यौगिक क्रियाओं द्वारा ध्यान क्षमता बढ़ाकर तथा स्मरण शक्ति में वृद्धि करके शैक्षणिक उपलब्धि में गुणात्मक वृद्धि की जा सकती है।
- सामान्य छात्र/छात्राओं की अपेक्षा योगाभ्यासी छात्र/छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई जाती है तथा छात्र/छात्राएं अधिक मेधावान तथा ऊर्जावान होते है।
- अनन्त अपरमित ज्ञान के भण्डार मानव मस्तिष्क से अज्ञात गूढ़ रहस्यों, उपलब्धियों से परिचित होकर शैक्षिक कार्यों की गुणवत्ता वृद्धि में अधिकाधिक सहयोग किया जा सकता है।
- यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से छात्र/छात्राओं एवं शिक्षार्थियों के अन्दर नकारात्मक विचारों को समाप्त कर सकारात्मक विचार उत्पन्न होते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. आरण्य, हरिहरानन्द (1980) पातंजल योग सूत्र, मोतीलाल वनारसीदास, चौखम्बा वाराणसी।
2. ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र (1980) योगासन् विज्ञान, गोल डाकखाना नई दिल्ली।
3. गौतम, चमनलाल (1982) घेरण्डसंहिता, संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुबवेद नगर बरेली।
4. जग्गी, ओ.पी. (1973) यौगिक एण्ड तांत्रिक मेडीसिन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।
5. योगीन्द्र, स्वात्माराम (1980) हठयोग प्रदीपिका, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

योग विज्ञान का ध्यान प्रक्रिया में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

❑ डॉ. एस. के. त्रिपाठी*

शोध सारांश

हर मानव की इच्छा स्वयं से और पर्यावरण से समरस होकर जीवित रहने की है। तथापि आधुनिक युग में अधिक शारीरिक और भावात्मक इच्छायें लगातार जीवन के अनेक क्षेत्रों पर भारी हो रही है। परिणामतः अधिकाधिक व्यक्ति खिंचाव, चिंता, अनिद्रा जैसे शारीरिक और मानसिक तनावों से पीड़ित रहते हैं और शारीरिक सक्रियता और उचित व्यायाम में एक असंतुलन बन गया है। यही कारण है कि स्वस्थ बने रहने और उसमें सुधार के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक समरसता बनाए रखने के लिए नई नई विधियों और तकनीकों का महत्व बढ़ गया है।

'योग' शब्द का उद्‌गम संस्कृत भाषा से है और इसका अर्थ 'जोड़ना, एकत्र करना' है। यौगिक व्यायामों का एक पवित्र प्रभाव होता है और यह शरीर, मन,चेतना और आत्मा को संतुलित करता है। योग हमें दैनन्दिन की माँगों, समस्याओं और परेशानियों का मुकाबला करने में सहायक होता है। योग स्वयं के बारे में समझ, जीवन का प्रयोजन और ईश्वर से हमारे संबंध की जानकारी विकसित करने के लिए सहायता करता है। आध्यात्मिक पथ पर योग हमको ब्रह्माण्ड के स्व के साथ वैयक्तिक स्व के शाश्वत परमानंद मिलन और सर्वोच्च ज्ञान को प्रशस्त करता है। योग सर्वोच्च ब्रह्माण्डमय सिद्धान्त है। यह जीवन का प्रकाश, विश्व की सृजनात्मक चेतना है जो सदैव सजग रहती है और कभी सोती नहीं, जो हमेशा थी, हमेशा है और हमेशा होगी-रहेगी।

हजारों वर्ष पहले भारत में ऋषियों (बुद्धिजीवियों और संतों) ने अपनी ध्यानावस्था में प्रकृति और ब्रह्माण्ड की खोज की थी। उन्होंने भौतिक और आध्यात्मिक शासनों के कानूनों का पता किया था और विश्व में संबंधों की अंतर्दृष्टि प्राप्त की थी। उन्होंने ब्रह्माण्ड के नियमों, प्रकृति के नियम और तत्वों, धरती पर जीवन और ब्रह्माण्ड में कार्यरत शक्तियों और ऊर्जाओं-बाह्य संसार और आध्यात्मिक स्तर दोनों पर ही, जाँच की थी। पदार्थ और ऊर्जा की एकता, ब्रह्माण्ड का उद्‌गम और प्राथमिक शक्तियों के प्रभावों का वर्णन और स्पष्टीकरण वेदों में किया गया है। इस ज्ञान का पर्याप्त अंश पुनः खोजा गया और आधुनिक विज्ञान द्वारा उसकी पुष्टि-सत्य अनुभूति की गयी है।

'योग' पद्धति विश्वव्यापी योग केन्द्रों, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों, स्वास्थ्य संस्थाओं, दक्षता और खेलकूद (Fitness & Sports Clubs), पुनर्स्थापन केन्द्रों और स्वास्थ्य विहारों (Health Resorts) में सिखाई जाती है। यह सभी आयु वर्गों के लिए समीचीन, उपयुक्त है। इसके लिए किसी

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बुद्धि की आवश्यकता नहीं है और यह अयोग्य, विकलांग, बीमार और स्वास्थ्य लाभ करने वाले सभी व्यक्तियों को योगाभ्यास करने की संभावना प्रदान करती है। इसका नाम स्वयं इस बात का द्योतक है कि योग का प्रयोग ''दैनिक जीवन में'' किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए।

उद्देश्य–

शोध पत्र शिक्षा में योग का ध्यान प्रक्रिया में पड़ने वाले प्रभाव एवं महत्व पर आधारित है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में सभी क्षेत्रों में योग का महत्व समझा जा रहा है। योग की क्रियाओं का शारीरिक, मानसिक, एवं शैक्षिक गुणवत्ता में सकारात्मक लाभ क्या है ? निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर किया जा रहा है –

1. योगाभ्यासियों में मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का विकास करना।

2. मानसिक तनाव को दूर कर मन को लक्ष्य में केन्द्रित रहने की क्षमता का विकास करना।

3. यौगिक क्रियाओं के द्वारा शिक्षार्थी के स्वास्थ्य को समुचित बनाये रखने के लिए दिशा–निर्देश करना।

4. आयुर्वेदीय औषधियों की तरह मानव के शारीरिक, एवं मानसिक रोगों का यौगिक क्रियाओं द्वारा भी उपचार सम्बंधी ज्ञान प्रदान करना।

5. यौगिक क्रियाओं द्वारा किया गया उपचार दुष्प्रभाव रहित होता है तत्संबंधी ज्ञान प्रदान करना।

परिकल्पना–

शोध पत्र के संबंध में शोधार्थी की निम्न परिकल्पनायें हैं। परिकल्पना शोध की सम्भावित निष्कर्ष होती है तथा इससे अनुसंधान की दिशा स्पष्ट होती है।

1. योग ध्यान प्रक्रिया बालक की मेधा शक्ति का विकास करती है।

2. योग ध्यान प्रक्रिया मानव मस्तिष्क के गूढ़तम रहस्यों को प्रकाशित करती है।

3. योग ध्यान प्रक्रिया से मानव की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता की वृद्धि होती है।

4. योग ध्यान प्रक्रिया के द्वारा बालक की कार्य क्षमता का अपरिमित विकास होता है।

5. योग ध्यान प्रक्रिया का योगाभ्यासी में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

तालिका 01

सामान्य स्वस्थ्य बालको की अपेक्षा योग ध्यान प्रक्रिया बालकों की मेधा शक्ति का अधिक विकास करती है के सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतो से संकलित तथ्यों का अध्ययन।

कमांक	जनकारी संकलन के स्रोत	संख्या	सामान्य स्वस्थ्य बालकों की आपेक्षा योग्यताधारी छात्रों में अधिक मेधा शक्ति पाये जाने संबंधी तथ्य।			
			हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	प्राचार्य प्र.क. 25	05	4	80	1	20
02	शिक्षक प्र.क. 24	20	18	90	2	10
03	अभिभावक प्र.क. 22	20	18	90	2	10
04	छात्र प्र.क. 25	50	45	90	5	10

विश्लेषण एवं व्याख्या :–

उपर लिखित तालिका से स्पष्ट है कि शोध क्षेत्र के न्यादर्श चयनित जानकारी संकलन के स्रोत– प्राचाय में से 80: प्राचार्यों ने 90–90: शिक्षकों अभिभावको ने तथा 90% छात्रों ने योग ध्यान प्रक्रिया से छात्रों में सामान्य स्वस्थ्य बालकों की अपेक्षा अधिक मेधा शक्ति पायी जाने में सहमति व्यक्त की जबकि 20% प्राचार्य 10–10% शिक्षक एवं अभिभावक तथा 10% छात्र योगाभ्यास तथा अनाभ्यासी छात्रों की मेधा शक्ति में कोई अन्तर नहीं समझते।

निष्कर्षत :–

उपर्युक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि योगा ध्यान प्रक्रिया से मेधा शक्ति विकास क्रियाओं एवं प्राणायाम के अभ्यास से बालकों में मेधा शक्ति का अधिक विकास होता है और शुद्ध मेधा शक्ति से ही स्थिर स्मरण शक्ति का विकास होता है।

तालिका 02

सामान्य बालको के सापेक्ष योगाभ्यासी बालकों में मानव मस्तिष्क के गूढ़तम रहस्यों को समझने की क्षमता अधिक पायी जाने के सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतो से संकलित तथ्यों का अध्ययन।

कमांक	जनकारी संकलन के स्रोत	संख्या	सामान्य स्वस्थ्य बालकों की आपेक्षा योग्यताधारी छात्रों में अधिक मेधा शक्ति पाये जाने संबंधी तथ्य।			
			हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	प्राचार्य प्र.क्र. 25	05	3	60	2	40
02	शिक्षक प्र.क्र. 24	20	18	90	2	10
03	अभिभावक प्र.क्र. 22	20	16	80	4	20
04	छात्र प्र.क्र. 25	50	40	80	10	20

विश्लेषण एवं व्याख्या :–

ऊपर अंकित आंकडों से यह स्पष्ट होता है कि जानकारी संकलन के प्रबुद्ध स्रोत प्राचार्य में से 60% प्रााचार्य, 90% शिक्षक एवं 80% अभिभावक तथा 80% छात्रों ने योग ध्यान प्रक्रिया से छात्रों में ग्रहण शक्ति अधिक होने का अनुभव किया। शेष न्यादर्श चयनित स्रोत्र में से 40% प्राचार्य, 10% शिक्षक, 20% अभिभावक एवं 20% छात्रों ने ग्रहण क्षमता संबंधी तथ्य के बारे में असहमत हैं।

निष्कर्षत :–

उपर्युक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि योगा ध्यान प्रक्रिया से विमुख छात्रों की अपेक्षा योगा ध्यान प्रक्रिया के अभ्यासी छात्रों में मेधा शक्ति की बलिष्ठता के कारण बुद्धि में अधिक ग्रहण क्षमता पायी जाती है।

तालिका 03

योग ध्यान प्रक्रिया से मानव की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता की वृद्धि होती है के जाने के सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतों से संकलित तथ्यों का अध्ययन।

कमांक	जनकारी संकलन के स्रोत	संख्या	सामान्य स्वस्थ्य बालकों की आपेक्षा योग्यताधारी छात्रों में अधिक मेधा शक्ति पाये जाने संबंधी तथ्य।			
			हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	प्राचार्य प्र.क. 25	05	4	80	1	20
02	शिक्षक प्र.क. 24	20	17	85	3	15
03	अभिभावक प्र.क. 22	20	15	75	6	25
04	छात्र प्र.क. 25	50	35	70	15	30

विशलेषण एवं व्याख्या :—

उपरिलिखित तालिका से स्पष्ट है कि जानकारी संकलन के न्यादर्श चयनित स्रोत्रों में से 80% प्राचार्यों ने योग ध्यान प्रक्रिया को अपनाने वाले छात्रों में दीर्घकालिक देखी है। तथा अन्य स्रोत्र 85% शिक्षक, 75% अभिभावक एवं 70% छात्र भी योग ध्यान प्रक्रिया से छात्रों को अधिक अध्ययन क्षमता सम्पन्न मानते हैं। जब कि 20% प्राचार्य, 15% शिक्षक, 25% अभिभावक एवं 30% छात्र इसी तथ्य के पक्षधर नहीं है।

निष्कर्षत :—

योग ध्यान प्रक्रिया से छात्र मेधा संपन्न एवं बलिष्ठ होते है। अतः उनमें दीर्घकाल तक अध्ययन करने की क्षमता विकसित रहती है। अध्ययन जनित श्रम से अध्येता श्रमित नहीं होता।

तालिका 04

योग ध्यान प्रक्रिया के द्वारा बालक की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है के सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतो से संकलित तथ्यों का अध्ययन।

कमांक	जनकारी संकलन के स्रोत	संख्या	सामान्य स्वस्थ्य बालकों की आपेक्षा योग्यताधारी छात्रों में अधिक मेधा शक्ति पाये जाने संबंधी तथ्य।			
			हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	प्राचार्य प्र.क. 25	05	4	80	1	20
02	शिक्षक प्र.क. 24	20	18	90	2	10
03	अभिभावक प्र.क. 22	20	18	90	2	10
04	छात्र प्र.क. 25	50	45	90	5	10

विश्लेषण एवं व्याख्या :—

ऊपर अंकित तालिका से स्पष्ट होता है कि जानकारी संकलन के प्रमुख स्रोत प्राचार्यों में से 80% प्राचार्यो ने अनुभव किया कि योग ध्यान प्रक्रिया की क्रियाओं से छात्रों में ध्यान क्षमता का विकास होता है। 90—90% शिक्षक तथा अभिभावकों

तथा 90% न्यादर्श चयनित श्रोत छात्रों ने भी उक्त तथ्य का अनुभव किया है। शेष 20% प्राचार्य 10–10% शिक्षक व अभिभावक तथा 10% छात्र इस तथ्य से अपरिचित हैं।

निष्कर्षत :–

योग ध्यान प्रक्रिया से यह तथ्य प्राप्त होता है कि भारतीय योग विज्ञान ऐसा प्राच्य विज्ञान है कि इसके द्वारा व्यक्ति मन की चंचलता में नियंत्रण करके ध्यान क्षमता का विकास कर लेता है, तथा मन की चंचलता में नियंत्रण हो जाता है।

तालिका 05

योग ध्यान प्रक्रिया का योगाभ्यासी में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता के सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतो से संकलित तथ्यों का अध्ययन।

कमांक	जनकारी संकलन के स्रोत	संख्या	सामान्य स्वस्थ्य बालकों की आपेक्षा योग्यताधारी छात्रों में अधिक मेधा शक्ति पाये जाने संबंधी तथ्य।			
			हॉ	प्रतिश त	नहीं	प्रतिश त
01	प्राचार्य प्र.क. 25	05	4	80	1	20
02	शि क्षक प्र.क. 24	20	17	85	3	15
03	अभिभावक प्र.क. 22	20	15	75	6	25
04	छात्र प्र.क. 25	50	35	70	15	30

विश्लेषण एवं व्याख्या :–

ऊपर अंकित तालिका से स्पष्ट होता है। व्यक्ति कि जानकारी संकलन के न्यादर्श चयनित श्रोतों में से 80% प्राचार्य, 85% शिक्षक एवं 75% अभिभावक तथा 70% छात्र से यह स्वीकार किया कि नित्य योग ध्यान प्रक्रिया का योगाभ्यासी में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। शेष 20: प्राचार्य, 15% शिक्षक, 25% अभिभावक तथा 30% छात्रों द्वारा इस सम्बन्ध में कुछ कहने की स्थिति में नहीं थे।

निष्कर्षत :–

योग ध्यान प्रक्रिया से यह तथ्य प्राप्त होता है कि जो व्यक्ति नित्य योग ध्यान प्रक्रिया को अपनाया उससे उसकी बुद्धि एवं शारीरिक स्वास्थय पर अनुकूल प्रभाव स्पष्ट पड़ा है। छात्र अपने इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने में योग ध्यान प्रक्रिया को आवश्यक मानते है।

निष्कर्ष :–

मानव को संरक्षक होना चाहिए, विध्वंसक, नाशकनहीं। जिन गुणों से हम वास्तव में मानव बनते हैं वे देने, समझने और क्षमा करने की योग्यताएँ हैं। जीवन के हर रूपों की वैयक्तिकता-पृथकता और स्वाधीनता का जीवन संरक्षण और सम्मान, योग शिक्षाओं का प्रथम अभ्यास हैं इस नीति वचन का अनुसरण करने से अत्यधिक सहनशीलता, समझ, पारस्परिक प्रेम, सहायता और दयाभाव विकसित होते हैं, न केवल कुछ व्यक्तियों में, अपितु सभी मानवों, राष्ट्रों, जातियों और धार्मिक विश्वासों, मत-मतांतरों के मध्य भी। विचार की स्पष्टता, आंतरिक स्वतंत्रता, संतोष और एक स्वस्थ आत्मविश्वास, मानसिक कल्याण का आधार है। यही कारण है हम क्रमिक रूप से अपने नकारात्मक गुणों और विचारों का हल करने का यंत्र करते हैं और सकारात्मक विचारों और व्यवहारों को विकसित करने का लक्ष्य अपने सम्मुख रखते हैं और तद्नुसार कार्य करते हैं।

थोड़ा-सा नियमित आसन और प्राणायाम हमें निरोगी तथा स्वस्थ रख सकता है। यम-नियमों के पालन से हमारो जीवन अनुशासन से प्रेरित हो चरित्र में अकल्पनीय परिवर्तन ला सकता है। धारणा एवं ध्यान के अभ्यास से वह न केवल तनावरहित होगा वरन कार्य-कुशलता में पारंगत भी हो पायेगा। हम अपने उत्थान के साथ-साथ समाज तथा राष्ट्र के उत्थान में भी सहभागी हो सकेंगे।

शोध संबंधी निम्नांकित निष्कर्ष द्रष्टव्य है –

1. योग ध्यान प्रक्रिया से बालक की मेधा शक्ति के स्तर का विकास करती है एवं उस छात्र के प्रगति व उत्थान के लिए सहायक होती है।

2. मानव मस्तिष्क के रहस्यों को प्रकट करने में योग ध्यान प्रक्रिया छात्रों को आवश्यक रूप से सहायत करती है जिससे छात्र स्वाध्यन करने में अपनी क्षमता का विकास करते है।

3. मानव की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता की वृद्धि के लिए योग ध्यान प्रक्रिया अत्यंत सहायक सिद्ध होती है, और बालक व मनुष्य अपने कार्यो को निर्विघ्न पूरा कर सके।

4. योग ध्यान प्रक्रिया के द्वारा बालक की कार्य क्षमता का अपरिमित विकास होता है, बालक दिशाविहीन होने से बचता है, कुशंगति व व्यसन से दूर रहता है और अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहता है।

5. योग ध्यान प्रक्रिया का छात्र एवं मानव में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। जिससे समाज में उत्तम चरित्र के मानव का निर्माण होता है, समाज में सम्पन्नता व स्वच्छ वातावरण का निर्माण होता है और जिस के कारण विश्व कल्याण संभव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Govt. of India, Ministry of Education (1964-66) Education and Development; Report of Education Commissions.
2. पाठक, पी.डी.(1974) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर
3. पाठक, पी.डी. (1986) शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
4. पाल, एस. के. और अन्य (1997) शिक्षा दर्शन, इलाहाबाद : कैलाश प्रकासन।
5. पाण्डेय, राम सकल (1998) शिक्षा दर्शन, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

ब्रह्मचर्य का योग शास्त्रिय विवेचन

❑ संदीप ठाकरे*

शोध सारांश

ब्रह्मचर्य योग साधना का आधार है। शरीरस्थ वीर्यशक्ति को अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन करने के लिए आहार विहार पर संयम रखना अत्यन्त आवश्यक है। गांधीजी ने भी ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्म की खोज से लिया है। इसप्रकार उन्होंने ब्रह्मचर्य का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा सभी समयों में तथा सभी स्थानों पर समस्त इन्द्रियों का पूर्ण संयम अथवा नियंत्रण रखना है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अष्टविधि मैथुन अर्थात् कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय, क्रिया–निवृत्ति से सर्वदा बचना चाहिए। साथ ही ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए यौगिक साधना का आधार लेना चाहिये।

ब्रह्मचर्य योग के आधारभूत स्तम्भों में से एक है। ये वैदिक वर्णाश्रम का पहला आश्रम भी हैं, जिसके अनुसार पच्चीस वर्ष तक की आयु तक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य माना गया हैं। ब्रह्मचर्य का यौगिक अर्थ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वेदो का अध्ययन करना।[1] प्राचीन काल में छात्रगण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरू के यहां रहकर सावधानी के साथ वीर्य की रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे इसलिए धीरे धीरे ब्रह्मचर्य शब्द वीर्यरक्षा के अर्थ में रूढ हो गया 'वीर्य धारणं ब्रह्मचर्य 'अर्थात् शरीरस्थ वीर्य शक्ति की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रह्मचर्य है। अर्थात् मन वाणी तथा शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनो का परित्यागकर देना ब्रह्मचर्य है।[2]

इस प्रकार काम विकार को किसी भी प्रकार से उदय न होने देना ब्रह्मचर्य है जब तक समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता तब तक काम विकार की उत्पत्ति को नहीं रोका जा सकता। अतः सब इन्द्रियों के नियंत्रण से कमैन्द्रिय के ऊपर संयम करने को ब्रह्मचर्य कहते है।[3] मन पर पूर्ण नियंत्रण ब्रह्मचर्य के लिए परम आवश्यक है ब्रह्मचर्य ठीक ठीक पूर्णतया पालन करने के लिए खाने पीने तथा रहन सहन को उसके अनुकूल बनाना पडता हैं। दक्षमुनि के विचार से आठ प्रकार के मैथुन से रहित होना ही ब्रह्मचर्य है–अर्थात काम क्रियाओं व बातों का स्मरण करना, उनके विषय में बात करना, स्त्री के साथ क्रिडा करना, उसके (स्त्री के) अंगो को देखना, उसके साथ गुप्त

* योग विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

बातचीत करना, भोग इच्छा, सम्भोग निश्चय तथा सम्भोग क्रियायें ये आठ प्रकार के मैथुन हैं जिनके विपरीत आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है।[4]

शरीर का सार वीर्य है इसलिए मुमुक्षु योगी पुरूष के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत नितांत आवश्यक हैं ब्रह्मचर्य व्रत से ऊर्ध्वरेता पुरूष ही सिद्ध योगी बन सकता है अधःरेता पुरूष नहीं ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही योगी का देह तेजस्विी, ओजस्वी, दीर्घायु तथा निरोग बनता हैं। वीर्य सप्तधातुओं का सार हैं, यह बात सुश्रुत आदि निदान ग्रन्थों में कही गयी है –

मनुष्य जो भी खाद्य पदार्थ ग्रहण करता है उसका सार रस बनता है, उस रस से रक्त बनता है रक्त से मांस के रूप में परिणत हो जाता है उस मांस से अस्थि–हड्डी बनती है अस्थि से मज्जा बनता है, और मज्जा से शुक्र (वीर्य) बनता हैं। शुक्र निर्मल, श्वेत, शीतल तथा नितांत बल पुष्टिकारक है। यह के बीज रूप होता है वीर्य से जो शरीर रूप में एक प्रकार से जो तेज उत्पन्न होता है उसी को ओज कहते है अतः जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा उस वीर्य शक्ति की रक्षा करता हैं तो उसके प्रभाव से उसका शरीर तेजोमय, कान्तिमान, लावण्ययुक्त और पुष्ट–बलिष्ठ होने के साथ–साथ निरोग तथा दीर्घायु होता हैं।[5]

याज्ञवल्क्य संहिता में ऋषि याज्ञवल्क्य ब्रह्मचर्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि–

कर्मणामनसा वाचा सर्वास्थासु सर्वदा।[6]
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते।।

अर्थात–योगी को कर्म से अर्थात शारीरिक चेष्टादी से, मन से तथा शारीरिक चेष्टाओं से मैथुन की इच्छा का परित्याग कर देना वास्तविक ब्रह्मचर्य व्रत है वेदों में भी कहा गया है– ब्रह्मचयैण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति।[7]

अर्थात ब्रह्मचर्य से उत्पन्न बल, पराक्रम तथा सामर्थ्य–शक्ति से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है और विद्रोही शत्रुओं का मान मर्दन करता है अर्थात मार भगाता हैं। तथा अथर्ववेद में ही अन्यत्र यह कहा गया है–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नता।[8]

अर्थात ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त का लिया था। इसी प्रकार योग दर्शन में भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा का फल बताते हुए कहा है– ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलभः।[9]

अर्थात वीर्य ही सब शक्तिओं का मूल कारण है। उसके पूर्णतया रोकने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियां बढ जाती है तथा योगमार्ग में बिना रूकावट उन्नति प्राप्त होती हैं। इस प्रकार वेदों से लेकर समस्त योगग्रथों ने ब्रह्मचर्य से होने वाले अपार लाभों की चर्चा की है। समस्त शास्त्रों की साररूप श्रीमदभागवतगीता में तो अनुचित विषय वासना को नाश का मूल कारण बताया हैं गीता के दूसरे अध्याय में इसकी चर्चा करते हुए भगवान कहते हैं–'विषयों का चिन्तन करने वाले पुरूष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उन्नति होती हैं और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यंत मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है स्मृति भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है, और बुद्धि के नाश हो जाने से यह पुरूष अपनी स्थिति से गिर जाता है'।[10] गीता के अध्याय पांच में इसी बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं–'जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाला सब योग हैं, यद्यपि विषयी पुरूषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दुःख ही होता है आदि अन्तवाले अर्थात अनित्य है। इसलिए बुद्धिमान विवेकी पुरूष उनमें नहीं रमता है'।[11] आगे चलकर गीता ने ब्रह्मचर्य को बहुत बड़ा व्रत और तप बताया है–देवता, ब्राम्हण, गुरू और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता,

ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहलाते ह'।[12] शास्त्रों में तो ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन किया ही गया हैं परन्तु शास्त्रों पर श्रद्धा रखते हुए संतों एवं महापुरूषों ने ब्रह्मचर्य की साधना से अपने जीवन का आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत किया था। महात्मा गांधी ने तो ब्रह्मचर्य को अपने एकादशव्रतों में स्थान दिया था। उन्होने आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति के दृष्टि से ब्रह्मचर्य को बहुत महत्व दिया है और इसकी व्यापक परिभाषा की ब्रह्मचर्य का पूर्ण एवं उचित अर्थ ब्रह्म की खोज हैं। ब्रह्म की यह खोज अथवा प्राप्ति पूर्ण इन्द्रिय संयम के बिना असंभव हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ संयम अथवा नियंत्रण है।[13] अतः शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ्य एवं शक्तिशाली रहने के लिए भी गांधी जी सभी मनुष्यों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक मानते थे। उनका विचार है कि जानबूझ कर मैथुन के लिए वीर्य का नाश करना सबसे बडी मूर्खता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह विवाहित ही क्यो न हो को यथा सम्भव सहवास से दूर रहना चाहिए, इन्हीं कारणों से विवाहित और अविवाहित सभी व्यक्तियों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक माना गया है।

ब्रह्मचर्य की महिमा का गान करते हुए स्वामी रामतीर्थ कहते है–'जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढकर प्रकाश के रूप में परिणत होता हैं वैसे ही ब्रह्मचारी के अंदर का वीर्य सुषुम्ना नाडी के द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढता हुआ ज्ञान–दीप्ती में परिणत होता ह'।[14]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'ब्रह्मचर्य' में ही मनुष्य की शक्ति निहित है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को अष्टविधि मैथुन अर्थात कीर्तन, केलि प्रेक्षण गुहयभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रिया–निवृत्ति अष्टविधि मैथुन से सर्वदा बचना चाहिए। अतः इससे बचना ही ब्रह्मचर्य है। तथा ब्रह्मचर्य रक्षा के सरल और व्यवहारिक उपायों जैसे ईश्वर परायणता सात्विक भोजन, राम–नाम का जाप महानध्येय सादा जीवन, उच्चविचार से रहना, उपवास, प्रतिदिन नियमित रूप से योगाभ्यास, प्रातः या सायं की सैर, स्वाध्याय करना आदि बातों के पालन द्वारा ब्रह्मचर्य की साधना को साधक साध सकता है इस प्रकार योगशास्त्रों में ब्रह्मचर्य की साधना को साक्षात् ब्रह्म की उपासना का मार्ग बताया गया है।

संदर्भ

1. आरोग्य–अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ– 69
2. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1998), योगविज्ञान, योगनिकेतन ट्रस्ट, मुनी की रेती ऋषिकेश पृ– 45
3. आत्रेय शांतिप्रकाश (1964), योग–मनोविज्ञान श्री रामाशंकर जी तारा पब्लिकेशन काशी, पृ–177
4. दक्षसंहिता
5. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1998), योगविज्ञान, योगनिकेतन ट्रस्ट, मुनी की रेती ऋषिकेश पृ– 46
6. याज्ञवल्क्य संहिता,
7. अथर्ववेद– 1/5/15
8. अथर्ववेद– 3/5/19
9. योगदर्शन– 2/38
10. श्रीमद् भगवद्गीता– 2/(62,63)
11. श्रीमद् भगवद्गीता– 5/22
12. श्रीमद् भगवद्गीता– 17/14
13. महात्मागांधी : हिन्दु धर्म (1998), जनजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ–137
14. पं, श्रीराम शमा आचार्य : ब्रह्मचर्य जीवन की आवश्यकता शांतिकुन्ज हरिद्वार, पृ– 9

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

बघेलखण्ड में सूफी सन्तों के समन्वय स्थल

❑ डॉ. सुधा सोनी*

खानकाहे, दरगाहे, आस्ताने, तकिये और दायरे—

बघेलखण्ड के समस्त मुख्य स्थानों में सूफी संतों ने प्रेम और शांति का संदेश यहाँ की आम जनता को दिया। कुछ बाहर के सूफी संत आये और कुछ समय सेवा कार्य करके अपने स्थान को प्रस्थान कर गये किन्तु बघेलखण्ड का सौभाग्य है कि कुछ बुजुर्ग हस्तियाँ मरते दम तक इसी धरती में रहे और अंतिम साँस तक अपना कर्त्तव्य का निर्वाह करके आम मानवता का मन जीत लिया उसी का परिणाम है कि उनके दफन की जगह में खानकाहे दरगाहें, आस्तानें, तकिये और दायरे आज भी जनता के श्रद्धा और भक्ति भाव का केन्द्र स्थान हैं। बघेलखण्ड के इन पवित्र स्थानों की एक सूची जिला-बार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

क्र.	रीवा जिला	स्थान व नगर का नाम	सूफी संत का नाम
1.	रीवा जिला	पुलिस वर्कशॉप के सामने गल्ला मण्डी रोड एवं पुराना अस्तबल के अंदर रीवा	हजरत शहीद अब्दुल्ला शाह रहमतुल्ला अलैह
2.	रीवा जिला	अमहिया रीवा	हजरत रजपु शाह रहमतुल्ला अलैह
3.	रीवा जिला	अमहिया रीवा	हजरत रजफ शाह रहमतुल्ला अलैह
4.	रीवा जिला	अमहिया रीवा	हजरत शहीद गुमनामशाह रहमतुल्ला अलैह
5.	रीवा जिला	बड़ी दरगाह अमहिया रीवा	हजरत इमामशाह रहमतुल्ला अलैह
6.	रीवा जिला	बड़ी दरगाह के पीछे, अमहिया रीवा	हजरत मडफाशाह रहमतुल्ला अलैह
7.	रीवा जिला	बड़ी दरगाह के सामने, अमहिया, रीवा	हजरत शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह
8.	रीवा जिला	छोटी दरगाह कटरा, रीवा	हजरत मस्तानशाह रहमतुल्ला
9.	रीवा जिला	छोटी दरगाह, रीवा	हजरत सैय्यद बाबा रहमतुल्ला अलैह
10.	रीवा जिला	स्वागत भवन के बगल में, रीवा	हजरत शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह
11.	रीवा जिला	कटरा, रीवा	हजरत शाम शाह रहमतुल्ला अलैह
12.	रीवा जिला	तरहटी चौकी के पास, रीवा	हजरत शाख शाह रहमतुल्ला अलैह
13.	रीवा जिला	सिटी कोतवाली के पीछे, रीवा	हजरत शाह भोलनशाह रहमलुल्ला अलैह
14.	रीवा जिला	सिटी कोतवाली के पीछे, रीवा	हजरत शाह भोलनशाह रहमतुल्ला अलैह
15.	रीवा जिला	फोर्ट रोड अशोक वृक्ष, रीवा	हजरत मुनव्वरशाह रहमतुल्ला अलैह
16.	रीवा जिला	फोर्ट रोड, रीवा	हजरत शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह

* प्राध्यापक इतिहास, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

17.	रीवा जिला	धर्मशाला फोर्ट रोड, रीवा	हजरत लम्बूशाह रहमतुल्ला
18.	रीवा जिला	घोघर तकिया, रीवा	हजरत मकबूलशाह रहमतुल्ला अलैह
19.	रीवा जिला	घोधर तकिया, रीवा	हजरत खाकीशाह रहमतुल्ला अलैह
20.	रीवा जिला	पचमठा घोघर, रीवा	हजरत खाकीशाह रहमतुल्ला अलैह
21.	रीवा जिला	कब्रस्तान घोघर, रीवा	हजरत नासिरूद्दीनाशाह वारसी रहमतुल्ला अलैह
22.	रीवा जिला	धोबिया टंकी, रीवा	हजरत मिस्कीन शाह रहमतुल्ला अलैह
23.	रीवा जिला	बिछिया तकिया, रीवा	हजरत दाराशाह रहमतुल्ला अलैह
24.	रीवा जिला	बिछिया, रीवा	हजरत चिरौजियाशाह रहमतुल्ला अलैह
25.	रीवा जिला	बिछिया रपट के पास, रीवा	हजरत शुकरूशाहा रहमतुल्ला अलैह
26.	रीवा जिला	शहनिन टोला, रीवा	हजरत मोहब्बतशाह रहमतुल्ला अलैह
27.	रीवा जिला	झिरिया पुल के नीचे, रीवा	हजरत अरबियाशाह रहमतुल्ला अलैह
28.	रीवा जिला	बगीचा आजाद नगर निपनिया	हजरत गुलबहारशाह रहमतुल्ला अलैह
29.	रीवा जिला	बिछिया रपट के पास, रीवा	हजरत आस्ताना हाजी कुददृश बाबा रहमतुल अलैह
30.	रीवा जिला	खेत के बीच में बैकुन्ठपुर, रीवा	जरत मुलायम दद्दाशाह रहमतुल्ला अलैह
31.	रीवा जिला	बस्ती के बीच में कैबुन्ठपुर, रीवा	हजरत शफीशाह बाबा रहमतुल्ला अलैह
32.	रीवा जिला	शफीशाह बाबा के बरामदे के अंदर है बैकुन्ठपुर, रीवा	हजरत शफी शाह बाबा रहमतुल्ला अलैह हजरत मकबूल शाह रहमतुल्ला अलैह
33.	रीवा जिला	गुढ़ जिला रीवा	हजरत सैय्यद शही सैय्ययदना सालार मसऊद
34.	रीवा जिला	गुर्गी, जिला रीवा	गाजी रहमतुल्ला अलैह
35.	रीवा जिला	कुटी शरीफ त्यौंथर, रीवा	हजरतशाह अहमद सफी आरफी उम्रहू रहमतुल्ला अलैह
36.	रीवा जिला	कुटी शरीफ त्यौंथर, रीवा	हजरतशाह मुनव्वर सफी मोहम्मदी
			कद्सिल्लहु सिर्रहु रहमतुल्ला अलैह
37.	रीवा जिला	कुटीर शरीफ त्यौंथर, रीवा	हजरत शाह मनुव्वर सफी मोहम्मदी कद्सिल्लहु
			सिर्रहु रहमतुल्ला अलैह
38.	रीवा जिला	गोविन्दगढ़, जिला रीवा	हजरत सैय्यद सिराजुद्दीन शहीद
			बुखारी बाबा र.अ.
39.	रीवा जिला	गोविन्दगढ़, जिला रीवा	हजरत शहीद बाबा र. अ.
40.	रीवा जिला	रामपुर, जिला रीवा	हजरत गुलाब शाह बाबा र. अ.
41.	रीवा जिला	नदी के किनारे मजार सेमरिया जिला रीवा	मनगव
42.	रीवा जिला	मनगवां जिला रीवा	हजरत शहीद बाबा र. म.
43.	रीवा जिला	मन्गावां जिला रीवा	हजरत मास्टर रूपा बाबा शाह र. अ.
44.	रीवा जिला	मऊगंज के मध्य राष्ट्रीय राजमार्ग के पास मऊगंज, रीवा	हजरत हाफिज अजमत अली शाह वारसी र.अ.
45.	रीवा जिला	लालगांव के पास ग्राम भटवा बांस चौराहा, जिला-रीवा	हजरत मो मस्तान अली वारसी र.अ.

46.	रीवा जिला	बस्ती के अंदर रामपुर कलछुरियान जिला रीवा	हजरत कलीमीशाह बाबा र. अ.
47.	सतना जिला	मदरसा अंजुमन इस्लामियां के हाते में जिला सतना	हजरत मोलवी नूर मोहम्मद (बंगाली मौलवी) रहमतुल्ला अलैह
48.	सतना जिला	जिला सतना	हजरत बाबा अबदाल शाह रहमतुल्लपा अलैह
49.	सतना जिला	जिला सतना	हजरत डाली बाबा रहमतुल्ला अलैह
50.	सतना जिला	नागौद जिला सतना	हजरत मिनहाजुल हक दिल सुल्तानपुरी रहमतुल्ला अलैह
51.	सतना जिला	सोहावल जिला सतना	हजरत ताजुद्दीन महाबली रहमतुल्ला अलैह
52.	सतना जिला	ऊँचेहरा, जिला सतना	हजरत नौगजा बाबा रहमतुल्ला अलैह
53.	सतना जिला	चदिया जिला सतना	हजरत नौगजा बाबा रहमतुल अलैह
54.	सतना जिला	मैहर जिला सतना (पुरानी बस्ती ईदगाह के पास)	हजरत श्याह पोष बाबा रहमतुल्ल अलैह
55.	सतना जिला	मैहर जिला सतना	हजरत दीदार अली शाह रहमतुल्ल अलैह
56.	सतना जिला	मैहर जिला सतना	हजरत शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह
57.	सतना जिला	मैहर जिला सतना	हजरत शहीदन बाबा रहमतुल्ल अलैह
58.	सतना जिला	नदी के पास मैहर, जिला सतना	हजरत तालिब शाह दाता रहमतुल्ला अलैह
59.	सतना जिला	मुकुन्दपुर, जिला सतना	हजरत ताजुद्दीन मुहिब्बे अली शाह रहमतुल्ला अलैह
60.	सतना जिला	माधवगढ़, जिला सतना	हजरत शाहनात शाह बाबा रहमतुल्ला अलैह
61.	सतना जिला	अमरपाठन, जिला सतना	हजरत अंगारा शाह रहमतुल्ला अलैह
62.	सतना जिला	भटनवारा जिला सतना	हजरत मदनीशाह रहमतुल्ला अलैह
63.	सतना जिला	नरौगढ़ पर्वत का सरांय का मकबरा जिला सतना	हजरत मान शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह
64.	शहडोल जिला	मोहल्ला ख्वाजा नगरी सोहागपुर, शहडोल जिला	हजरत सैय्याद बाबा रहमतुल्ला अलैह
65.	शहडोल जिला	मोहल्ला इतवरी रेलवे पटली के उस पार शहडोल जिला	हजरत रहमानी बाबा रहमतुल्ला अलैह
66.	शहडोल जिला	बड़ा कब्रिस्तान के अंदर सोहागपुर शहडोल जिला	हजरत शहीद बाबा रहमतुल्ला अलैह
67.	शहडोल जिला	गोहपारू शहडोल जिला	हजरत सत्तर कलीमी शाह रहमतुल्ला अलैह

68.	शहडोल जिला	लपरी गांव शहडोल जिला	हजरत बंगाली बाबा रहमतुल्ला अलैह
69.	शहडोल जिला	धनपुरी शहडोल जिला	हजरत सैय्यद नेहाल आलम रहमतुल्ला अलैह
70.	शहडोल जिला	अमरकंटक के पास करजिया गांव डिंडोरी रोड शहडोल जिला	हजरत अब्दुल कुद्दूश बाबा रहमतुल्ला अलैह
71.	सीधी जिला	कब्रिस्तान के पास, सिंधी चौराहा सीधी	हजरत तुराब शाह बाबा रहमतुल्ला अलैह
72.	सीधी जिला	पेट्रोल पम्प के पीछे, जामा मस्जिद चुरहट सीधी जिला	हजरत मस्तान शाह रहमतुल्ला अलैह
73.	सीधी जिला	अमिलिया सीधी जिला	हजरत मशूर बाबा रहमतुल्ला अलैह
74.	उमरिया जिला	उमरिया जिला के कस्बे व गांव पोस्ट चंदिया में नदी के किनारे एवं किला के पीछे	हजरत नौगजा पीर साहब रहमतुल्ला अलैह

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

आदिम जनजातीय समूह के विकास के लिए सरकार की योजनाएँ एवं महत्व

❑ डॉ. बी.के. गर्ग*

शोध सारांश

वर्तमान समय में जनजातियों की समस्यायें मात्र अकादमीय अध्ययन की वस्तु नहीं रह गई हैं। जनजातियाँ अब गुमनामी में जीने वाले समाज नहीं रहे। एक बहुत बड़े अरसे तक जनजातियों के अध्येता जनजातियों को कौतूहल की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। जनजाति शब्द हमारे मस्तिष्क में उस व्यक्ति का चित्र कौंधता रहा है जो या तो सल्फी पीकर जंगल की किसी एक कुटिया में धुत, बेखबर बैठा है या पर्वतों की उपत्यकाओं में धनुष-बाण लेकर किसी शिकार के पीछे बेतहाशा भागा जा रहा है। जनजातियाँ हमारे लिए सिरों पर कलगियाँ लगाये न्यूनतम वस्त्र धारण करने वाले नर्तकों का समूह रही हैं। जनजातियों की यह गलत पहचान आकस्मिक नहीं बनी है वरन् इस पहचान को बनाने का एक इतिहास है, इसको बनाने के लिए सतर्कता भरा एक प्रयास भी है जो सामान्य भारतीयों की आँखों से सदैव ही ओझल रहा है। इस पूरे इतिहास को तथा उन प्रयासों को जिनके कारण हमारी दृष्टि जनजातीय मामलों में सतही रही।

विश्व की सभी महान सभ्यताओं की उत्पत्ति जनजातियों की संस्कृतियों से ही हुई है। मिश्र, ग्रीक, रोमन आदि सभी सभ्यताओं के जनक उन भौगोलिक क्षेत्रों में आदिवासी ही थे। भारत की महान सभ्यता भी अपने मूल में जनजातीय ही थीं। सुदास और दिवीदास जनजातीय राजा थे। उनके विरोधी दश राजाओं का समूह भी जनजातीय ही थी।

रामायण और महाभारत काल में भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती थीं जिन्हें परवर्ती विद्वानों ने आर्यों और अनार्यों की संज्ञा दी है। इन जनजातियों में चाहे वे किसी भी वर्ग की क्यों न हों आपसी और मैत्री संबंध रहे हैं। इन जनजातियों के समूह भी बनते-बिगड़ते रहे जैसे भरत और पुरु जनजातियाँ बाद में मिलकर कुरू के नाम से विख्यात हुई। इसी तरह पांचाल जनजाति भी अनेक जनजातियों का समूह थी जिसमें से एक प्रमुख जनजाति कृवि थी। कुरुओं की समकालीन एक जनजाति श्रंजय थी जो कालांतर में विलोप हो गई। गोपथ ब्राह्मण उशीनर जनजाति की चर्चा करता है। आत्रेय ब्राह्मण शिवि जनजाति के शासकों को वर्णन करता है। यह लिखने का तात्पर्य यही है कि तथाकथित 'आर्य' भी जनजातियों के समूह ही थे। इन जनजातियों की पहचान बनती और बिगड़ती रही। साधारणतः विलुप्त होने

* डीन, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, जिला- सरगुजा (छ.ग.)

वाली जनजाति किसी समकालीन प्रमुख जनजाति का भाग बन जाती और इस तरह भारत में रहने वाले सभी भारतीय विभिन्न कुलों और गोत्रों के समूह से ऊपर उठकर स्वयं को आर्य संबांधित करने लगे। पश्चिमी विद्वानों ने इसी संबोधन के आधार पर आर्य और अनार्य नाम से दो प्रजातियों की कल्पना की। यह एक आधारहीन कल्पना है। आर्य शब्द नस्ल का बोधक नहीं था। वाल्मीकि रामाण तथा महाभारत में यह शबद उन लोगों के लिए संबोधन के रूप में प्रयोग किया जाता था जो कि संबोधक के प्रति मैत्री भाव रखते थे। इन्हीं अर्थों में राम ने विभीषण को आर्य कहा। दक्षिण भारत में शबर, पुलिंद इत्यादि जनजातियाँ थी। जिन्हें उत्तर वैदिक काल में ''दस्यु'' शब्द से संबोधित किया गया है अनार्य शब्द से नहीं।

वस्तुतः रामायण काल तक अनार्य तो रावण था जो कि चातुर्वर्ण की अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ब्राह्मण जैसे सर्वोच्च वर्ण का व्यक्ति था। रामायण काल के शबर, निषाद तथा अन्य उत्तरी जनजातियों में कुल अन्तर यह था कि जहाँ वैदिक काल की जननजातियाँ आपस में मिल-जुलकर एक जनजाति समूह से आगे बढ़कर एक राष्ट्र के निर्माण की भूमिका बना रही थी वहीं वह समूह धीरे-धीरे दक्षिण भारत की जनजातियों को अपने समूह में प्रवेश दे रहा था। यही कारण है कि रामायण काल के ''वानर'', ''भलूक'' और ''गीध' महाभारत काल तक आर्य हो चुके थे। रामायण कालीन भल्लूक जामवन्त की वंशजा जामवन्ती से भगवान कृष्ण ने विवाह किया था। इससे यह यह स्पष्ट ही है कि महाभारत काल में भल्लूक सांस्कृतिक दृष्टि से इतने ग्राह्य तो रहे ही होंगे कि समकालीन भारत के सबसे प्रभावी यदुवंश के नायक को उनसे वैवाहिक संबंध रखना उचित प्रतीत हुआ।

महाभारत काल के पश्चात् मुगल काल तक जनजातियों के राजा भारत के क्षेत्रों में राज्य करते रहे तथा उनके संबंध समकालीन अन्य राजाओं से थे। इस कड़ी में गढ़ा-मंडला का राजवंश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गढ़-मण्डला की प्रतापी महारानी दुर्गावती ने मालवा के सुल्तान बाजबहादुर को रणक्षेत्र में पराजित किया। मालवा मध्य भारत के अत्यन्त उर्वर क्षेत्रों में से एक रहा है साथ ही मालवा की समृद्धि इतिहास में कभी क्षीण नहीं हुई। अतः वहां के शासक सामान्य तौर पर काफी शक्तिशाली हुआ करते थे। दुर्गावती राजपूत क्षत्रिय थी, फिर भी उसने गौंड क्षत्रिय कुमार दलपतशाह का वरण किया था। सामाजिक तौर पर यह बेमेल विवाह नहीं था। अंग्रेजों के इतिहास में ब्राह्मणें को साधरणतः कूप मंडूक एवं संकीर्ण दृष्टिकोण वाला बतलाया जाता रहा है। यही विचार भारतीय विद्वानों के प्रगतिशील वर्ग ने स्वीकार कर लिया जिसके तहत द्विजेतर जातियों को म्लेच्छ, शूद्र, चांडाल इत्यादि कहने की परम्परा ब्राह्मणों के सिर पर थोपी गई। उन्हीं ब्राह्मणों ने गौंड राजा संग्रामशाह जो कि दुर्गावती का श्वसुर था, के संबंध में लिखा—

''आसीत्सूनुस्तस्य संग्रामसाहित विद्विट् तूलोस्तोम कल्पात्तवहिन्।

विश्व व्याप्ते यत्प्रकाशे मध्यह्नार्को विस्फुलिंगी बभूव॥

अर्थात् उसका पुत्र संग्रामशााह था। उसके शत्रु कपास के पुंज के समान थे। वह उनके लिए प्रलयंकारी अग्नि के समान था। उसके प्रताप के प्रकाश के विश्व में व्याप्त होने के कारण दोपहर का सूर्य भी निस्तेज सा हो गया।

उपर्युक्त श्लोक रामनगर शिलालेख में से उद्धृत है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों ने राजाओं की चाटुकारिता से उठकर अनेक कार्य किये थे जिनमें जनजातियों और शेष समाज में अभेद की भावना का प्रचार। गौंड राजाओं को क्षत्रिय ही माना जाता था। गोंड़ शब्द स्वयं भी गोंडी भाषा का नहीं है। यह एक उद्बोधन मात्र है जिसे अन्य लोगों ने उन्हें दिया।

जनजातिय संस्कृति और धर्म दूसरे बड़े सत्य को उद्घाटित करते हैं वस्तुतः संस्कृतिक और धर्म के नाम पर विदेशियों ने जिस तरह उन्हें हिन्दू मूल धारा से अलग बतलाने का प्रयास किया है उसमें तथ्य कम और वाग्विलास

ही अधिक है। हिन्दू धर्म क मूल भावना सर्वे भूतः हिते रतः या आत्मवत् सर्वभूतेषु रही है। इस धर्म के इस स्वरूप में अनेक मतों और सम्प्रदायों को बिना किसी विरोध के स्थान मिला। हिन्दू धर्म मानव के शाश्वत मूल्यों में विश्वास करता है। वे मूल्य जो अहिंसा, करुण, सदाचार का पाठ पढ़ाते हैं। इस प्रकार देवी, देवता, महापुरुष या दैवीय शक्तियों को इस धर्म ने कभी सीमित नहीं किया। इस तरह भारत की जनजातियों के देवी, देवता, उपासना पद्धतियाँ, विश्वास, कथायें सभी हिन्दू धर्म में कालक्रम के अनुसार बदलते रूपों में प्रविष्ट हो गई। गणेश, हनुमान और मातृकाओं के पूजन और कथाओं के मूल में जनजातीय विश्वास ही है। हिन्दू धर्म व्यक्तिवादी नहीं रहा है। यही कारण है कि हिन्दुओं के आराध्य राम, कृष्ण और परशुराम की मानवीय लीला पर भक्तजन और नास्तिक दोनों ही आक्षेप करते रहते हैं। इन आक्षेपों का प्रकाशन होता रहता है पर आज तक किसी शंकराचार्य ने इस आक्षेपकों के सिर को काटने का फतवा नहीं दिया।

जून, 1972 में 'शिड्यूल ट्रयूल्ड ट्राइब्स एण्ड शिड्यूल्ड कास्ट कानफ्रेंस'' नई दिल्ली के उद्घाटन भाषण बोलते हुए उन्होंने कहा—''यह सही है कि भारत की सामान्य जनता में जनजातियों के प्रति उदासीनता का भाव रहा है किन्तु उसके साथ एक और भी बड़ा कारण है। वह यह है कि ब्रिटिश सरकार ने सभी तरह से भारत के सामान्य नागरिक को आदिवासी क्षेत्रों में जाने से निरुत्साहित किया। इसके पीछे उनका उद्देश्य था कि स्वतंत्रता की ज्योति वहां तक न पहुँचे इस उद्देश्य में वे सफल भी हुए। आसाम क्षेत्र में स्वतंत्रता संग्राम प्रभावी नहीं रहा। वहाँ मध्य क्षेत्र में आधी सदी से चल रही लड़ाई का जनजातियों पर मालमूल सा प्रभाव पड़ा।''

यद्यपि कुल मिलाकर अंग्रेजों ने शक्ति, छल, कपट, कौशल, प्रलोभन इत्यादि के जरिये जनजातियों को भारत की मुख्य धारा में अलग करने का पूरा प्रयास किया।

जनजातीय कार्य मंत्रालय की प्रमुख योजनाओं/ कार्यक्रमों को संक्षेप में नीचे दिया गया है—संविधान के अनुच्छेद 275(1) के अन्तर्गत विशेष केन्द्रीय सहायता तथा अनुदान—

जनजातीय उप-योजना के माध्यम से राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को जनजातीय विकास हेतु किए गए प्रयासों को पूरा करने के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान की गई। इस सहायता का मूल प्रयोजन पारिवारिक आय सृजन कि निम्न योजनाओं जैसे कृषि, बागवानी, लघु सिंचाई, मृदा संरक्षण, पशुपालन, वन शिक्षा, सहकारिता, मत्स्य पालन, गांव, लघु उद्योगों तथा न्यूनतम आवश्यकता संबंधी कार्यक्रमों से है।

जनजातीय विकास हेतु परियोजनाओं की लागत को पूरा करने तथा अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन स्तर को राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों के बराबर लाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 275(2) के पहले प्रावधान के अंतर्गत राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को भी अनुदान दिया जाता है। जनजातीय विद्यार्थियों को गुणवत्तापरक शिक्षा प्रदान करने के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना करने हेतु निधियों के कुछ हिस्से का प्रयोग किया जाता है।

17 राज्यों तथा 1 संघ राज्य क्षेत्र अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में कृषि हेतु पूर्व तकनीक, कम साक्षरता दर तथा घट रही या सिर्फ आबादी के आधार पर 75 आदि जनजातीय समूह के रूप में पहचान गया है। इन समूहों की असुरक्षा को देखते हुए, आदिम जनजातीय समूह के सम्पूर्ण विकास के लिए एक केन्द्रीय क्षेत्र योजना वर्ष 1998-99 में शुरू की गई थी। यह योजना बहुत लचीली है और इसमें आवास, बुनियादी ढांचे का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि संवितरण/विकास, कृषि विकास, पशु विकास, सामाजिक सुरक्षा, बीमा आदि शामिल है। 2007-008 के दौरान, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के लिए संबंधित राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा किए गए आधारभूत सर्वेक्षणों के माध्यम से व्यापक दीर्घकालिक ''संरक्षण एवं विकास योजना'' आदिम

जनजातीय समूह हेतु तैयार की गई। इन योजनाओं में राज्य सरकारों तथा गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों के बीच तालमेल हेतु की परिकल्पना की गई थी।

आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, मणिपुर तथा त्रिपुरा में चौदह जनजातीय अनुसंधान संस्थान स्थापित किए गए हैं। ये संस्थान राज्य सरकारों को योजना संबंधी जानकारियाँ; जैसे— अनुसंधान एवं मूल्यांकन अध्ययन, आंकड़ों का संग्रह, प्रथागत कनून का संहिताकरण तथा प्रशिक्षण, संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन में संलग्न है। इनमें से कुछ संस्थानों का संग्रहालय भी है जिसमें अजनजातीय कलाकृतियों का प्रदर्शन किया जाता है।

अनुसूचि जनजाति की लड़कियों/लड़कों हेतु छात्रावास–

जनजातीय लड़कियों की शिक्षा हेतु उनको बेहतर आवसीय सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से छात्रावास योजना तीसरी पंचवर्षीय योंजना में शुरू की गई थी। इस योजना के तत निर्माण कार्य हेतु राजाओं को लागत का 50 प्रतिशत तथा संघ राज्य क्षेत्रों को 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 1999-2000 के दौरान राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को 29 तथा 2000-2001 के दौरान 11 लड़कियों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियां निर्मुक्त की गई थीं। लड़कियों हेतु छात्रावास योजना के अनुसार ही लड़कों के लिए छात्रवास योजना 1999-90 में शुरू की गई थी। वर्ष 2000-2001 के दौरान, 15 लड़कों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियाँ निर्मुक्त की गई थीं।

केन्द्र द्वारा प्रयायोजित यह योजना 1990-91 में संबंधित राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों को क्रमशः 50 प्रतिशत एवं 100 प्रतिशत आधार पर केन्द्रीय सहायता प्रदान करने के लिए शुरू की गई थी। वर्ष 1999-2000 के दौरान 36 आश्रम विद्यालयों के निर्माण हेतु निधियाँ निर्मुक्त की गई थी।

जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना–

इस योजना का उद्देश्य विभिन्न पारंपरिक/आधुनिक व्यवसाय में उनके शैक्षक योग्यता के अनुसार वर्तमान आर्थिक रुझानों तथा बाजार क्षमता के आधार पर जनजातियों के कौशल का उन्नयन करना है जिससे वे लाभकारी रोजगार हासिल कर सकेंगे या स्व-रोजगार कर सकेंगे। यह योजना 100 प्रतिशत अनुदान उपलब्ध कराती है तथा इस राज्य सरकारों, संघ राज्य क्षेत्रों एवं गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है। इस योजना में वित्तीय मानदंड तय हैं कोई निर्माण लागत प्रदान नहीं की जाती है।

स्वयं सेवी संस्थाओं/संमितियों के प्रस्तावों को राज्य सरकार के माध्यम से भेजा जाना चाहिए तथा राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के जनजातीय कल्याण/विकास विभाग के प्रधान सचिव/सचिव की अध्यक्षता में गठित 'स्वैच्छिक प्रयासों के समर्थन हेतु राज्य समिति' की सिफारिश अनिवार्य है। जिस वित्तिय वर्ष में प्रसताव भेजा गया है केवल उसी वित्तीय वर्ष के लिए राज्य समिति की सिफारिशें वैद्ध होगी।

अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा का सुदृढ़ीकरण–

यह मंत्रालय की जेंडर आधारित योजना है। इस योजना का उद्देश्य पहचाने गए जिलों एवं ब्लॉकों में जनजातीय लड़कियों को 100 प्रतिशत नामांकन की सुविधा के माध्यम से विशेषतः नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तथा आदिवासी जनजातीय समूह की आबादी वाले क्षेत्रों में समान्य महिला जनसंख्या और जनजातीय महिलाओं के बीच शिक्षा के स्तर के अंतर को समाप्त करना तथा शिक्षा के अपेक्षित के परिवेश के सृजन द्वारा प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा छोड़ने की दर को कम करना है। यह योजना इस तथ्य को स्वीकार करती है कि जनजातीय लड़कियों की साक्षरता दर में सुधार आवश्यक है कि उन्हें

प्रभावी ढंग से सामाजिक-आर्थिक विकास में भाग लेने हेतु सक्षम बनाएगी।

इस योजना में 12 राज्यों और 1 संघ राज्य क्षेत्र के 53 पहचाने गए जिले शामिल हैं जहाँ अनुसूचित जनजाति की आबादी 25 प्रतिशत या उससे अधिक है तथा 2001 जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजात की महिलाओं की साक्षरता दर 35 प्रतिशत से या इसके भाग कम है। इसके अतिरिक्त उपरोक्त 54 जिलों के अलावा, अन्य जिलों में मोजूद जनजातीय ब्लॉक या खण्ड, जहा कि जनजातीय आबादी 25 प्रतिशत या उससे अधिक हो तथा जनजातीय महिलाओं की साक्षरता दर 2001 जनगणना या इसके भाग के कम हो, को भी शामिल है। यह योजना आदिवासी जनजातीय समूह क्षेत्रों को भी कवर करती है। तथा नक्सलावाद से प्रभावित को भी प्राथमिकता देती है। यह योजना राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के गैर-सरकारी संगठनों तथा स्वायत्ता समितियाँ द्वारा कार्यान्वित की जाती है।

आदिवासी आवासीय तथा विद्यालय शिक्षा सुविधा के साथ एक पूर्ण शैक्षिक परिसर स्थापित करने का भी प्रावधान है। अनुसूचित जनजाति की लड़कियों को बढ़ावा देने हेतु इस योजना में शिक्षण, प्रेरणा एवं आवधिक पुरस्कार देने का भी प्रावधान है। यह योजना निर्माण लागत प्रदान नहीं करती है। इसमें तय वित्तीय मानदंडों का प्रावधान है। योजना में 100 प्रतिशत नामांकन सुनिश्चित करने, शिक्षा छोड़ने की दर को कम करने, रोगनिरोधी एवं स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था करने तथा गैर-सरकारी संगठनों के कार्य निष्पादन की निगरानी आदि जैसे विभिन्न कार्यों हेतु जिला शिक्षा सहायक एजेंसी जो गैर सरकारी संगठन या गैर सरकारी संगठनों का संघ है, की स्थापना की भी परिकल्पना की गई है।

भारतीय जनजातीय सरकारी विपणन विकास संघ लिमिटेड–

जनजाति समुदायों को उनके लघु वनोपज और लघु वन उत्पाद के लिए विपणन सहायता और लाभकारी मूल्य प्रदान करने और उन्हें शोषक निजी व्यापारियों एवं बिचौलियों से बचाने के मुख्य उद्देश्य लिए भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ लि. (ट्राइफेड) की स्थापना 1987 में भारत सरकार द्वारा की गई। बहुराज्य सहकारी समिति अधिनियम, 1984 के अन्तर्गत कार्यरत यह एक राष्ट्रीय स्तर की सर्वोच्च सहाकारी संस्था है। इसकी प्राधिकृत शेयर पूंजी 100 करोड़ रुपये हैं और प्रदत्त पूंजी 99.98 करोड़ रुपये है। जिसमें भारत सरकार का योगदान 9975 करोड़ रुपये और बाकी 0.23 करोड़ रुपये का योगदान अन्य शेयरधारकों का है।

अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए प्रशिक्षण सस्थाएँ–

वंचित और सुविधाहीन परिवारों से जाने वाले अनुसूचित जनजाति के छात्रों को सामाजिक और आर्थिक रूप से लाभप्रद पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में मुश्किल होती है। अनुसूचित जनजाति के उम्मीद्वारों के लिए एक से अधिक स्तरों का खेल के मैदानों को बढ़ावा देने और उन्हें प्रतियोगी परिक्षाओं में सफल होने के बेहतर मौके देने के लिए जनजातीय कार्य मंत्रालय वंचित अनुसूचित जनजाति के उम्मीद्वारों के लिए गुणवत्ता प्रशिक्षण संस्थानों योजनाओं का समर्थन करता है ताकि वे सफलतापूर्वक नौकरियों, व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के लिए प्रतिस्पर्धा परीरक्षाओं में प्रवेश के सक्षम बन सके।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे सिविल सेवाएं/राज्य सिविल सेवाएं/ यू.पी.एस.सी. द्वारा ली जाने वाली अन्य परीक्षाएं जैसे सी.डी.एस., एन.डी.ए. आदि/व्यवसायिक पाठ्यक्रम जैसे चिकित्सा, इंजीनियरिंग व्यवसाय प्रशासन/ बैंकिंग/कर्मचारी चयन आयोग/रेलवे भर्ती बोर्ड/ बीमा कंपनियों आदि के लिए मुक्त कांचिंग दी जाती है। वर्ष 2007708 के दौनान योजना के वित्तीय मानदंडों को संशोधित किया गया है। यह योजना कांचिंग अवधि के लिए प्रत्येक अनुसूचित जनजाति के छात्र को 1000 रुपये का मासिक

वजीफा और बाहरी प्रत्येक अनुसूचित जनजाति छात्र को 2000/रुपये का भोजन व्यवस्था/अस्थायी आवास शुल्क कवर करती है।

एनजीओ के प्रस्तावों को राज्य सरकार के माध्यम से भोजन आवश्यक है तथा राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के जनजातीय कल्याण/विभाग विभाग के प्रधान सचिव/ सचिव की अध्यक्षता में गठित 'स्वैच्छित प्रयासों में समर्थन हेतु राज्य संमित'' की सिफारिश है। केवल उस वित्तीय वर्ष के लिए राज्य समिति की सिफारिशें मान्य है जिसके लिए यह की गई है।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों हेतु मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति–

अनुसूचित जनजाति के छात्रों हेतु मान्यता प्राप्त संस्थानों से मान्य मैट्रिकोत्तर पाठ्यक्रम कर रहे अनुसूचित जनजाति के छात्रों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस योजना में व्यवसायिक, गैर-व्यवसायिक, तकनीकी, गैर तकनीकी पाठ्यक्रमों तथा दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा पत्राचार पाठ्यक्रम भी शामिल हैं, यह योजना राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों द्वारा कार्यान्वित की जाती है जो प्रतिबद्धदेयता योजना अवधि के अंतिम वर्ष में व्यय के बराबर होती है।

तदनुसार, दसवींयोजना अवधि आर्थात् 2006-2007 के अंतिम वर्ष में किया गया व्यय, राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों के लिए प्रतिबद्धेयता बन जाता है जिसे 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के प्रत्येक वर्ष में स्वयं वहन करना आवश्यक है। पूर्वोत्तर राज्य हेतु वर्ष 1997-98 प्रतिबद्धदेयता की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया है। यह योजना 1944-45 से चलाई जा रही है।

मौजूदा छात्रवृत्ति मूल्य में रखरखाव भत्ता, दृष्टिहीन छात्रों का पाठक प्रभार, अध्ययन दौरे का शुल्क, शोध-प्रबन्ध की टाइपिंग/मुद्रण शुल्क, पत्राचार पाठ्यक्रम के छात्रों हेतु पुस्तक भत्ता तथा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा अनिवार्य अप्रतिदेय शुल्क प्रभार शामिल है। छात्रावास में रहने वाले छात्रों हेतु पाठ्यक्रमों के अनुसार प्रति माह रखरखाव भत्ता 235 से 740 रुपये तथा दिवा छात्रों हेतु 140 से 330 रुपये प्रति माह है। योजना के अन्तर्गत 01.04, 2007 से दोनों छात्रवृत्तियों में माता-पिता/संरक्षकों की निर्धारित वार्षिक आय की उच्चतम सीमा 1,08,000 है। आय की उच्चतम सीमा को औद्योगिक श्रमिकों हेतु उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के साथ जोड़ दिया गया है।

भारतीय जनता पार्टी की नीति सरकार ने 26 मई 2016 को अपने कार्यकाल के तीन वर्ष पूरे किये हैं। आकांक्षाओं और अपेक्षाओं, विकास के दावों और विपक्ष से लगतार तकरार के बीच जिन मुद्दों पर सरकार को घेरा गया, उनमें एक प्रमुख मुद्दा यह भी रहा कि सरकार पिछली यानी यूपीए सरकारी योजनाओं की री-पैकेजिंग कर रही है।

यद्यपि प्रधानमंत्री नरेद्र मोदी ने कई मौकों पर इस बावत् विपक्ष पर पलटवार भी किया। उन्होंने कहा 'अगर कोई पुरानी और अच्छी योजना पहले से मौजूद है तो नई योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन में समय देने से अच्छा है कि पुरानी योजना को ही और बेहतर बनाकर सामने लागया जाए-विपक्ष और सरकार के बीच तकरार का यह दौर नया नहीं है। लेकिन इन दो-तीन वर्षों में योजनाओं के बूते जनता को क्या कुछ मिला, यह जानना भी बेहद जरूरी है, तो आइए एक नजर डालते हैं मोती सरकार द्वारा 3 वर्षों में लाई गई योजनाओं और उनसे जनता को मिलने वाले लाभ पर चर्चा हो जाए—

प्रधानमंत्री उज्जवला योजना

इसकी शुरुआत प्रधानमंत्री ने 1 मई 2016 को यूपी के बलिया से की। उज्जवला योजना के तहत 3 करोड़ - परिवार की महिलाओं को मुफ्त रसोई गैस कनेक्शन दिया। प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि आने वाले तीन वर्षों में 5 करोड़ गरीब परिवारों को जहाँ लकड़ी का चूल्हा जलता है, मुफ्त गैस कनेक्शन दिया जाएगा।

सांसद आदर्श ग्राम योजना

प्रधानमंत्री मोदी ने 11 अक्टूबर, 2014 को सांसद आदर्श ग्राम योजना की शुरुआत की। इस याजना के मुताबिक, हर सांसद को साल 2019 तक तीन गाँवों को विकसित करना होगा, इसकी थ्योरी यह है कि भारत के गांवों को भौतिक और संस्थागत बुनियादी ढांचे के साथ पूरी तरह विकसित किया जा सके। इस योजना के लिए कुछ दिशा-निर्देश भी हैं, जिन्हें ग्रामीण विकास विभाग ने तैयार किया है। प्रधानमंत्री ने 11 अक्टूबर, 2014 को इन दिशा निर्देशों को जारी किया और सभी सांसदों से अपील की कि वे 2016 तक अपने संसदीय क्षेत्र में एक मॉडल गाँव और 2019 तक दो और गाँव तैयार करें।

अटल पेंशन योजना

प्रधानमंत्री जन धन योजना की सफलता से उत्साहित देश की युवा पीढ़ी को युवा को ध्यान में रखकर तैयार की गई मोदी सरकार की यह एक और अहम योजना है। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने फरवरी 2015 के बजट भाषण में कहा था, 'दुखद है कि जब हमारी युवा पीढ़ी बूढ़ी होगी उसके पास भी कोई पेंशन नहीं होगी'। यह योजना इसी कमी को दूर करने के लक्ष्य के साथ शुरु की गईं इससे ये सुनिश्चित होगा कि किसी भी भारतीय नागरिक को बीमारी, दुर्घटना या वृद्धावस्था में अभाव की चिंता नहीं करनी पड़ेगी। इसे आदर्श बनाते हुए राष्ट्रीय पेंशन योजना के तौर पर अटल पेंशन योजना एक जून 2015 से प्रभावी हो गई। इस योजना का उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के लोगों को पेंशन फायदों के दायरे में लाना है। इससे उन्हें हर महीने न्यूनतम भारीदारी के साथ सामाजिक सुरक्षा का लाभ उठाने की अनुमति मिलेगी।

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ

प्रधानमंत्री ने 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत से इस योजना की शुरुआत की। 100 करोड़ रुपयें की शुरुआती राशि से साथ यह योजना देशभर के 100 जिलामें में शुरु की गई। हरियाणा में जहाँ बाल लिंगानुपात (सीएसआर) बेहद कम है, इस योजना का लक्ष्य लड़कियों की पढ़ाई के जरिए सामाजिक और वित्तीय तौर पर आत्मनिर्भर बनाता है। सरकार से इस नजरिए से महिलाओं की कल्याण सेवाओं के प्रति जागरुकता पैदा करने ओर निष्पादन क्षमता में सुधार को बढ़ावा मिलेगा।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना

गरीबी के खिलाफ लड़ाई और बेहतर रोजगार अवसर के लिए देश के लोगों खासकर युवाओं को कुशल बनाने के लिए इस योजना की शुरुआत की गई। 15 जुलाई 2015 को इसकी शुरुआत करते हुए पीएम ने कहा, 'अगर देश के लोगों की क्षमता को समुचित और बदलते समय की आवश्यकता के अनुसार कौशल का प्रशिक्षण दे कर निखारा जाता है तो भारत के पास दुनिया को 4 से 5 करोड़ कार्यबल उपलब्ध करवाने की क्षमता होगी।' सरकार इसके तहत देश के इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग सेंटर्स को बढ़ावा देती है, ताकि यवाओं को स्किलफुल बनाया जा सकें।

स्टैंड अप इंडिया स्कीम

इसकी शुरुआत 5 अप्रैल, 2016 को नोएडा के सेक्टर-62 में की गई। इस योजना के लिए प्रधानमंत्री ने एक वेब पोर्टल की शुरुआत की। इस स्कीम को लेकर भारत के उद्‌यमी वर्ग में खासा उत्साह है, इसका उद्देश्य नए उद्यमियों को स्थापित करने में मदद करना है। इससे देशभर में रोजगार बढ़ेगा, योजना के अन्तर्गत 10 लाख रुपये से 100 लाख रुपये तक की सीमा में ऋणों के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति और महिलाओं के बीच उद्‌यमशीलता को प्रोत्साहन दिया जाएगा। 10 हजार करोड़ रुपये की शुरुआती धनराशि के साथ भारतीय लघु

उद्योग विकास बैंक (सिडबी) के माध्यम से फिर से वित्त सुविधा। एनसीजीटीसी के माध्यम से लान गारंटी के लिए 5000 करोड़ रुपये के कोष का निर्माण।

सुकन्या समृद्धि योजना

इस योजना की शुरुआत पीएम मोदी ने 22 जनवरी 2015 को की। यह असल में 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' योजना को ही विस्तार है, जिसका मकसद देश में बेटियों के लिए सकारात्मक माहौल तैयार करना है। इसमें बेटी के नाम से बैंक खाता खोलने पर सबसे अधिक 9.2 फीसदी का ब्याज दर मिलता है। इसमें इनकम टैक्स में छूट मिलती है। इस खाते की मैच्योरिटी खाता खोलने की तारीख से 21 साल या फिर बेटी की शादी की तारीख जो पहले आ जाए होती है। इसमें शुरुआती जमा राशि 1000 रुपये है, जबकि अधिकतम 1.5 लाख रुपये तक जमा किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना

यह सरकार के सहयोग से चलने वाली जीवन बीमा योजना है। इसमें 18 साल से 50 साल तक के भारतीय नागरिक को 2 लाख रुपये का बीमा कवर सिर्फ 330 रुपये के सलाना प्रीमियम पर उपलब्ध है। इसकी शुरुआत प्रधानमंत्री मोदी ने 9 मई 2015 को की थी।

प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

इसकी शुरुआत भी 9 मई 2015 को ही की गई थी। इसमें 18 से 70 साल की उम्र के नागरिक की दुर्घटनावश मृत्यु या पूर्ण विकलांगता की स्थिति में 2 लाख का कवर दिया जाता है। आंशिक विकलांगता की स्थिति में 1 लाख बीमा कवर है।

किसान विकास पत्र

यह एक सर्टिफिकेट योजना है, जो पहली बार 1988 में लॉन्च की गई थी, नई सरकार में से 2014 में री-लॉन्च किया है। इसमें 1 हजार, 5 हजार, 10 हजार और 50 हजार की राशि को 100 महीनों में दोगुना करने का प्रावधान है। इसमें किसी एक व्यक्ति या ज्वाइंट नाम पर भी सर्टिफिकेट जारी किया जाता है, जिसका कर्ज लेने के क्रम में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे वित्त मंत्री अरुण जेटली ने 18 नवंबर 2014 को लॉन्च किया।

कृषि बीमा योजना

इसके तहत किसान अपनी फसल का बीमा करवा सकते हैं। यदि मौसम के प्रकोप से या किसी अन्य कारण से फसल को नुकसान पहुँचता है तो यह योजना किसानों की मदद करती है।

प्रधानमंत्री ग्राम सिंचाई योजना

मोदी सरकार खुद को किसानों की सरकार बताती रही है। इसी क्रम में गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने यह सिंचाई योजना लाँच की, इसके तहत देश की सभी कृषि योग्य भूमि को सिंचित करने का लक्ष्य है।

इंद्रधनुष

इस योजना का उद्देश्य बच्चों में रोग-प्रतिरक्षण की प्रक्रिया को तेज गति देना है। इसमें 2020 तक बच्चों को सात बीमारियों—डिप्थीरिया, काली खांसी, टिटनेस, पोलियो, टीबी, खसरा और हेपेटाइटिस-बी से लड़ने के लिए वैक्सनेशन की व्यवस्था की गई है। इसे 25 दिसम्बर 2014 को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने लॉन्च किया।

दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना

भारत के गांवों को अबाध बिजली आपूर्ति लक्ष्य करते हुए इस योजना की शुरुआत की गई है। सरकार गाँवों तक 24×7 बिजली पहुँचाने के लिए इस योजना के तहत 75 हजार 600 करोड़ रुपये खर्चे करने वाली

है। यह योजना राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के रिप्लेसमेंट के तौर पर लाई गई।

निष्कर्ष—यह कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग के लिए सरकार द्वारा चलाई जा रही जनकल्याणकारी योजनाओं का समय-समय पर समीक्षा होनी चाहिए साथ ही आवश्यकता अनुसार उन योजनाओं में आवश्यक सुधार होना चाहिए जिससे, लोगों, आदिम जनजातियों के कल्याण के लिए चलाई जा रही योजनाओं को लाभ उन्हें आसानी से मिल सके।

संन्दर्भ ग्रन्थ–

1. डॉ. शिवकुमार तिवारी : भारत की जनजातियाँ, नार्दर्न बुक सेंटर, नई दिल्ली-1992
2. डॉ. शादाब अहमद सिद्दीकी : मध्य प्रदेश सम्पूर्ण अध्ययन, उपकार प्रकाशन, आगरा-2
3. दैनिक भास्कर, रीवा, 27 मई 2014
4. दैनिक भास्कर, रीवा 09 नवम्बर 2016
5. दैनिक जागरण रीवा 09 नवम्बर 2016
6. कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास को समर्पित अक्टूबर 2016
7. योजना ग्रामीण विकास को समर्पित नवम्बर 2017

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

रीवा के शासकीय एवं अशासकीय अभियांत्रिकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन

❑ डॉ. एस.पी. सिंह*
❑ रीतू शर्मा**

शोध सारांश

मेरे द्वारा अनवरत प्रयास और कड़ी मेहनत से रीवा के शासकीय और अशासकीय अभियांत्रिकीय महाविद्यालय के पुस्तकालय सेवाओं के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् कई सुधारात्मक आँकड़े प्राप्त हुये जिसके आधार पर मैं कह सकती हूँ कि रीवा में स्थित शासकीय और अशासकीय अभियांत्रिकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालय सेवाओं के कई क्षेत्र ऐसे हैं जिसमें सुधार की आवश्यकता है और उनमें सुधार कर हम पुस्तकालय सेवा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं चाहे वह क्षेत्र पुस्तकालयों में कर्मचारीयों की कमी हो, अध्ययन कक्ष का जर्जर होना हो, आप के स्त्रोत हो। उपरोक्त समस्त क्षेत्रों में सबसे प्रमुख बात है पुस्तकालयों में कर्मचारियों की बेहद कमी का होना जिससे हमारी पुस्तकालय सेवायें अनवरत रूप से प्रभावित हैं। मैं सरकार से अपने शोध-पत्र के माध्यम से अनुरोध करती हूँ कि डॉ. शासन मध्यप्रदेश की समस्त शासकीय और अशासकीय पुस्तकालयों के मूलभूत विकास हेतु तथा कर्मचारियों के बरसों से रिक्त पड़े पदों को भरने हेतु अवश्याम्भावी कदम तत्काल उठाये, उससे पहले कि पुस्तकालय अपना ही अस्तित्व खो दें।

समाज के सर्वोन्मुखी विकास में पुस्तकालयों का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। पुस्तकालय विश्व के महानतम विचारों पुस्तकों में ही संकलित होते है।

इसलिए पुस्तक को ईश्वर की महानतम कृति कहा जाता है। पुस्तकालय ही एक ऐसा स्थान है जहाँ गहन ान से परिपूर्ण पुस्तकें व्यवस्थित रूप से पाठकों के उपयोग के लिए सही जाती है इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व के विस्तार में पुस्तकालय का योगदान अनुपम है। अतः पुस्तकालय को एक शिक्षक भी कहा जाता है। ग्रन्थालय विद्या प्रदान करने वाला अथाह सागर है अतः आधुनिक युग में पुस्तकालय की भूमिका निम्नलिखित क्षेत्रों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

सूचना के प्रसारण में भूमिका

सूचना का लक्ष्य सामाजिक विकास एवं विभिन्न सामाजिक गतिविधियों को बढ़ावा देना है। शोधकर्त्ता, अध्यापक, छात्र, व्यवसायी, कर्मचारी, उद्यमी, किसान

* H.O.D. (LIB. INFO-Sel) Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)
** Research Scholor, Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

सभी अपने संबंधित क्षेत्र की नवीनतम सूचना प्राप्त करके अपने पेशे में कुशलता प्राप्त करना चाहते हैं, पुस्तकालय समाज की इस सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

शैक्षणिक संस्थान में पुस्तकालय की भूमिका

औपचारिक शिक्षा के दौरान मनुष्य किसी विशेष पाठ्यक्रम के आधार पर किसी विशेष स्तर की शिक्षा प्राप्त करता है। यह शिक्षा शिक्षण संस्थानों की स्थापना, नये पाठ्यक्रमों का प्रादुर्भाव, शिक्षा का असीमित विस्तार, शिक्षण पद्धति में नये प्रयोग ज्ञान का विस्फोट पुस्तकों की बढ़ती संख्या, ज्ञान का Non-Block Material (जैसे वीडियो टेप, माईक्रो फिल्म आदि) में आगमन आदि कुछ ऐसे तत्व है जिनके कारण औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में पुस्तकालयों का महत्त्व और भी बढ़ गया है। आज पुस्तकालय हर प्रकार के शिक्षण संस्थानों का एक अपरिहार्य अंग बन चुका है। शिक्षाशास्त्री तथा विज्ञान इस बात से सहमत है कि ''किसी को कितनी उत्तम शिक्षा मिलती है इसका पता इससे नहीं लगाया जा सकता है कि उसे पुस्तकालय का उपयोग करना आता है या नहीं।

शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के बाद तो पुस्तकालय के महत्त्व में और अधिक वृद्धि हो चुकी है। औपचारिक शिक्षा पहले शिक्षकों के अभिभाषण पर आधारित थी। शिक्षण भाषण देते थे, तथा छात्र उनको सुनकर कुछ याद करने का प्रयास करते थे। इस प्रकार शिक्षा एक मुखी थी किन्तु वर्तमान शिक्षक छात्रों को पाठ्य की मूलभूत प्रकृति तथा मूलभूत विशिष्टताओं से अवगत कराकर उन्हें स्वयं पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। शिक्षा और सूचना दिलाने में पुस्तकालयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आज सूचना का उत्पादन इतनी तीव्र गति से हो रहा है, जिसकी केवल कल्पना की जा सकती है, जीवन का प्रत्येक क्षेत्र सूचना के समुद्र में डुबकियाँ ले रहा हैं।

इतनी अधिक गति से इतनी अधिक सूचना आने पर परिणाम हुआ है, कि मनुष्य जितना कुछ जानता जा रहा है उससे भी अधिक जानने को बचा रहा जाता है सूचना की इस विस्फोट को नियंत्रित रखकर इससे लाभ नहीं उठाया जा सकता है, इसलिए यह आवश्यक है कि सूचना को नियंत्रित कर उनका विश्लेषण कर उन्हें विभिन्न वर्गीकृत विधियों में रखकर उनकी पुर्नप्राप्ति की जाये यह कार्य केवल पुस्तकालय स्थान बना चुका है। मानव गतिविधियों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रवेश हो चुका है। पुस्तकालय भी समाज के इस आधुनिकीकरण के साथ स्वयं को आधुनिक बना रहे हैं तथा कम्प्यूटर तथा अन्य नवीन उपकरणों एवं तकनीकी को अपनाते हैं।

महाविद्यालय पुस्तकालय का स्वरूप

महाविद्यालय के शैक्षणिक कार्यों के क्रियान्यवन हेतु स्थापित पुस्तकालय महाविद्यालय पुस्ताकलय कहलाते है। ये अपनी विविध सेवाओं के माध्यम से महाविद्यालय स्तर पर प्रदान की जाने वाली औपचारिक नियमित शिक्षा को सर्वांगीण बनाते हैं। महाविद्यालय उच्च शिक्षा का प्रवेश द्वार है। विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन यही से प्रारम्भ होता है। अध्ययन को व्यापक तुलनात्मक औ प्रायोगिक रूप देने के लिए कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त स्वाध्याय करना आवश्यक है। छात्रों के स्वाध्याय को सरल बनाते हुए महाविद्यालय स्तर पर पुस्तकालय की व्यवस्था की जाती है। विभिन्न अध्यापनीय विषयों की मौलिक बातों का निर्देशन कक्षा से प्राप्त कर तुलनात्मक अध्ययन के लिए शिक्षक छात्रों को पुस्तकालय जाने की सलाह देते है अतः उच्च शिक्षा में इनका महत्त्व होता है।

शासकीय और अशासकीय अभियांत्रिकीय की पुस्तकालय सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन और तथ्य संकल्प हेतु शोधकर्त्ता में अवलोकन की चेतना का होना आवश्यक है। यद्यपि यह सही है कि तथ्यों के अन्तर्गत सूचना दाताओं से विभिन्न प्रविधियों की सहायता से तथ्यों के अन्तर्गत सूचना दाताओं से विभिन्न प्रविधियों से प्राप्त सभी प्रकार की सूचनायें आती हैं। तथ्यों में अवलोकन योग्य बातों को ही रखते हैं। तथा लिखनीय हो इस शोध के लिए तथ्यों का

संकलन प्रश्नावली एवं साक्षात्कार प्रविधि के द्वारा किया गया। अन्त में तथ्यों का सारणीयन कर तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान किया जाता है। सारणीयन में परिणात्मक दोनों के तथ्यों का संख्यात्मक रूप से प्रकट किया जाता है। विश्लेषण प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद इन्हीं तथ्यों के माध्यम से निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया जाता है।

रीवा इजीनियरिंग कॉलेज में 1000 संग्रह कक्ष हैं तथा 5500 वर्ग फिट लम्बाई एवं 100 फिट चौड़ाई जब कि जवाहर लाल नेहरू नगर रीवा में 1800 संग्रह कक्ष तथा 20 एकड़ भूमि में फैला है तथा दोनों प्रकार के कॉलेजों के पुस्तकालय का अध्ययन कक्ष पुस्तकालय भवन के पास लगा हुआ है। शासकीय कॉलेज का अनुदान राज्य सरकार से मिलता है जबकि अशासकीय कॉलेज के आय के स्रोत स्व-निर्मित हैं। दोनों कॉलेजों के पुस्तकालय स्वरूप स्वचलित हैं तथा साफ्टवेयर क्रमशः शिक्षा और दीक्षा अपडेट हैं। जिसका संस्करण 2000 मॉडल है। शासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय में 3000 पुस्तक पत्र, पत्रि ई-500, जर्नल ई.-452 तथा पुस्तक सी.डी. 3500 हो जब कि अशा.-महाविद्यालय में 50,000 पुस्तक पत्र, 1500-पत्रि ई 1450-जर्नल ई. पुस्तक सी.डी.-5500 है। दोनों कॉलेजों में पुस्तकों को व्यवस्थित करने हेतु डेवी डेसिमल व लीफिकेशन पद्धति का उपयोग होता है तथा व्यवस्थापन हेतु AAcr-I सूचीकरण का उपयोग होता है। दोनों में पुस्तकालय में सन्दर्भ सेवा, फोटोग्राफी सेवा तथा परिसंचरण सेवा है। दोनों कॉलेजों में स्टाफ की बहुत कमी है।

शासकीय तथा अशासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय के पुस्तकालय के सन्दर्भ में वहाँ के पाठकों एवं प्राध्यापकों एवं पुस्तकाध्यक्ष में सुझाव—

- पुस्तकालय से संबंधित कर्मचारी (स्टॉफ) होना चाहिए।
- कम्प्यूटर प्रोग्रामर का होना आवश्यक है।
- डिजीटल लाईब्रेरी को संचालित करने के लिए समस्य कर्मचारियों को प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
- पुस्तकालय कर्मचारियों को पाठकों के प्रति व्यहवार अच्छा रखना चाहिए।
- लघु शोध अध्ययन के आधार पर सुझाव
- पुस्तकालय भवन क्रियात्मक होना चाहिए उनमें सभी विभागों के पाठकों को बैठने और अध्ययन करने के पर्याप्त स्थान होना आवश्यक है। वर्तमान में कम्प्यूटर का अनुप्रयोग भी होने लगा है। अतः उसके लिए अलग से एक कक्ष की व्यवस्था होनी चाहिए। अन्य वे समस्त सुविधाएँ होनी चाहिए जिससे पाठक पुस्तकालय की ओर आकर्षित होकर आए।
- शासकीय तथा अशासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय के पुस्तकालय में कर्मचारियों की संख्या अधिक होनी चाहिए उन्हें शिक्षित होना चाहिए तथा उन्हें समय-समय पर प्रशिखण देना चाहिए। जिससे की वह पाठकों को संन्दर्भ सेवा आसानी से दे सकें।
- शासकीय तथा अशासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय के पुस्तकालय हेतु वार्षिक प्रतिवेदन के आधार पर ही अनुमानित बजट भावीं, योजनाओं का निर्माण तथा क्रियान्वयन निर्भर करता है। यह योग्य ग्रन्थालय कर्मचारी की विशेषता तथा कार्य के प्रति रुचि प्रकट करता है। अतः वार्षिक प्रतिवेदन की प्रस्तुत आवश्यक रूपसे की जानी चाहिए।
- शासकीय तथा अशासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय में एक सशक्त ग्रंथालय समिति का योगदान ग्रन्थालय विकास में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकें।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

प्रेमचंद के उपन्यासों का अनुशीलन

❑ डॉ. आशुतोष कुमार द्विवेदी*
❑ अभिषेक कुमार मिश्र**

प्रस्तावना :–

व्यक्तियों के उस समूह का नाम 'समाज' है जो विशिष्ट नियमों व बंधनों में बंधा होता है। प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे से किसी न किसी रूप में संबद्ध है। व्यक्तियों के बिना समाज का अस्तित्व नहीं और समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व नहीं। इसी 'समाज' का एक अंग है साहित्यकार जो उसके अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और प्रतिक्रियाशील होता है। तद्हेतु समाज की गतिविधियों, प्रवृत्तियों की गहरी छाप साहित्यकार के मानसपटल पर पड़ती है और वह उभरकर आती है उसके साहित्य में, इसलिए ही साहित्यकार को समाज का मन और मस्तिष्क कहा जाता है और साहित्य को समाज का दर्पण, क्योंकि समाज का यथावत् चित्र हमें उसमें मिलता है। प्रेमचंद ने समाज के यथार्थ का चित्रण करते हुए ऐसे सुंदर और सत्य आदर्श प्रस्तुत किए हैं, जो उद्धार व परिष्कार के लिए कल्याण रूप हैं। प्रेमचंद ने समाज के सित और असित दोनों ही रूपों का विशद चित्रण किया है। साथ ही वह अपने काल्पनिक आदर्श समाज का भी ब्यौरा देते गए हैं।

उनके उपन्यासों एवं कहानियों का कथानक चाहे पौराणिक हो या ऐतिहासिक या सामाजिक लेकिन उन्होंने किसी न किसी रूप में समसामयिक समाज की समस्याओं, शोषण, उत्पीड़न और कुरीतियों का ही विस्तार से चित्रण किया है। साथ ही समाज के मूल्यों, संस्कारों व चिंतन दर्शन का भी पूर्ण चित्रण है। अपने प्रत्येक ग्रन्थ द्वारा लेखक ने यही आदर्श प्रस्तुत किया है कि व्यष्टि से समष्टि अधिक महत्वपूर्ण है, व्यक्ति को समाज व समूह के समक्ष अपने हितों का, स्वार्थों का त्याग कर देना चाहिए। व्यक्ति की महानता समाज के प्रति ऐसे त्यागमय दृष्टिकोण से ही आंकी जा सकती है। अपनी इसी भावधारा को उन्होंने समाज को ऐसा अनंत उदधि बताया है जिसका विभिन्न व्यक्तियों, उनकी मान्यताओं, विश्वासों, मूल्यों, सहजता और असंगतियों रूपी नाना बूंदों के मेल से निर्माण हुआ है। व्यक्ति और समाज एक–दूसरे से उसी प्रकार संबद्ध है जैसे जीव और आत्मा। हर क्षण की सार्थकता है–अपना तुच्छ अस्तित्व समुद्र रूपी आत्मा के विराट् रूप में विलय कर देने में। जो बूंद समुद्र से विलग हो, समुद्र जल से ऊपर उठ, अहंकारवश बुलबुले के समाज फूलकर अपना अस्तित्व पृथक दिखाना चाहती है, वह क्षणभर में ही फूटकर समाप्त हो जाती है। मृत्यु से पहले वह भी अनुभव द्वारा इसी निर्णय पर आता है

---

* प्रोफेसर हिन्दी), शासकीय कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए., हिन्दी, नेट, शासकीय कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

कि 'व्यक्ति व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो। मैं अकेला भी हूँ, पर बहुजन के साथ में हूँ, दुख–सुख, शांति–अशांति आदि व्यक्तिगत अनुभव है, पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के हैं। अतएव हमें यह मानना चाहिए भले ही व्यक्ति अनेक हैं किंतु इनसे निर्मित समाज एक है। सूर्य, चंद्रमा, धरती, ये सब एक हैं, भले ही अनेक तत्त्वों से इनका निर्माण हुआ है।

व्यष्टि और समष्टि की समरसता, समाज के संतुलन और सुरूपता के लिए परमावश्यक है। व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं, एक–दूसरे का आधार हैं। समाज को महत्त्व देने से लेखक का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि व्यक्ति अमहत्वपूर्ण है। वास्तव में समाज व्यक्ति रूपी इकाई पर ही आधारित है– जैसे बूंद–बूंद मिलकर सागर की निर्मात्री बनती हैं। अतः बूंद और व्यक्ति महत्वपूर्ण है, सागर और समाज के अस्तित्व के लिए। प्रत्येक व्यक्ति की महत्ता है प्रत्येक व्यक्ति समान है। तभी तो प्रेमचंद जी कहते हैं–'आदर्श का यदि महत्व है तो सबके लिए उसका मूल्य समान हो, यह क्योंकर संभव नहीं? बड़ी बूंद हो या छोटी बूंद हो, नन्हीं सी बूंद क्यों न हो, यह छोटाई–बड़ाई नैतिक मापदंड के लिए कोई मूल्य नहीं रखती।'

लेखक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में सत्य के प्रति आस्था है, निष्ठा है और इस निष्ठा के आधार पर ही वह नूतन मानवीय आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने का सामर्थ्य रखता है। 'वह मात्र यही देखता है कि बूंद में, प्रत्येक अणु में, सत्य के लिए कितनी निष्ठा है। प्रत्येक अणु इस निष्ठा को अपनी क्रियाशक्ति से किस हद तक विकसित कर नया आदर्श उपस्थित करने की क्षमता रखता है।' सामाजिक जीवन, उसकी उन्नति, उसमें नवीन परिवर्तन तभी संभव हैं, जब व्यक्ति आस्थायुक्त हो। वह समाज को जोर–जबरदस्ती से नहीं वरन् आस्था और निष्ठा से बदल देने में विश्वास रखता है और वह आस्था तभी जागेगी जब मानव दूसरे के सुख–दुख में अपना सुख–दुख माने। 'मनुष्य का आत्मविश्वास जगाना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख–दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है। विचारों के भेद से स्वस्थ द्वंद्व होता है और उसके उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख–दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे जैसे बूंद जुड़ी रहती है लहरों से लहरें।'

विषम समस्या और सौत के माध्यम से लेखक का उद्देश्य है व्यष्टिपरक चेतना में समष्टिपरक चेतना को विकसित करना, व्यक्ति का आत्मविश्वास जगाना, जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करना। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति, दूसरे को गतल बताता है, अपनी गलतियों को ढांपने के लिए जिन्हें वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि 'अपनी है'। अनेक प्रयत्न करता है। झगड़ा ही इसी बात का है कि हर व्यक्ति अपने को सही समझता है। इसी से शनैः शनैः आतंक फैलता है। यह स्थिति लेखक की दृष्टि में अप्राकृतिक है। इसलिए लेखक का संक्षेप है कि प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ सुख–दुख में उसी प्रकार एकात्मकता का अनुभव हो जैसे हर परिस्थिति में बूंद से बूंद जुड़ी होती है।

प्रेमचंदजी भारत में जाति, धर्म आदि के रूप में फैली अनेकता में एकता ला देना चाहते हैं, 'यह कच्छ, मच्छ, वामन, नृसिंहादि देवों के पूजक प्राचीन आर्य जातियों को तथा यक्ष, किन्नर, नागद्रविड़, गंधर्व, कोल, भील, असुर, दैत्य, किरात आदि असंख्य जनजातियों में चली आती हुई परंपरागत वैमनस्यता

और भेदों को मिटाकर उन्हें अब एकमात्र भूमि की भावना से बांध दूंगा। हिमालय और समुद्र के बीच की यह महाभूमि अब विखंडित होकर रह नहीं पाएगी।'

प्रेमचंद जी वर्ण की भांति ही सर्वधर्म समन्वय में विश्वास रखते हैं और उसी का आदर्श समाज को देते हैं। मुसलमानों के प्रति प्रेम के स्थान पर शत्रुता का भाव इसलिए भारतीयों के मन में रहा क्योंकि उसका आगमन भारत में आक्रमणकारियों के रूप में हुआ लेकिन बाद में तो वे इस देश का प्रमुख अंग बन गए। यही मुसलमान जन्मे, तो यहीं हिंदू जन्मे। यह समान रूप से दोनों की मातृभूमि है। हमारे समाज में इस कौम को लेकर दो वर्ग हो गए। मुसलमानों और हिंदुओं की सांस्कृतिक धरोहर एक है अर्थात् उनका रहन–सहन, रूढ़ियाँ, मान्यताएँ, चिंतन, वेशभूषा आदि एक जैसी हैं। अतएव प्रेमचंद जी हिंदू और मुसलमान, दोनों से चाहते हैं कि वे एक–दूसरे को समझने का प्रयत्न करें और यह प्रयत्न ही मानवता की ओर पहला कदम होगा। इसी आधार पर दोनों धर्म, दोनों जाति एक हो सकते हैं।

प्रेमचंद जी की शान्ति नामक कहानी में नारी समाज का आदर्श झलकता है। यह आदर्श उनकी शान्ति नामक कहानी के निम्न अंश से स्पष्ट हो जाता है। जब मैं ससुराल आयी, तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने–ओढ़ने का सलीका, न बातचीत करने का ढंग। सिर उठा कर किसी से बात–चीत न कर सकती थी। आँखें अपने आप झपक जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूँघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी; पर उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य–कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा–पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्यों को इतना बुद्धिमान और सहृदय नहीं समझती थी। मैं दिन भर घर का कोई न कोई काम करती रहती और कोई काम न रहता तो चर्खे पर सूत कातती। अपनी बूढ़ी सास से थर–थर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुर जी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा– 'नमक जरा अंदाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचायी जा सकती थी। यह कांपना ही उस नारी का आदर्श है।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबू जी (पतिदेव) का पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची से ऊँची डिगरियाँ पायी थीं। वह मुझ पर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन–सहन और शिक्षा के सम्बन्ध मे उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत नीचे देख कर कदाचित् मन ही मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देख कर हमारे रस्म–रिवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठ कर बातचीत करने में जरा आनन्द न आता। सोने आते, तो कोई न कोई अँगरेजी पुस्तक साथ लाते, और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण दृष्टि से देख कर उत्तर देते– तुम्हें क्या बतलाऊँ यह आसकर वाइल्ड की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, मैं ऐसे विद्वान पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे किसी उज्ड के घर पड़ना था। बाबू जी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। बाबूजी का यही सामाजिक आदर्श है कि अनपढ़ी पत्नी को भी प्यार करते थे।

इसी तरह बड़े घर की बेटी नामक कहानी के निम्न अंश में आदर्श की स्थापना की गई है। बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन–धान्य संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं की कीर्ति–स्तंभ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि–पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक न एक आदमी हाँड़ी लिये उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों को भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी.ए. की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जबान था। भरा हुआ मुखड़ा, चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठ कर सबेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी.ए.– इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वैदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम–सबेरे के उनके कमरे से प्रायः खरल की सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनायी दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ता के वैद्यों से बड़ी लिखा–पढ़ी रहती थी।

इस गॉव के जमींदार ठाकुर जीतनसिंह थे, जिनकी बेगार के मारे गाँववालों का नाकों दम था। उस साल जब जिला मजिस्ट्रेट का दौरा हुआ और वह यहाँ के पुरातन चिह्नों की सैर करने के लिए पधारे, तो सुक्खू चौधरी ने दबी जबान से अपने गाँववालों की दुःख–कहानी उन्हें सुनायी। हाकिमों से वार्तालाप करने में उसे तनिक भी भय न होता था। सुक्खू चौधरी को खूब मालूम था कि जीतनसिंह से रार मचाना सिंह के मुँह में सिर देना है। किंतु जब गाँववालों कहते थे कि चौधरी तुम्हारी ऐसे–ऐसे हाकिमों से मिताई है और हम लोगों को रात–दिन रोते कटता है तो फिर तुम्हारी यह मित्रता किस दिन काम आवेगी। परोपकाराय सतां विभूतयः। तब सुक्खू का मिजाज आसमान पर चढ़ जाता था। घड़ी भर के लिए वह जीतनसिंह को भूल जाता था। मजिस्ट्रेट ने जीतनसिंह से इसका उत्तर माँगा। उधर झगड़ साहू ने चौधरी के इस साहसपूर्ण स्वामीद्रोह का रिपोर्ट जीतनसिंह को दी। ठाकुर साहब जल कर आग हो गये। अपने करिंदे से बकाया लगान की बही माँगी। संयोगवश चौधरी के जिम्मे इस साल का कुछ लगान बाकी था। कुछ तो पैदावार कम हुई, उस पर गंगाजली का ब्याह करना पड़ा। छोटी बहू नथुनी की रट लगाये हुए थी; वह बनवानी पड़ी। इन सब खर्चो ने हाथ बिल्कुल खाली कर दिया था। लगान के लिए कुछ अधिक चिंता नही थी। वह इस अभिमान में भूला हुआ था कि जिस जबान में हाकिमों को प्रसन्न करने की शक्ति है, क्या वह ठाकुर साहब की अपना लक्ष्य न बना सकेगी ? बूढ़े चौधरी इधर तो अपने गर्व में निश्चित थे और उधर उन पर बकाया लगान की नालिश ठुक गयी। सम्मन आ पहुँचा दूसरे दिन पेशी की तारीख पड़ गयी। चौधरी को अपने जादू चलान का अवसर न मिला। जिन लोगों के बढ़ावे में आ कर सुक्खू ने ठकुर से छेड़छाड़ की थी, उनका दर्शन मिलना दुर्लभ हो गया। ठाकुर साहब के सहने और प्यादे गाँव में चील की तरह मँडराने लगे। उनके भय से किसी

को चौधरी की परछाई काटने का साहस न होता था। कचहरी वहाँ से तीन मील पर थी। बरसात के दिन, रास्ते में ठौर–ठौर पानी, उमड़ी हुई नदियाँ, रास्ता कच्चा, बैलगाड़ी का निबाह नहीं, पैरों में बल नहीं, अतः अदमपैरवी में मुकदमे एकतरफा फैसला हो गया।

प्रेमचंद जी के संघर्ष की याद करना भी आवश्यक हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि महान् अक्तूबर क्रान्ति ने सारीदुनिया के मज़लूम और दुखियारे मानव समाज को एक अभूतपूर्व आस्था से मंडित कर दिया था। भारत में रूस के प्रति नई–नई जानकारियां बढ़ाने का आग्रह स्वाभाविक रूप से बहुत तेजी से बढ़ा। उस जमाने की साम्राज्यशाली शक्तियों ने उस महान देश के संबंध में जहां तक बना, जानकारियों के फैलने पर सेंसर लगाया। इसके बावजूद पहले महायुद्ध तक जर्जर सामंती श्रृखलाओं में जकड़े हुए इस गुलाम देश के प्रबुद्धजनों ने रूस के संबंध में बहुत कुछ जानने में सफलता पाई। रूस के साहित्य में पुश्किन, तुर्गनेव, दोस्तायवस्की, तोल्सतोय, चेख़व आदि का साहित्य जो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हमारे यहां आ चुका था, उसने हमें रूसी जनमानस की अंतरंग जानकारी दी। बाद की इस कड़ी में महान गोर्की का नाम भी जल्द ही जुड़ गया। इन सबमें भी तोल्सतोय भारतीय मानस के बहुत अधिक अंतरंग हो सकें। मेरी समझ में इसका एक ख़ास कारण यह था कि तोल्सतोय की सच्ची ईसाइयत हिंदू जनमानस में गहरी जड़े जमाए हुए वैष्णव संस्कारों के लिए तनिक भी पराई न थी। केवल वैष्णव ही नहीं बौद्ध, जैन और सूफी प्रभाव के मानस की मिली–जुली अध्यात्मवादी शक्तियों ने तोल्सतोय की ईसाइयत से प्रेरणा पाई। जनसाधारण के लिए तोल्सतोय की धार्मिकता और विशिष्ट जनों के लिए मनोवैज्ञानिक और समाजचेता कलाकार के रूप में तोल्सतोय ने अपनी गहरी छाप छोड़ी। तोल्सतोय का किस्सागोई का ढंग निराला था, सादा किंतु कलात्मक बारीकियों से भरा हुआ साफ–सुथरा और सोद्देश्य।

अपनी 'कलम का सिपाही : प्रेमचंद' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में अमृतराय लिखते हैं, ''तोल्स्तोय की नीतिकथाएं उन्होंने भी पढ़ी थीं, उनका असर अपने लिखने में लिखा था और गांधीजी के रंगमंच पर आने के पहले उनमें से तेईस कहानियों का भारतीय परिवेश के अनुसार रूपांतर करके 'प्रेम प्रभाकर' के नाम से छपा चुके थे। इनमें तोल्स्तोय की लगभग सभी प्रसिद्ध नीति–कथाएं आ गई थीं–मनुष्य का जीवन आधार क्या चीज है? ('दैट ह्वैयर बाई मेन लिव), एक चिनगारी घर को जला देती है (नेग्लेक्ट अ फायर ऐंड इट विल नाट बी क्वेंच्ड), प्रेम में परमेश्वर (ह्वेयर लव इज देयर गाड इज़ आलसो), एक आदमी को कितनी भूमि चाहिए? (हाउ मच लैंड इज़ ए मैन रिक्वायर?), अंडे के बराबर दाना (द ग्रेन वाज लाइफ ऐन एग), धर्मपुत्र (द गॉड सन) आदि।''

पुराणों की नीति कथाओं से धनपतराय का आदर्शवादी हिंदू मानस अपने सहज संस्कारवश प्रभावित था। आदर्शवादी तोल्सतोय के अनूठे कलात्मक व्यक्तित्व के प्रभाव में आकर वही संस्कारी हिंदू से इंसान बन गया। जीवन के यथार्थ के साथ अधिक गहराई से जुड़ गया। अपने एक लेख में लेनिन ने एक जगह जहां तोल्सतोय की नव समाज निर्माता की पैगंबरी को साफ शब्दों में नकारा है वहीं दूसरी ओर करोड़ों रूसी किसानों के विचारों और भावनाओं को मुखरित करने के लिए उनकी प्रशंसा भी की है और किसी हद तक यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के अचेतन मन पर तोल्सतोय का करीब–करीब ऐसा ही प्रभाव पड़ा था। 'पूस की रात', 'कफन', 'शतरंज के

खिलाड़ी', 'बड़े घर की बेटी', 'सवा सेर गेहूं' आदि कहानियां विभिन्न भारतीय जनवर्गो की भावनाओं और विचारों का उद्घाटन करने में तोल्सतोय साहित्य की प्रेरणा से ही प्रभावित हुए थे। यह एक मार्के की बात है कि प्रेमचंद का आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद क्रमशः आदर्शोन्मुक्त होकर विशुद्ध यथार्थ की ओर बढ़ता गया। 'गोदान' तक आते–आते प्रेमचंद तोल्सतोय से दूर तो नहीं हुए थे पर गोर्की के अधिक नजदीक आ चुके थे।

प्रेमचंद के कुछ प्रारम्भिक उपन्यास जो अभी तक अनुपलब्ध थे मंगलाचरण[1], शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। मंगलाचरण में उनके बाद प्रारम्भिक उपन्यास ''असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य'' ''हमरकुर्मा व हमसबाव'' ''प्रेमा'' तथा ''रुठोरानी'' संकलित है। इनमें से दो उपन्यास ''असरारे–मआबिद'' और रूठोरानी हिन्दी के लिए अज्ञात थे। प्रेमचंद ने इन्हें उर्दू में लिखा और ये दोनों ही उर्दू पत्रिकाओं में क्रमशः छपे।

प्रेमचंद के हिन्दी में लिखे प्रमुख दस उपन्यास हैं–

1. प्रतिज्ञा–जो 1905 के लगभग लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।[2],

2. वरदान–उर्दू में लिखे गये ''जलवए ईसार'' का हिन्दी रुपान्तर है। यह भी लगभग 1905 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

3. सेवासदन–यह ''बाजार–हुस्न'' नाम से 1914 में लिखे गये उर्दू उपन्यास का हिन्दी रुपान्तर है जो 1916 ई. में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

4. प्रेमाश्रय–यह लगभग 1922 ई0 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

5. निर्मला–यह 1923 ई0 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

6. रंगभूमि–यह लगभग 1925 ई0 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

7. कायाकल्प–यह 1928 ई0 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

8. गबन–यह 1931 ई. में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

9. कर्मभूमि–यह 1932 में लिखा गया एवं प्रकाशित हुआ।

10. गोदान–यह 1936 ई. में प्रकाशित हुआ एवं ''मंगलसूत्र'' नाम का अधूरा उपन्यास प्रेमचंद जी लिखकर हिन्दी साहित्याकाश से अनन्तआकाश में विलीन हो गये।

''प्रतिज्ञा'' उपन्यास प्रेमचंद जी द्वारा पहले ''प्रेमा'' के नाम से लिखा गया था एवं प्रकाशित भी हुआ था। बाद में किंचित् परिवर्तनों के साथ यह ''प्रतिज्ञा'' के रूप में प्रस्तुत हुआ। ''प्रतिज्ञा आदर्शोन्मुख एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेमचंद जी ने समाज में विधवा विवाह करने का जोर देते हैं। अमृतराय विधुर हैं एवं उन्हें अपनी साली से और साली (प्रेमा) को उससे प्रेम है। लेकिन अमृतराय एक समाज सुधारक का व्याख्यान सुनकर उनके इस आग्रह पर कि जितने भी विधुर युवक हैं क्या वह विधवा विवाह कर सकते हैं। अमृतराय इस व्याख्यान को सुन पूरी सभा में अकेले हाथ उठाकर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वह विधवा विवाह करेंगे। उनकी प्रतिज्ञा सुनकर प्रेमा कुछ तो दुखी होती है लेकिन उन पर श्रद्धा करती ही रहती है। समय पर प्रेमा का विवाह अमृतराय के मित्र दाननाथ के साथ हो जाता है। अमृतराय विधवाओं के लिए एक वनिताश्रम खोलते हैं जिसका विरोध दाननाथ उनके ससुर बद्री प्रसाद और साला कमला प्रसाद करते हैं।

प्रेमचंद ने अंग्रेजी द्वारा दिये गये तथा कथित राजनीतिक उदारता स्वायत्त शासन पर करारा व्यंग्य किया है। राजा महेन्द्र सिंह नगर पालिका के प्रधान होते हुए भी किस प्रकार कार्य करता

रहता था, आदि का सजीव चित्रण किया गया है। शासन नीति का बह्य कुछ और तथा व्यवहार में कुछ और था। मि0 क्लार्क को कमिश्नर का सुझाव तथा दंड के रुप में उसकी तरक्की इस कुटिल नीति का सजीव प्रमाण है। ''रंगभूमि'' में राजनीतिक जीवन का सुन्दर मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण मिलता है। पुरुषों से अधिक साहस और उत्साह दिखाने वाली स्त्रियों का समर क्षेत्र में उतरना हमारी राष्ट्रीय जागृति का पुनीति परिचय है। देश के सत्याग्रह संग्राम में महिला स्वयं से विकाओं के सबुत्साह को देखकर ही संभवतः प्रेमचंद ने सोफिया, इंदू और रानी जादूवी की अवतारणा की थी। ''रंगभूमि'' में यथार्थ चित्रण के साथ साथ विनय और सोफिया के प्रेम को आदर्शवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एवं श्रेय का प्रेम के ऊपर विजय दिखाया गया है।

''कायाकल्प'' मूलतः आध्यात्मिक कल्पनावाद प्रधान उपन्यास है। लेकिन इसमें तत्कालीन भारतीय समाज में हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदाय वाद को दूर करने हेतु प्रेमचंद ने हिन्दी–मुस्लिम एकता के प्रतीक स्वरुप ''ख्वाजा महमूद'' और ''यशोदा नन्दन'' जैसे चरित्रों का प्रणयन किया। यथार्थवाद का विषय समाज का वास्तविक मनोवैज्ञानिक चित्रण करना है, लेकिन समाजवादी यथार्थवाद समाज का चित्रण निश्चित उद्देश्यों को लेकर करता है। जिसमें वह समाज की निश्चित परिस्थितियों पर विशेष आग्रह रखता है। निम्नलिखित विषय साधारणतः समाजवादी यथार्थवाद के अनिवार्य अंग हैः–

1. पूँजीवादी बुर्जुआ संस्कृति का पतन और प्रत्येक प्रतिक्रयावादी शक्तियों की पराजय।
2. प्रतिक्रयावादी शक्तियों से संघर्ष करते हुए समाजवादी सामाजिक व्यवस्था की ओर अग्रसर होने वाली समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियां हैं।
3. समाजवादी यथार्थवाद आदर्शवादी होता है, यह एक विशेष दर्शन या समाज प्रणाली पर आधारित आदर्श का पक्षधर होता है यह किसी ''आदर्शमय'' व्यक्ति की रचना की जगह समाज के व्यवस्था के आदर्श को महत्व देता है।
4. समाजवादी यथार्थवाद आशावादी होता है, यह कुवित और विच्छिन्न समाज में भी मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक विकास का अवसर देखता है। दुराचारों और कुल्त्ति बुराइयों को देखकर भी यह समाज पर आस्था रखता है एवं निर्माण की आशा रखता है।
5. समाजवादी यथार्थवाद मानवतावाद का प्रबल पक्षधर होता है, और यह मानता है कि मनुष्य सभी बुराइयों या प्राकृतिक आपदाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।
6. समाजवादी यथार्थवाद व्दन्दात्मक भौतिकवाद से प्रभावित है।
7. समाजवादी यथार्थवाद व्यक्ति से अधिक समाज को महत्व देता है।

प्रेमचंद जी ने समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए अपने साहित्य का सृजन नहीं किया था, अपितु वह मानवतावादी होने के नाते सम्पूर्ण मानवता का भला चाहते थे, उनकी यह बलवती इच्छा अवश्य दृष्टिगोचर होती है कि समाज में किसी भी व्यक्ति और वर्ग का शोषण न हो। चूंकि तत्कालीन भारतीय समाज में कुछ वर्गो के व्दारा निरीह किसानों और सर्वहारा वर्ग के लोगों का शोषण खुले आम किया जा रहा था, जिसका सशक्त विरोध प्रेमचंद साहित्य के माध्यम से किया।

प्रेमचंद ने ग्रामीण और औद्योगिक अर्थव्यवस्था का चित्रण करते हुए उस आर्थिक वैषम्य को पूर्णतया उभार दिया है जो इन दोनों अर्थ व्यवस्थाओं में प्रचलित है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुछ थोड़े से जमींदार गरीब किसानों का खून चूस रहे हैं।

प्रेमचंद जी स्पष्ट करते है कि आर्थिक वैषम्य दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में है तथापि औद्योगिक अर्थव्यवस्था में पूंजीपति मजदूरों को अपने आर्थिक स्वार्थ की सिद्धि के साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता है।

संदर्भ स्रोत

1. मुंशी प्रेमचंद – रंगभूमि, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, 1965
2. मुंशी प्रेमचंद – वरदान, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965
3. मुंशी प्रेमचंद – निर्मला, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1965
4. मुंशी प्रेमचंद – प्रेमाश्रम, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1962
5. मुंशी प्रेमचंद –प्रतिज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965
6. मुंशी प्रेमचंद –गबन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
7. मुंशी प्रेमचंद – कर्मभूमि, वाणी प्रकाशन लखनऊ
8. मुंशी प्रेमचंद –गोदान, वाणी प्रकाशन लखनऊ
9. मुंशी प्रेमचंद – सेवासदन, वाणी प्रकाशन लखनऊ
10. मुंशी प्रेमचंद – कायाकल्प, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद
11. पदम सिंह शर्मा प्रेमचंद एवं उनकी साहित्य साधना अन्तर चन्द्र कपूर एण्ड संस दिल्ली
13. गणेशन एस.एन – हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन राजपाल एण्ड संस दिल्ली 1962
14. अमृत राय – प्रेमचंद कलम का सिपाही हंस प्रकाशन इलाहाबाद 1962

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

''शिवलीलार्णव महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन''

❑ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❑ प्राची गौतम**

शोध सारांश

सत्रहवीं शताब्दी का समय सांस्कृतिक पुनर्जागरण का समय था। इस समय देश में पुनर्जागृति के अनुरूप विपुल साहित्य का निर्माण विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत हुआ। संस्कृत में साहित्य की उल्लेखनीय समृद्धि और प्रगति हुयी। सर्वोच्च काव्यविधा के अन्तर्गत महाकाव्यों का भी अनल्प लेखन हुआ।

यह राजतन्त्र का युग था और हिन्दू–राजाओं के यहाँ संस्कृत के कवियों को आश्रम देने की परम्परा थी जैन कवि मेधा विजय को छोड़कर प्रस्तुत सभी कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था। उदयपुर के महाराणा राजसिंह के आश्रय में रहकर कवि रणछोड़भट्ट और सदाशिवनागर ने क्रमशः राजप्रशस्ति और राजरत्नाकर महाकाव्य की रचना की। हरिभूषणमहाकाव्य के कर्त्ता कवि गंगाराम को राजस्थान में प्रतापगढ़ स्टेट के राजा महारावत हरिसिंह का राज्याश्रय प्राप्त था। शिवलीलार्णव और गंगावतरण के रचयिता नीलकण्ठदीक्षित मदुरई के राजा तिरुमलैनायक के अमात्य थे। कविवर वेंकटकृष्ण ने चिदम्बरम् के ब्राह्मण राजा गोपालभूपाल के आश्रय में रहकर नटेशविजयमहाकाव्य का प्रणयन किया। जानकी परिणय के लेखक चक्रकवि को चोल, चेर और पाण्ड्य देश के राजाओं का सम्मान और सहयोग प्राप्त था। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत अन्य सभी कवि तंजोर के राजा रघुनाथनायक के आश्रित थे, जिनमें रघुनाथाभ्युदय की कवयित्री रामद्राम्बा का भी नाम आता है।

सत्रहवीं शताब्दी के कतिपय कवियों ने अपने आश्रयदाता के जीवनचरित को अपने महाकाव्य का मुख्य विषय बनाया है और कतिपय कवियों ने प्राचीन तथा पौराणिक विषयवस्तु का उपस्थापन किया है। जैनकवि मेघविजय ने तीर्थंकरों और स्वयुगीन जैनाचार्यों को मुख्य विषय बनाया है। महाकाव्यों के वर्गीय आकलन में पौराणिक विषयवस्तु के अन्तर्गत निम्नांकित महाकाव्य आते हैं–

1. रामचन्द्रोदयमहाकाव्य
2. जानकीपरिणयमहाकाव्य
3. रुक्मिणीकल्याणमहाकाव्य
4. गंगावतरणमहाकाव्य

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए., एम.फिल. (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

5. नटेशविजयमहाकाव्य
6. सप्संधानमहाकाव्य

नटेशविजयमहाकाव्य में शिवपरक आख्यानों की योजना है। सप्तसंधान महाकाव्य में पांच तीर्थंकरों तथा षष्टिशलाकापुरुषचरित में उल्लिखित राम और कृष्ण की कथा है। ज्ञातव्य है कि उन सातों चरितनायकों की कथा कवि ने जैनपुराणों से ली है। प्राचीन विषयवस्तु के तीन महाकाव्य हैं –

1. पतंजलिचरितमहाकाव्य
2. शंकराभ्युदयमहाकाव्य
3. शिवलीलार्णवमहाकाव्य

शिवलीलार्णव महाकाव्य का प्रारंभिक कथानक पौराणिक है और तत्पश्चात् संपूर्ण महाकावय में शिवलीला के चित्रणार्थ प्राचीन पाण्ड्यराजाओं की दीर्घ परंपरा को मुख्य आधार बनाया गया है। तत्कालीन पाण्ड्यराजाओं का वर्णन इसमें नहीं हुआ है। ऐतिहासिक महाकाव्यों के नाम है–

1. साहित्यरत्नाकरमहाकाव्य
2. रघुनाथाभ्युदयमहाकाव्य
3. राजप्रशस्तिमहाकाव्य
4. राजरत्नाकरमाहाकाव्य
5. हरिभूषणमहाकाव्य
6. देवानन्दमहाकाव्य
7. दिग्विजयमहाकाव्य

साहित्यरत्नाकर और रघुनाथाभ्युदय में तंजौर के राजा रघुनाथनायक का ऐतिहासिक जीवनवृत्त की काव्यात्मक योजना है। राजप्रशस्ति और राजरत्नाकर में मेवाड़ के प्राचीन महाराणाओं के जीवन की प्रमुख घटनाओं का ऐतिहासिक निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् महाराणा राजसिंह के ऐतिहासिक और प्रामाणिक जीवनचरित को प्रधान विषय बनाया गया है। हरिभूषणमहाकाव्य में प्रतापगढ़ स्टेट के राजाओं का काव्यात्मक इतिहास है। देवानन्दमहाकाव्य और दिग्विजयमहाकाव्य में सत्रहवहीं शताब्दी के प्रभाव जैनाचार्यों का धार्मिक जीवन का चित्रण जैनधर्म के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है। वर्गीय आकलन में हम महाकाव्यों को निम्नांकित रूप से विभाजित करके भी देख सकते हैं–

(क) राजस्थान के महाकाव्य
- (1) राजप्रशस्तिमहाकाव्य
- (2) राजरत्नाकरमहाकाव्य
- (3) हरिभूषणमहाकाव्य

(ख) दक्षिण के महाकाव्य
- (1) शिवलीलार्णवमहाकाव्य
- (2) गंगावतरणमहाकाव्य
- (3) पतंजलिचरितमहाकाव्य
- (4) साहित्यरत्नाकरमहाकाव्य
- (5) रुक्मिणीकल्याणमहाकाव्य
- (6) शंकराभ्युदयमहाकाव्य
- (7) नटेशविजयमहाकाव्य
- (8) जानकीपरिणयमहाकाव्य
- (9) रामचन्द्रोदयमहाकाव्य
- (10) रघुनाथाभ्युदयमहाकाव्य

(ग) जैन–महाकाव्य
- (1) सप्तसंधानमहाकाव्य
- (2) देवानन्दमहाकाव्य
- (3) दिग्विजयमहाकाव्य

शोधालेख से स्पष्ट है कि उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में इस समय अधिक महाकाव्य लिखे गये। साहित्यिक इतिहास के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस समय उत्तर भारत में महाकाव्य लेखन की अपेक्षा अन्य काव्यों और शास्त्रों के प्रणयन को अधिक महत्व मिल रहा था। प्रस्तुत महाकाव्यों और चरितकाव्यों आदि की श्रेणियों में बांटकर भी देखा जा सकता है।

इन महाकाव्यों की रचना में कवियों ने शास्त्रीय नियमों का अधिकांशतः पालन किया और

आवश्यकता पड़ने पर अपनी काव्ययोजना को शास्त्रीय नियमों से मुक्त भी रखा है। प्रायः सभी महाकाव्यों में काव्योत्कर्ष को महत्व मिला है। राजप्रशस्तिमहाकाव्य में काव्यात्मकता की अपेक्षा ऐतिहासकता पर अधिक बल है। सप्तसंधान महाकाव्य और देवानन्दमहाकाव्य में चमत्कार का अतिशय है। सप्संधान में सात महापुरुषों का जीवनचरित एक ही वचनावली में चित्रित किया गया है। श्लेष की अतिक्लिष्ट योजना में यहाँ महाकाव्यत्व के संपादक अनेक तत्वों की समुचित योजना नहीं हो पायी है। देवानन्दमहाकाव्य शिशुपालवध की समस्यापूर्ति के रूप में लिखा गया है। समस्यापूर्ति की इस अतिदीर्धता में कवि ने काव्यात्मक सौन्दर्य की यद्यपि पूर्ण रक्षा की है तथापि विषयवस्तु का पूर्णतः महाकाव्यानुरूप उपस्थापन नहीं हो सका है।

अन्य सभी महाकाव्यों में महाकाव्यत्व को प्रायः औचित्यपूर्ण योजना मिलती है। शिवलीलार्णव में नीलकण्ठ का कवित्व स्थान–स्थान पर ऋषित्व की कोटि में आ जाता है। अनेक महाकाव्यों में रसपरिपाक की चरम सीमा दृष्टगोचर होती है। कतिपय कवियों ने चित्रलंकारों की भी योजना की है और अधिकांश कवि रसोन्मुख अलंकारों की योजना से ध्वनिमयता को अधिक महत्व देते हैं। महाकाव्यानुरूप विशेष वर्णनों को रुक्मिणीकल्याण, रामचन्द्रोदय, साहित्यरत्नाकर आदि में अधिक विस्तार मिला है और पतंजलिचरित, जानकीपरिणय आदि में उनकी योजना संक्षिप्त है। कई महाकाव्यों में स्तुतियों का बाहुल्य पाया जाता है।

दक्षिण के कतिपय महाकाव्यों में शैवसिद्धान्त को अभिव्यक्ति दी गयी है और कतिपय महाकाव्यों पर वैष्णवधर्म का प्रभाव है। जैनमहाकाव्यों में जैनधर्म और जैनदर्शन को स्थान मिला है। अधिकांश महाकाव्यों में भक्तिभावना और अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुयी है। धर्म और उपासना के विविध अंगों का निरूपण इन महाकाव्यों में हुआ है। सामाजिक प्रवृत्तियों का भी सम्यक् चित्रण हुआ है, जिसके अन्तर्गत तत्कालीन राजनीति का कहीं तो यथार्थ चित्रण हुआ है और कहीं उसका उदात्तीकरण प्रस्तुत किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के महाकाव्यों में मानवीय जीवन का चित्रण कविता की सभ्यता और देशकाल की भव्यता में विराट् फलक पर सर्वांगीणता के साथ हुआ है।

यह ग्रन्थ शताब्दीक्रम से संस्कृत महाकाव्यों के सर्वेक्षण में सहयोगी है।

संदर्भ स्रोत

1. वाल्मीकीय रामायण
2. शिशुपालवध,
3. काव्यालंकार
4. काव्यादर्श
5. काव्यादर्श पर रंगाचार्य की टीका
6. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी – काव्यशास्त्र और काव्य
7. नलचरत्रनाटक की प्रस्तावना।
8. शिवलीलावर्ण महाकाव्य में टी.एस. कृप्पुस्वामी की भूमिका'
9. शिवलीलावर्ण महाकाव्य में टी.एस. कृप्पुस्वामी की भूमिका'
10. शिवलीलार्णव, 6/11
11. शिवलीलार्णव, 22/60

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

जया जादवानी के कथा साहित्य में स्त्री का संघर्ष

❑ डॉ. सरोज गोस्वामी*
❑ अभिशिखा नामदेव**

शोध सारांश

जिन्दगी को सही अर्थों में जीना एक बात है और उसकी बराबर बातें करते रहना अलग बात है, प्रतिभा गहन आस्था व संघर्ष से मिलकर ओजस्वी एवं स्फूर्त व्यक्तित्व से युक्त्, चरित्र का संलग्न होता है। जिसकी सहृदयता समूची मानवता को प्राप्त हुई। ऐसा जया में स्त्री की स्वाधीनता शोषण से मुक्ति की समस्या समाज के केन्द्र में और रचना गगन में जया ने स्त्री के संघर्ष की समस्या पर लगभग पूरा साहित्य लिखा है। नारी की खोई हुई गरिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास, स्त्री और पुरुष की समानता के लिए अपनी विशिष्ट मार्मिक शैली में स्त्री–हठ को पुरुष की इच्छा से बड़ा बनाकर इतिहास के अंतराल को पार कर दिया। स्त्री शोषण के कारणों को पहचान कर प्रेम को वासना से हटाकर नारी महत्व को स्थापित किया।

जैसे कि अधूरी कविता मुक्त नहीं रहती,
न अधूरा प्रेम, न अधूरा जीवन,
कितना कुछ छूट जाता है।
मॉग करते हुए भरे जाने की
तमाम उम्र बेसहारा
कागज के टुकड़े पर
अस्तित्व की तलाष के सफर में
मुक्ति उसके पूरेपन में भी नहीं है
एक पूरी नारी मॉग करती है।

आधुनिक साहित्य के नारी चरित्रों में शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बन के साथ–साथ नारी की अपने अस्तित्व के प्रति सजगता बढ़ी है और वह अपने अस्तित्व की कीमत पर परिवार को बचाने में विश्वास नहीं करती पर अस्मिता की यह ललक और स्वंतत्रता की चाह कई बार स्वच्छंन्दता और उच्चश्रृंखलता बनकर विकृति के रूप में सामने आ गई है। वे खुद के बारे में या तो नहीं सोचती या तो सबसे आखिरी में सोचतीं हैं। नगरीय महिलाए ज्यादा स्वतंत्र होती है, वे अपने कैरियर के प्रति ज्यादा सजग होती है, यही से बदलाव की हवा सबसे पहले शुरू हो जाती है, ग्रामीण महिलाओं का संसार अमूमन छोटा सा होता है।

* विभागाध्यक्ष (हिन्दी), शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.फिल. (हिन्दी), कमला कालेज के पास, पडरा, जिला-सीधी (म.प्र.)

समकालीन हिन्दी साहित्य में जया एक महत्वपूर्ण उपस्थिति है। 'अंदर के पानियों में कोई सपना कापता है'–आज की संवेदनशील, सतर्क–स्त्री के बीस बयान है, समाज में स्त्री की जगह तलासती स्त्री, नियति के ठिठके स्वरों की अस्फुट गूँजों में खत्म नहीं होती, बल्कि उसको वाजिव शब्दों के अर्थ में बदल देती है, कब्र में सोई हुई औरत का आदमी मनचाहा इस्तेमाल करता है औरत भी अपना स्तेमाल होने देती है आदमी को तकलीफ सिर्फ तभी होती है, जब वह अपनी कब्र से जाग जाती है, यह जागना ही स्त्री की असली मुक्ति है। इन बुरी तरह उलझे संबंधों को समझाने के लिए लेखिका जो परिवेश रचती हैं, वह इतना महत्वपूर्ण होता है कि भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों में जिस निर्मम, दमघोटू और संहारक परिवेश ने स्त्री के अस्तित्व को आकांत किया हुआ है, वह खुलकर पूरी वास्तविकता के साथ सामने आ जाता है।

पहाड़, जंगल, नदी इन शीर्षकों को बॅाटकर, जया स्त्री पुरूष जगत की आशाओं को व्यक्त करती हैं, इस प्रक्रिया में मनुष्य जीवन के राग–विराग, सम्पूर्ण आसक्ति के साथ अनासक्त होकर मुखरित होते हैं। यहॉ प्रेम के बहाने जीवन को समझने का उपक्रम भी मौजूद है, प्रेम की विसंगत, संगति में ही उसकी पूर्णता है। वहाँ कोई सतही वर्गीकरण काम नहीं आता और अंततः अनसुलझे रहस्यों में ही प्रेम की परिणिति सम्पूर्णता ग्रहण करती है। लेखिका जीवन के कठिन प्रसंग और जीवन के मार्मिक अर्थ को रेखाकिंत करने के लिए शास्त्र, विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान और साहित्य संदर्भो का रचनात्मक इस्तेमाल करती है।

'तत्वमसि' में ''सिद्धार्थ, मानसी–विक्रम के माध्यम से लेखिका जीवन के तत्सम यथार्थ को भले ही बौद्धिक विमर्श के रूप में रखती हैं, लेकिन यह संवाद उलझी हुई पहेली नहीं बनता, बल्कि व्यंजित होने से रह गए संबंधों के प्रश्नों को वाद विवाद की संरचना में उत्तर देने की कोशिश दर्शित होती है। यह अद्वितीय सहज लाक्षणिकता है, 'क्योंकि अविधा नहीं है जिन्दगी' मानने वाले इस उपन्यास के पात्र अपने हर्ष और विषाद दोनों को तार्किकता के साथ ग्रहण करते हैं।''[1]

''मैंने पाया इस बीच मेरी कई सहेलियों की शादी हो गई, वे सब सहज हैं। वे मान लेती हैं कि हॉ यही होता है मैं क्यों नहीं मान रहीं ?'' सारा वक्त मुझमें गुस्सा भरा रहता है, जिद, तड़प, बेचनी कहाँ जांऊ? क्या करूं, जितना ज्यादा पढ़ती हूँ, उतने ही जीवन के नये अर्थ निकलते हैं। उतनी ज्यादा बेचैन होती हूँ, घर के कामों से मुझे नफरत होने लगी है, मै अपने हाथ देखती, क्या यही काम करने के लिए बनें हैं? जीवन का कोई बड़ा उद्वेश्य इनसे पूरा नहीं होगा क्या ? कौन सा उद्वेश्य मैं नहीं जानती'' ।[2]

ऐसा नहीं है कि पुरूष जाति के प्रति यहॉ केवल घृणा है और स्त्री जिन्दगी के विदुशित पक्षों का ही प्रतिनिधित्व करती है, स्त्री जीवन का यहॉ सारा वृतान्त सार्थकता की खोज कराता है यह सिलसिला कई ऐसे प्रश्नों को जागता है।

''स्त्री संसार अपने आप में तिलिस्म है जिसके भीतर जाने और उसे पा लेने की होड़ तो है, पर प्राप्त करते ही विजेता दूसरे पक्ष को प्रतिपक्षी मानकर उसे कैद करने की जुगत भिड़ाने लगता है एक ढाचे में बंद होकर बिना प्रयास के कही अनकही कहते जाना– अलग बातें है बल्कि छोटे–छोटे अंतः सूत्र स्वंय कहानी बन जाते है, जीवन के रहस्यों को धीरे–धीरे गढ़ते हुए समस्याऍ एक संसार रचती है''[3] जीवन से बचकर रचना संभव नहीं होता शायद इसीलिए दूसरे देश काल में दो विरोधी स्त्रीयॉ भी एक साथ खड़ी नजर

आती है हमारा समय हमारी पीढ़ी कुछ गलत सिद्ध हो जाए, तुम लोगों में से कोई उठे और साड़ी–गली केचुली को उतार फेके, इस बात के लिए प्रसंसा की जानी चाहिए कि वह एक पुरानी से दिखती पीढ़ी के माध्यम से वह इस नाम को सामने रख सकी। पुरूष के लिए न जाने क्यों आज भी स्त्री से मदद लेना उसके पुरुषत्व पर चोट की तरह ही महसूस करता है।

भारतीय परिवारों और उनके संदर्भों में आधुनिक नारी की परिवर्तित भूमिका के बारे में जो बदलाव आया उसके लिए नारी की शिक्षा और चेतना ही नहीं बल्कि समाज के बदलते हुए मूल्य भी जिम्मेदार है, परिवार और समाज का पारम्परिक ढांचा टूट रहा है और आधुनिकीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। जिसके कारण नारी का पारम्परिक रूप विखडित होकर उसका कामकाजी व स्वतंत्र अस्तित्वपूर्ण रूप सामने आ रहा है। यह भी सत्य है कि पारिवारिक ढाँचे नारी व्यक्तित्व के आधार और स्वरूप परिवर्तित हो गए हैं, पर परिवार का केन्द्र बिन्दु नारी आज भी है और सदैव रहेगी।

जया ने नारियों की समस्याओं का उद्‌गम 'परिवार' को माना है नारियों की भावनाओं के साथ उन्हें विवेकहीन समझकर दैहिक मानसिक शोषण करता है पारिवारिक अषान्ति के चलते हुए, पुरूष–नारियों से मन से विलग रहता है और अवसर आने पर उनका त्याग करने में भी संकोच नहीं करता है, हमारे समाज में आज–कल बहुत बदलाव आ गया है, परंतु विधवाओं को देखने का नजरिया वहीं का वहीं है। आज भी विधवाओं को एक अलग नजर से देखा जाता है, उन्हें समाज से अलग समझा जाता है।

स्त्री अस्मिता का विन्दु स्त्रियों द्वारा अपनी छवि और अपना कार्य दोनों के निर्धारण संबंधी अपना निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है, नारी जाति आधी मानव जाति है, पुरूष जाति की जननी है, ऋषि, मुनि, महापुरूष, चिन्तक, वैज्ञानिक, शिक्षक, समाज–सुधारक सब की जननी नारी है, सब इसी की गोद में पले बढ़े, लेकिन धर्म, संस्कृतियों, सभ्यताओं, जातियों का इतिहास साक्षी है कि ईश्वर की इस महान कृति को इसी की कोख से पैदा होने वाले पुरूषों ने ही अपमानित किया, बहुत तुच्छ, बहुत नीच बनाया, इसके नारीत्व का शोषण किया, इसकी मर्यादा, गरिमा और नैतिक गौरव के साथ खिलवाड़ किया।

जया जी नारियों को सामाजिक, आर्थिक परम्परागत विचारधारा एवं नए मूल्यों–मान्यताओं के आधार पर आत्मनिर्भर देखना चाहती हैं।

संदर्भ–सूची

1. तत्वमसि–जया जादवानी पृष्ठ नं–2
2. तत्वमसि–जया जादवानी पृष्ठ नं–20
3. जया जादवानी स्त्री समीक्षा, दृष्टपात डाट काम से
4. जया जादवानी, अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृष्ठ–05
5. ये कथाएं सुनायी जाती रहेगी, हमारे बाद भी, जया जादवानी पृष्ठ–03
6. स्त्री संवेदना, समीक्षा, शोभा स्तोगी

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

दीनदयाल अंत्योदय योजना : महिला सशक्तीकरण

❑ डॉ. सुमन मिश्रा*
❑ डॉ. कृष्णा मिश्रा**

शोध सारांश

किसी भी देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए आवश्यक है कि उसके समाज में रहने वाले सभी लोगों को जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं लिंगगत भेदभाव से मुक्त रखते हुए सहभागिता निभाने का केवल संवैधानिक ही नहीं वास्तविक अवसर भी प्राप्त हो। जहाँ तक महिलाओं की स्थिति प्रश्न है निश्चय ही महिलाएँ समाज की रीढ़ है, आधार है और समाज के सर्वाङ्गीण विकास से ही राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि संभव है। समाज की प्रमुख धुरी महिलाएँ अपने दायित्व का सही निर्वहन तभी तक सकती है जब वे समर्थ हो और इसके लिए महिला सशक्तीकरण आवश्यक है।

किसी भी देश के निर्माण व विकास में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है, इस भूमिका का निर्वहन महिलाएँ तभी कर सकती है जब वे सशक्त और सक्षम हो। हमारे देश के लिए यह बात और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि हमारे देश की आधी आबादी महिलाओं की है। यद्यपि महिलाओं का सशक्तीकरण एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें एक पक्ष राजनीतिक सशक्तीकरण भी है और यह तभी सम्भव है जब उनकी राजनीति सहभागिता बढ़ेगी और वे निर्णय निर्माण प्रक्रिया से सहभागी बनेगी। सशक्तीकरण से आशय ऐसा वातावरण सृजित करने से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने जीवन, जीवित रहने तथा स्वयं को विकसित करने के बारे में स्वयं निर्णय ले सके। इस तरह कतिपय कार्यों को पूरा करने तथा कतिपय विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता अर्जित करना ही सशक्तीकरण है।

महिला सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो महिलाओं को भौतिक, बौद्धिक और मानव संसाधनों तक पहुँचने और उन पर नियंत्रण कायम करने में सक्षम बनाता है, जो पुरातन अवधारणाओं को चुनौती देने के साथ ही उन्हें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मुद्दों सहित समाज के सभी पहलुओं से संबंधित निर्णय प्रक्रिया मे भागीदारी

* एम.ए. शिक्षा शास्त्री, पी.एच.डी. लाइफ लर्निंग प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.)
** एम.ए. एम.फिल. पी–एच.डी. (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

प्रदान करता है।[1] इस महिला सशक्तीकरण के कुछ मानक तत्व है जो निम्नलिखित है–

1. महिलाओं की सकारात्मक छवि का निर्माण करना।

2. महिलाओं में आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमता का विकास करना।

3. महिलाओं के कानूनी ज्ञान का विकास करना।

4. सामाजिक आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से उनकी सहभागिता में वृद्धि हेतु प्रयास करना।

5. महिलाओं में आत्म सम्मान की भावना विकसित करना।

6. विकास प्रक्रिया में समान भागीदारी निश्चित करना।

7. निर्णय लेने की क्षमता को उन्नत करना।

8. सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना।

इस तरह स्पष्ट है कि महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया एक व्यापक प्रक्रिया है और यह महिला के सम्पूर्ण जीवन के सर्वाङ्गीण विकास व समाज में उनकी निर्णयात्मक भागीदारी की मानक और मापक है। महिला सशक्तीकरण के इस व्यापक कैनवास और अपने शोध कार्य की सीमा को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध आलेख में मैंने महिला सशक्तीकरण को महिलाओं के राजनीतिक सहभागिता के परिपेक्ष्य में रेखाकित करने की कोशिश है–वस्ताव में राजनीतिक सशक्तीकरण के सैद्धान्तिक रूप से कुछ मापक है[2] जो इस प्रकार है–1. सार्वभौमिक मताधिकार, 2. चुनाव लड़ने का अधिकार, 3. सत्ता प्रशासन एवं न्यायिक प्रणाली में भागीदारी का अधिकार।

लेकिन पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में व्यवहारिकता के धरातल पर कुछ मानक है जिनके आधार पर ही राजनीतिक सशक्तीकरण का आकलन किया जा सकता है–

- अपनी सोच और समझ तथा स्वयं के निर्णयानुसार मतदान का अधिकार, अर्थात् मतदान करते समय स्वयं महिला के निर्णय अपने पिता/पति/भाई आदि के निर्देश, जाति/धर्मगत प्राथमिकताओं से प्रभावित न हो।
- प्रत्येक स्तर के निकाय में विभिन्न पदों पर चुनाव लड़ने तथा चुनाव जीतने की प्राथमिकता की स्थिति।
- बहुदलीय प्रणाली में राजनीतिक दलों के स्वयं के संगठनों में महिलाओं की बराबरी के स्तर पर भागीदारी।
- बहुदलीय प्रणाली में विभिन्न स्तर के पदों के निर्वाचन में राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को उम्मीदवार बनाया जाना।
- मंत्रिमंडल में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत।
- सर्वोच्च पदों सरपंच, पंच, महापौर, अध्यक्ष, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक महिलाओं की पहुँच।

महिलाओं के सशक्तीकरण का प्रारम्भिक बिंदु प्रजातंत्रात्मक देशों के विधान मंडलों के निर्वाचन में महिलाओं को सार्वभौमिक मताधिकार प्रदान करना माना गया, इस दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी में स्वीडन, फिनलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ पश्चिमी राज्यों में महिलाओं को सीमित मताधिकार प्राप्त हुआ।

भारतीय शासन व्यवस्था में महिलओं की सहभागिता एवं भारतीय संविधान में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण का शुभारम्भ तो मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत प्रदत्त विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद 14); धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15); लोक

नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16); वाक्–स्वातंत्र्य का अधिकार, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार, संगम या संघ बनाने का अधिकार, भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार, भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोवार करने का अधिकार (अनुच्छेद 19); मानव के दुर्व्यापार और बलातश्रम का प्रतिषेद के द्वारा संविधान लागू होने के साथ ही हो गया था[8], लेकिन व्यावहारिक धरातल पर संविधान के 73वें एवं 74वां संशोधन से महिलाओं एवं स्थानीय नगर निकायों में प्रत्येक स्तर के पदों पर एक–तिहाई स्थानों के आरक्षण के साथ राजनीतिक सशक्तिकरण का एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।[9]

कौशल विकास के जरिए आजीविका के दीर्घकालिक अवसर बढ़ाकर गरीबों के उत्थान का एक सर्वसमावेशी प्रयास है। इसे आवास और शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय के तहत शुरू किया गया था। इस योजना में राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) का विलय किया गया है। एनयूएलएम का नया नाम दीनदाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन है। योजना के तहत शहरी क्षेत्र का विस्तार सभी 4041 वैधानिक नगरों और शहरों तक है। इस तरह लगभग समूची शहरी आबादी इसके दायरे में आती है। भारत सरकार ने इस योजना के लिए 500 करोड़ रूपये का प्रावधान किया है। इसी तरह एनआएलएम का नया नाम दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन है इन योजनाओं के मुख्य बिंदु इस तरह हैं–

- **कौशल प्रशिक्षण और नौकरी के जरिए रोजगार :–** शहरी गरीबों के प्रशिक्षण के लिए प्रति व्यक्ति 15000 रुपये के खर्च की अनुमति है। पूर्वोत्तर क्षेत्र और जम्मू–कश्मीर के लिए यह रकम 18000 रुपये रखी गई है। इसके अलावा शहरी गरीबों को नगर आजीविका केन्द्रों के जरिए बाजारोन्मुख कौशल मुहैया कराया जाता है ताकि वे शहरवासियों की व्यापक मांग को पूरा कर सकें।
- **सामाजिक संगठन और संस्था विकस :–** इसे स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के गठन के जरिए किया जाता है। ये समूह सदस्यों को प्रशिक्षण देने के अलावा उनकी मदद् करते हैं हर समूह को 10000 रुपये की शुरुआती सहायता दी जाती है। पंजीकृत क्षेत्र स्तरीय महासंघों को 50000 की सहायता मुहैया करायी जाती है।
- **गरीबों के लिए सब्सिडी :–** व्यक्तिगत सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना के लिए 2 लाख रुपये तक के ऋण पर 5 प्रतिशत से 7 प्रतिशत ब्याज सब्सिडी मुहैया कराने का प्रावधान है। सामूहिक उद्यमों के लिए कर्ज की सीमा 10 लाख रुपये तक निर्धारित की गई है।
- **बेघरों के लिए बसेरा :–** इस योजना के तहत शहरी ग्रामीण गरीबों के लिए बसेरों के निर्माण का पूरा खर्च सरकार वहन करती है।
- **अन्य कदम :–** योजना में विक्रेता बाजारों के विकास का प्रावधान है। ढांचागत सुविधाओं के निर्माण के जरिए विक्रेताओं के कौशल विकास को बढ़ावा दिया जाता है। इसके अलावा कूड़ा चुनने वालों और दिव्यांगों के लिए विशेष परियोजनाओं की व्यवस्था की गई है।

55 साल की तंगिराला पद्मावती एक गरीब परिवार की हें उनके 8 भाई और 3 बहनें हैं। परिवार की गरीबी की वजह से पद्मावती शिक्षा और अन्य सुविधाओं से महरूम रहीं। वह बहुत मुश्किल से छठी जमात तक स्कूल की पढ़ाई कर

सकीं। पद्मावती सिर्फ 12 वर्ष की थीं तब उनकी शादी 28 साल के एक व्यक्ति से कर दी गई। थोड़े ही समय में वह दो बेटियों की मां बन गई। बेटियों के जन्म के बाद पद्मावती घर–घर जाकर सब्जियां बेचने लगी। उसके मन में आत्महत्या तक का विचार आया मगर अपनी बेटियों की खातिर उन्होंने इसे खारिज कर दिया।

पद्मावती के एसएचजी को किफायती स्वच्छता के एक कार्यक्रम के तहत शौचलय निम्रण के लिए सहायता मिलती थी। उन्होंने महिलाओं को प्रेरित किया कि वे खर्च का अपना हिस्सा देकर शौचालय बनवाएं। उन्होने जिला कलेक्टर और स्थानीय विधायक की मदद से गांव में 300 परिवारों के लिए ाघर का निम्रण करवाया। पदृमावती के प्रयासों से 2004 में रितला गांव में एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय खुल गया। उन्होंने अपने एसएचजी को गांव में 40 बुजुर्गों को नए कपड़े बांटने के लिए प्रेरित किया। उनकी समाजसेवा की वजह से गांववासी उन्हें अपना नेता मानने लगे।

पद्मावती ने अपने गांव में शराब की दुकानों के खिलाफ आंदोलन चलाया और उनके मालिको को यह धंधा छाड़ने के लिए मजबूर कर दिया। उन्होंने अनुसूचित जाति के 135 परिवारों को जला कलेक्अर के सामने उनकी बात पहुंचा कर अपनी जमीर पर काम करने का अधिकार दियलाया। गांव में अनुसूचित जाति के 200 से ज्यादा परिवारों को उन्होने बिजली का कनेक्शन दिलाया। उनके प्रयासें से गांव में सड़कों की दशा में सुधार हुआ और बिजली के खंभों पर रोशनी जगमगाने लगी।

पद्मावती ने 350 से अधिक लोगों को पारिवारिक विवाद सुलझाने के लिए मशविरा दिया जिस पर उन्हे जिला कलेक्टर से योग्यता का प्रमाणपत्र भी हासिल हुआ। जब सूक्ष्म वित्त संस्थानो ने गांववासियों को परेशान किया तब पदृमावती ने उनके खिलाफ आंदोलन चलाया। उनके इस आंदोलन के परिणामस्वरूप एसएचजी से जड़ी महिलाओं के तिों की रक्षा के लिए कनून बनाया गया और कई परिवारों को कर्ज के जाल से निकलने में मदद मिलीं

पद्मावती ने बताया, ''मैंने अपने गांव में दो आंगनवाड़ी भवनों और विवाह जैसे सार्वजनिक समारोहों के लिए एक हॉल का निर्माण कराया। 30 बच्चों को बाल मजदरी के चंगुल से निकालकर उन्हें स्कूल मे डालने का इंतजाम किया। चंदे के जरिए स्कूल में वर्दी, बैगों और बेंचों की व्यवस्था की। स्कूलों में बच्चों के लिए स्वास्थ्य शिविर लगाए गए। सलाह–मशविरे से 37 परिवारों के विवादों का निपटारा किया। शराब सेवन के 40 और यौन उत्पीड़न के दो मामलों को सुलझाया। इन सभी मामलों का निपटारा अलग–अलग ढंग से किया गया।

प्रायः यह माना जाता है कि महिला साक्षरता और राजनीतिक निर्णयन में महिलाओं की भागीदारी के बीच प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध है, लेकिन यह सम्बन्ध भारतीय राजनीति में परिलक्षित नहीं हुआ है। केरल में लगभग शत–प्रतिशत साक्षरता होने के बावजूद केरल विधानसभा में महिला विधायकों का प्रतिनिधित्व मात्र 0.7 प्रतिशत से लगभग 5 प्रतिशत के आस–पास ही रहा है। इसके विपरीत छत्तीसगढ़ में महिला साक्षरता दर की स्थिति अत्यधिक असन्तोषजनक है, लेकिन इसके बावजूद अब तक लगभग 12.32 प्रतिशत महिलाएँ निर्वाचित होकर विधानसभा में पहुँची हैं। लगभग यही स्थिति राजस्थान की रही, जहाँ 14 प्रतिशत महिलाएं विधानसभा में पहुंची हैं। मणिपुर की सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को अग्रणी स्थान प्राप्त होने के बावजूद वहाँ 1990 में ही पहली बार एक महिला विधायक बन सकी थी। कहा जा सकता है

कि राज्य विधानसभाओं में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

राज्य स्तर पर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता का स्तर भले ही संतोषजनक न हो लेकिन पंचायतीराज संस्थाओं तथा स्थानीय नगर निकायों में उनकी सहभागिता लगातार बढ़ रही है। संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन से प्रत्येक स्तर के पदों पर महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त हो गया है।[11] क्षैतिजिक रूप से प्रत्येक राज्य में कुल पदों में से अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित पदों में से उसी वर्ग की महिलाओं के लिए भी एक–तिहाई पद आरक्षित हैं। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने पंचायतीराज संस्थाओं तथा स्थानीय नगर निकायों के प्रत्येक स्तर के पद 50 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाने के संविधान संशोधन के प्रस्ताव को तत्कालीन पंचायतीराज मंत्री सी.पी. जोशी ने इस हेतु (संविधान संशोधन विधेयक 110 वाँ 2009) 26 नवम्बर, 2009 को लोक सभा में पेश कर दिया, उत्तराखण्ड में 55 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।[12] बिहार देश का पहला राज्य है, जहाँ पंचायतीराज संस्थाओं के 50 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए, हिमाचल प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, केरल, महाराष्ट्र, ओडिशा, त्रिपुरा, मध्य प्रदेश, राजस्थान में महिलाओं का कोटा एक–तिहाई से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया है।[13]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विगत तीन दशकों में यद्यपि महिलाओं ने अनेक पुरुष प्रधान पेशों में अपनी धमाकेदार उपस्थिति दर्ज की है। भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा, न्यायपालिका, चिकित्सा, प्रबन्ध, बैंकिंग आदि में महिला प्रतिनिधित्व बढ़ा है। इंजीनियरिंग, विधि, कला एवं संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में जहाँ कहीं अवसर मिले हैं, वहीं महिलाओं ने अपनी क्षमताओं को प्रमाणित किया है, लेकिन राजनीति के उच्चतम स्तरों पर महिलाएँ आज भी पुरुष प्रधान मानसिकता का शिकार हो रही हैं। लोकसभा, विधानसभा के एक–तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए जाने सम्बन्धी विधेयक को पुरुष सांसदों ने आज तक पारित ही नहीं होने दिया।

स्वयंसहायता समूहों का गठन किया जा रहा था, वह 1990 में एक एसएचजी में शामिल हो गई और उसके प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा लेने लगी। एसएचजी के शिविरों से उन्हें काफी संबल मिला। अन्य महिलाओं से बातचीत से उन्हें पता लगा कि जीवन क्या है। उन्होंने जाना कि समस्याएं सिर्फ उनके साथ ही नहीं हैं। पद्मावती की अन्य महिलाओं से दोस्ती हो गई तथा उनके संघर्षों और कहानियों से उन्हें प्रेरणा मिली जल्दी ही वह समूह की नेता बन गईं ओर उन्होंने सुनिश्चित किया कि गांव की हर महिला कम–से–कम अपना नाम लिखना जरूर सीख जाए। उन्होंने साथी महिलाओं को बचत के महत्व के बारे में बताया तथा उन्हें आर्थिक और शारीरिक बेहतरी के गुण भी सिखाए। राजनीतिक दलों का शीर्ष नेतृत्व महिला आरक्षण को समर्थन दिए जाने के मामले में एक–दूसरे से बढ़–बढ़कर वक्तव्य देने में तो आगे रहता है, लेकिन दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ निर्णयन प्रक्रिया में महिलाओं को भागीदारी देना ही नहीं चाहते जब तक निर्णयन प्रक्रिया में महिलाओं को बराबरी की भागीदारी प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण भारतीय प्रजातंत्र का केवल सैद्धांतिक परिदृश्य ही कहा जा सकता है।

संदर्भ स्त्रोत

1 एवं 2. कुमार मनीष (2008) महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा, अराधना ब्रदर्श कानपुर पृष्ठ 22 एवं 25

3 एवं 4. मिश्र अभिनव (2010) अन्तर्राष्ट्रीय विधि, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ एवं मानव अधिकार उपकार प्रकाशन आगरा, पृष्ठ 81 एवं 85

5 एवं 6. अग्रवाल एच.ओ.(2003) अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मानवाधिकार, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद पृष्ठ 22 एवं 28

7. डॉ. त्रिवेदी आर.एन. एवं राय एम.पी. (2012) भारतीय सरकार एवं राजनीति, कालेज बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर (राज.) पृष्ठ 571

8. डॉ. जैन पुखराज एवं फड़िया बी.एल. – भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, पब्लिकेशन आगरा, पृष्ठ 325 एवं इंडिया टुडे, जनवरी 2015

9. वसु, दुर्गादास (1993) भारत का संविधान एक परिचय, अनुवाद शर्मा ब्रजकिशोर, प्रेटिस हाल आफ इंडिया, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

10. जैन डॉ पूर्णमल (2003) मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइन्टर पब्लिशस जयपुर 2003 पृष्ठ 10

11. कुरुक्षेत्र – नई दिल्ली – दिसम्बर 2012

12. योजना – नई दिल्ली – दिसम्बर 2014

13. इंडिया टुडे – जनवरी 2015

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे : मानव अधिकार, वैश्वीकरण, आतंकवाद एवं पर्यावरण

❑ डॉ. प्रवीर चन्द्र दुबे*

शोध सारांश

समकालीन शब्द का प्रयोग 1989 की क्रान्ति के समय शुरू हुआ। विश्व युद्ध के समय के (प्रथम विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध आस पास) तथा शीत युद्ध के प्रभाव को आज के समकालीन के इतिहास में ही महसूस किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र भारत एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच प्रदान करता है, जिसके माध्यम से वह उस सीमा तक बड़ी शक्तियों को दरकिनार कर सकता है और अपनी सैनिक कमजोरी के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निबाह कर सकता है। आर्थिक और तकनीकी सहयोग हासिल कर सकता है और अपनी विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों प्रसारित कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना (1945) से लेकर अब तक दोनों महाशक्तियों को छोड़कर, भारत संयुक्त राष्ट्र क्रियाकलापों से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। जिस समय संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था परन्तु भारत संयुक्त राष्ट्र का मौलिक सदस्य था। भारत 30 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना। 1947 में भारत जब स्वतंत्र हुआ और पाकिस्तान के नाम से ही पृथक् राष्ट्र की स्थापना हुई तो यह प्रश्न उठा की अविभाजित भारत का संगठन का स्थान किस राष्ट्र को मिलना चाहिए।

मानव अधिकार

मानव अधिकारों से अभिप्राय मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसके सभी मानव प्राणी हकदार है। अधिकारों एवं स्वतत्रताओं के उदाहरण रूप में जिनकी गणना की जाती है उनमें नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों, नागरिक और राजनैतिक अधिकार सम्मिलित हैं जैसे की जीवन और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतत्रता और कानून के सामने समानता एवं अधिकार, आर्थिक समाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार।

* संविदा सहायक प्राध्यापक (राजनीतिशास्त्र), यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सिरमौर, रीवा (म.प्र.)

संयुक्त राष्ट्र ने अपने उपयुक्त उत्तरदायित्व को पूरा करने की दृष्टि से अपनी एक ईकाई ''आर्थिक और सामाजिक परिषद'' को ये जिमेदारी सौपी की वह मानव अधिकारों की सुरक्षा हेतु योजना प्रस्तुत करें।

इसे मानव अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौपा गया। इस आयोग्य का अध्यक्ष श्रीमती ऐलोनोर रूजवेट को बनाया गया। लगभग 3 वर्षों परिश्रम के उपरान्त आयोग ने ''मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र'' का प्रारूप तैयार किया जिसे संयुक्त महासभा के कुछ संशोधनों के साथ 10 दिसम्बर 1948 को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया इसे ही मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र कहते हैं। 10 दिसम्बर को प्रतिवर्ष मानव अधिकार दिवस मनाया जाता है।

घोषणा पत्र में प्रस्तावना सहित कुल 30 अनुछेद है प्रस्तावना में ''मानव जाति की जन्म जाति गरिमा और सम्मान तथा अधिकारों पर बल दिया गया है''।

भारतीय संविधान के भाग तीन में उल्लेखित अधिकांश मौलिक अधिकारों को मानव अधिकारों की श्रेणी रखा जा सकता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को सार्थक रूप प्रदान करने के उदेश्य से मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के तहत राष्ट्रीय मानव अधिकार का गठन किया गया।

वैश्वीकरण

''वैश्वीकरण बढ़ते हुए आर्थिक खुलेपन, बढ़ती हुई आर्थिक स्वतंत्रता और विश्व अर्थव्यवस्था के सदस्य राष्ट्रों के मध्य गहराते हुए आर्थिक एकीकरण से सम्बन्धित एक प्रक्रिया है''।

वैश्वीकरण या भूमंडलीयकरण एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य व्यापार और व्यवसाय को राज्यों के सीमा के बाहर तक बड़ा करना है इसका लक्ष्य पारस्परिक सम्बन्धित व पारस्परिक निर्भर ईकाई या ग्राम की स्थापना करना है। वैश्वीकरण पूरे विश्व को एक राजनैतिक आर्थिक, और सांस्कृतिक ईकाई में परावर्तित करने की ईकाई है। इसे भूमण्डलीयकरण के नाम से भी जाना जाता है।

वैश्वीकरण समकालीन विश्व समाज के महत्वपूर्ण विशेषता है आज सम्पूर्ण विश्व सिमटकर एक वैश्विक ग्राम में परिवर्तित हो गया है। अब एक ईकाई के रूप में राष्ट्र एक दूसरे से अलग अलग नही है बल्कि परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह घनिष्ठ सम्बन्ध जीवन के अनेक क्षेत्रों जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक, संचार, तथा राजनीति आदि में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण का आशय है ''वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी और विचारों का स्वतंत्र प्रवाह यानि बेरोक–टोक एक देश से दूसरे देश में पहुँचाना है''।

इसे राज्यों के बीच आपसी जुड़ाव अथवा एक दूसरे पर निर्भरता भी कहा जा सकता है।

वैश्वीकरण के चार प्रमुख तत्व हैं–

1. विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं का स्वतंत्रता पूर्वक उत्पाद बेच सकती है।
2. राष्ट्रों की बीच सेवाओं अथवा व्यक्तियों का स्वतत्र आवागमन।
3. विभिन्न राष्ट्रों पूँजी का प्रवाह और एक देश के पूँजीपति दूसरे देश में पूँजी निवेश कर सकते हैं।
4. विचारों और संस्कृति का प्रवाह।

वैश्वीकरण के कारण

1. प्रौद्योगिकी का विकास
2. उदारीकरण और निजीकरण
3. उत्पादन का वैश्वकीकरण
4. राज्यों का आपसी जुडाव

वैश्वीकरण के तीन प्रमुख आयाम हैं :– आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक।

वैश्वीकरण के दौर में ध्यान देने योग्य तत्व

1. भारती उद्योगपतियों की प्रतिस्पर्धा क्षमता में सुधार लाया जाय।

2. उदारीकरण के बाद भारत में अनेक बहुराष्ट्रीय प्रतिस्ठानों (MNCs) का प्रवेश हुआ।

3. भारत को कृषि और लघु उद्योग क्षेत्र का आधुनिकीकरण करना चाहिए।

4. घरेलू उपकरणों में विदेशी कम्पनियों की भागीदारी बढ़ायी जानी चाहिए।

वैश्वीकरण का भारत पर प्रभाव :–

वैश्वीकरण को भारत के लिये लाभकारी मानते है कुछ विद्वान इसे भारत के लिये हानिकारक मानते है भारत वैश्वीकरण के प्रक्रिया के माध्यम से शेष विश्व के साथ जुड़ चुका है। आर्थिक समाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा है। 2001 से 2010 की अवधि मे भारत में 121.852 अरब अमेरिकी डालर का हुआ जो 2009–2010 में बढ़कर 250 अरब डालकर हो गया।

आतंकवाद

आतंकवाद आतंक का दर्शन है आतंकवाद की भूमिका इतनी पुरानी है जितना मानव समुदाय। आतंकवाद का जन्म 2 स्थितियों में होता है या हो सकता है :– पहली स्थिति वह है जिसमें उत्पीड़न का सामना असमर्थ कोई व्यक्ति या समूह शक्ति असंतुलन को समाप्त करने के लिये आतंक का रास्ता अपना लेता है। ऐसा प्रायः राजनीतिक मुक्ति आन्दोलनों के संदर्भ में होता है। दूसरी स्थिति वह होती है जिसमें कोई व्यक्ति या समूह अपनी नाजायज माँगों को मनवाने के दबाव के रूप में आतंक की पद्धति का प्रयोग करता है।

आतंकवाद अपने सभी रूपों में प्रायः शस्त्ररहित नागरिक समुदाय के विरुद्ध अत्याचार है। ऐसे नागरिकों पर अत्याचार जो उस किसी नीति या निर्णय के लिये दोषी भी नहीं हैं जिसके विरुद्ध आतंकवादी संघर्ष करते है। लेकिन यह सत्य है कि जब भी निःअपराध लोगों पर बैठे यात्रियों की हत्या होती है तो यह घटना आतंकवाद के अन्तर्गत आ जाता है।

आतंकवाद कोई विचारधारा या सिद्धान्त नहीं है अपितु यह एक तरीका या प्रक्रिया या फिर एक उपकरण है जिसका प्रयोग कर कोई राज्य राजनीतिक संगठन, स्वतंत्रवादी समूह, अलगाववादी संगठन जाति या धार्मिक उनमादी अपने उदेश्यों का प्राप्त करना चाहते हैं। आतंकवाद की जड़ों, कारणों का अन्वेषण एक कठिन कार्य है। समान रूप से लोगों का मत है कि इसके लिये समाजिक आर्थिक और वैचारिक उत्तरदायी होते हैं।

आतंकवाद के अनेक रूप हो सकते हैं :– यह एक व्यक्ति के कृत का परिणाम हो सकता है जो किसी बस या रेल या सार्वजनिक स्थान पर विस्फोटक सामग्री रखदे अथवा यह एक सुगठित समूह के कार्य भी परिणाम हो सकता है जो अपहरण करता है और महत्वपूर्ण व्यक्तियों की हत्या का कार्य करता है ऐसे संगठन भी होते है जो किसी निश्चित स्रोत से धन प्राप्त और पूरे के पूरे देश में आतंक फैलाने का कार्य करते है।

पर्यावरण

पर्यावरण के मुद्दे वृहत् राजनीतिक सामाजिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठ रूप से जुडे होते हैं। ये प्रक्रिया स्वयं में वैश्विक राजनीतिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा हैं। अब सभी लोग मानते हैं कि धन वितरण की पद्धति शक्ति तथा औद्योगिकीकरण वातावरण को महत्वपूर्ण रूप में प्रभावित करते हैं

इसी कारण से वैश्वीकरण तथा राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता पर्यावरण से जुडे मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय बना देती है।

पर्यावरण का अर्थ होता है घेरा। इस प्रकार पर्यावरण वह ईकाई है जो हमें चारों ओर से घेरे हुये है। पर्यावरण उन सब परिस्थतियों और प्रभावों का योग है जो जीवधारियों के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं या यह कह सकते हैं कि जीवित प्राणियों अस्तित्व और जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तत्व और कारक पर्यावरण कहलाते है। पर्यावरण का आशय उन सभी परिवेश से है जिसमें मनुष्य एक निश्चित समय और स्थान में घिरा रहता है।

पर्यावरण भौतिक और सामाजिक सांस्कृतिक दोनों धरातल पर मनुष्य के लिये महत्वपूर्ण है। भौतिक दृष्टि से भूमण्डल के चारों ओर ग्रह और उपग्रह, वातावरण, जलवायु, मिट्टी, जल, वनस्पति एवं पशु–पक्षी तथा पृथ्वी के गर्भ में छिपा तेल, कोयला, लोहा और अन्य खनिज पदार्थ पर्यावरण में सम्मिलित होते हैं। मनुष्य ने कहीं इनकी पूजा की, कहीं दोहन किया, और कहीं इसमें संशोधन किया। सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भी वे सभी विचार और वस्तुएं पर्यावरण में सम्मिलित होती हैं जो मानव द्वारा निर्मित हैं। जैसे–रासायनिक पदार्थ, मशीनें, कल–कारखाने, सड़कें, बाँध, पुल आदि।

इन सब पर भौतिक और सामाजिक और सांस्कृतिक मानव का समग्र पर्यावरण जो निरन्तर चलती रहती है।

20वीं शताब्दी भौतिकवादी सभ्यता के विकास की शताब्दी मानी जाती है। इसके चलते विश्व समुदाय के सामने पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या पैदा हो गयी है। इसके चलते औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रांतियों के चलते पर्यावरणीय क्षति में बढ़ोत्तरी हुई है। जीव मण्डल के तीन घटक हैं–जल मण्डल, वायु मण्डल और स्थल मण्डल।

मनुष्य की उपभोगवादी नीति के चलते ये तीनों ही मण्डल बुरी तरह से प्रदूषित हो गये हैं।

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा विभिन्न विकास योजनाओं ने पर्यावरण संकट पैदा कर दिया है। भारत में पर्यावरण प्रदूषण के कारण इस प्रकार है।

1. भौतिक विकास अत्यधिक महत्व
2. वनों का विनास
3. कृषि का व्यवसायीकरण
4. विकास का असंतुलित कार्यक्रम
5. प्रदूषण उत्पन्न उद्योगों का विस्तार

संन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सिद्धान्त एवं समकालीन मुद्दे – डॉ. बी. एल. फड़िया।
2. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध – डॉ. फड़िया
3. दैनिक भास्कर – जुलाई 2016
4. योजना – जुलाई 2015
5. प्रशासनिक चिन्तनम् – प्रसाद राजनारायण
6. Ecology and Environmental Management.

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

''वृद्धावस्था : समाज की आवश्यकता''

❑ डॉ. कीर्ति शुक्ला*

शोध सारांश

वृद्धावस्था भी मनुष्य के जीवन की परिपूर्णता का एक चरण है और इनमें एवं जवानी में अंतर यह है कि बाल्यकाल और जवानी इंसान के अंदर ऊर्जा से समृद्ध होती है, परन्तु वृद्धावस्था में ऊर्जा कम हो चुकी होती है और दिन-प्रतिदिन कम ही होती जाती है। बाल्यकाल और जवानी का समय बीत जाने के बाद इंसान वृद्धावस्था में कदम रखता है। इंसान जब वृद्ध हो जाता है तो वह बहुत सारे अनुभव प्राप्त कर चुका होता है।

दूसरे शब्दों में वृद्ध अनुभवों का अनमोल खजाना होता है। वृद्धावस्था वहुत ही संवेदनशील होती है और इस विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था में स्वयं वृद्धों को और उनके निकटवर्ती लोगों को उन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था वह काल है जिसमें पहुँचकर माता-पिता कमजोर बल्कि शक्तिहीन हो जाते हैं और उस समय उन्हें अपने बच्चों की अधिक आवश्यकता होती है, बहुत से माता-पिता ऐसे होते हैं जो अपने जीवन में और इसी प्रकार वृद्धावस्था में उन्हें अपने बच्चों की आर्थिक सहायता की आवश्यकता ही नहीं होती है, बल्कि हर माता-पिता को आशा होती है कि उनके बच्चे उनके साथ अच्छा व्यवहार करेंगे।

इंसान वृद्धावस्था के कारण बहुत-सी चीजें भूल जाता है जिसके कारण उसके परिजनों को नाना प्रकार की समस्याओं का सामना होता है। कभी ऐसा भी होता है कि कुछ जवान अनुभव और हौसला कम होने, या घमंड एवं समय न होने के कारण अपने वृद्ध माँ-बाप के साथ वह व्यवहार नहीं करते जिसकी वे अपेक्षा करते हैं।

पवित्र कुरआन के सूरे इसरा की 23वीं एवं 24वीं आयत में महान् ईश्वर कहते हैं जब भी माता-पिता या उन दोनों में से कोई एक बूढ़ा हो जाये तो लेशमात्र भी उनका अपमान नहीं करना, उन पर चीखो-चिल्लाओ नहीं, नर्म अंदाज में उनसे बात करो और उनके साथ प्रेम एवं विनम्रता से बात करो।''

सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन

जैसे मानव के प्रयासों से भौतिक परिवर्तन आते हैं जिन्हें हम विकास अर्थात् उन्नति के नाम से जानते हैं, उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था भी गतिमान रहती है, आवश्यकताओं के अनुरूप सामाजिक परिवर्तन की आते

* अतिथि व्याख्याता, बी.एड. विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

रहते हैं, वैसे भी परिवर्तन होना प्रकृति का नियम भी है। अतः निरंतर परिवर्तन तो होते रहेगें और उन्हें स्वीकार कर लेना हमारी मजबूरी भी है, और आवश्यकता भी युवा वर्ग उस परिवर्तन को शीघ्र अपना लेता है, परन्तु बुजुर्ग प्रत्येक परिवर्तन का विरोध करते पाए जाते हैं।

बुजुर्ग व्यक्ति अपने बाल्यकाल एवं यौवनावस्था में प्रचलित परम्पराओं और सामाजिक व्यवस्था को श्रेष्ठ बताते हैं, और उन्हें आदर्श संस्कार का नाम देकर महिमा मंडित करते हैं, अनेक प्रकार के अपराध और कदाचार पहले भी थे, अब भी है, और भविष्य में भी रहेंगे। कुछ मापदण्ड अवश्य बदल जाते हैं, घर के बुजुर्ग प्रत्येक नयी सुविधा का विरोध करते देखे जाते हैं, वे उनके अवगुण ढूँढ़ कर परेशान होते हैं और आधुनिकता को कोसते हैं। उदाहरण के तौर पर जब टी.वी. घरों में पहुँचे तो उसे बच्चे को बिगाड़ कर रख देने वाला डिब्बा करार दिया गया। इसी प्रकार प्रारंभ में मोटर साइकिल और कारों को मौत का अवतार बताया गया, अर्थात् नये उपकरण का विरोध किया गया परन्तु सभी वस्तुएँ आज लाभकारी, कल्याणकारी साबित भी हो रही हैं और वर्तमान समय की आवश्यकता भी बन गयी हैं।

भौतिक परिवर्तन की भाँति सामाजिक परिवर्तन भी समय-समय पर आते रहे हैं और तत्कालीन बुजुर्ग द्वारा उनका विरोध भी होता रहा है। पिछले पचास वर्षों में आये जीवन में बदलाव से स्पष्ट दिखता है, आज इंसान कितना भौतिकवादी हो गया है? पचास वर्ष पूर्व एक आम व्यक्ति साइकिल पर चलता था, रेडियो में गाने सुन लेता था, परन्तु आज कलर टी.वी., स्कूटर, कार, फ्रिज, कूलर, ए.सी., मोबाइल आम जीवन की आवश्यकता बन गए हैं।

उपरोक्त कहने का तात्पर्य है कि इंसान ने अपना जीवन स्तर बढ़ा लिया है, उसकी आवश्कताएँ बढ़ गयी है और इन सभी साधनों और सुविधाओं को पाने के लिए अधिक आय के स्रोतों की आवश्यकता होती है, अधिक आमदनी के लिए अधिक समय खर्च कर अधिक श्रम, बीबी, बच्चों के लिए मानसिक तनाव उसकी जिंदगी का हिस्सा बन चुके हैं और वह अपने बुजुर्गों से दूर होते जा रहे हैं।

अतः बुजुर्गों को आज की पीढ़ी की परिस्थितियों को समझ कर उनका सहयोग करना चाहिए। यदि मोहल्ले के सभी बुजुर्ग शहर के सभी प्रौढ़ मिलकर कोई संस्था या संगठन का निर्माण कर लें और आपस में एक दूसरे के सहयोगी बन सके। नये परिवेश में सुख-शांति का विकल्प बनाया जा सकता है। संगठित होकर प्रदेश एवं देश की सरकार पर दबाव बनाकर अपने पक्ष में योजनाएँ बनाकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव

एशियाई देशों में पश्चिमी सभ्यता की नकल करने की होड़-सी लग गयी है, खान-पान, रहन-सहन, सोच-विचार प्रत्येक क्षेत्र में वह पश्चिमी देशों जैसा दिखाना चाहता है। आज विकसित देशों की उन्नति से प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित है, भारतीय भी अन्य एशियाई देशों की भाँति पश्चिमी सभ्यता के प्रशंसक रहे हैं, उनके पास हमसे कहीं अधिक विकास कर लिया है, उनके पास हमेशा कहीं अधिक उच्च तकनीक एवं संसाधन है, इसी विकास के कारण उनके सामाजिक स्वरूप बिल्कुल भिन्न हो चुका है, वहाँ पर कोई भी बच्चा किशोर अवस्था तक आते-आते आत्मनिर्भर हो जाता हैं।

विद्यार्थी जीवन में ही उसकी माता-पिता पर निर्भरता समाप्त हो जाती हैं। जबकि हमारे यहाँ युवाओं को भी रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता, तो किशोर अवस्था में कोई आत्मनिर्भर कैसे हो सकता है। अतः बच्चों की शिक्षा से लेकर रोजगार पाने तक माता-पिता को सारा व्यय उठाना होता है। इसी प्रकार माता-पिता को वृद्धावस्था में अपनी संतान पर आर्थिक और शारीरिक तौर पर निर्भर रहना पड़ता है। क्योंकि सिर्फ सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त बुजुर्ग ही पेंशन के रूप में भरण-पोषण के लिए खर्च पाने के अधिकारी होते हैं तो बुजुर्गों के समस्त संख्या के 11 प्रतिशत है अतः शेष 89 प्रतिशत बुजुर्गों अपने आय स्त्रोंतों का परिजनों पर निर्भर करते हैं।

अतः कोई युवा पश्चिमी सभ्यता की नकल करते हुए अपने माता-पिता की उपेक्षा करता है तो निश्चित ही बुजुर्ग के लिए अभिशाप बन जाती है, युवाओं को

पश्चिम की नकल करने से पूर्व वहाँ की सामाजिक व्यवस्था को भी अध्ययन करना होगा। वहाँ पर परिवार का वजूद भी लगभग समाप्त हो चुका है। बच्चों को परिवार से कोई लगाव नहीं रहता, ये बच्चे अपने यार दोस्तों में ही अपनापन ढूँढ़ते हैं। दूसरी तरफ बुजुर्गों की जिम्मेदारी सरकार उठाती हैं युवाओं को पश्चिमी देशों का अनुकरण नहीं करना चाहिए और उन्हें यह भी याद रखना होगा, वे भी जब वृद्धावस्था में होंगे तो उन्हें भी बच्चों का सहारा लेना पड़ेगा, हमारे वृद्ध समाज के लिए युवाओं का पश्चिमी प्रेम एक बड़ी समस्या बनता जा रहा हैं।

वृद्धों की सुरक्षा के लेकर बढ़ती जा रही है, एक तो हमारी लचर कानून व्यवस्था, दूसरी परिवार का विखंडन वृद्धावस्था की चुनौती बन गया है। भौतिक आवश्यकताओं के लिए युवा वर्ग को अपने गाँव अथवा शहर से बहुत दूर धनार्जन के लिए जाना पड़ता है, ताकि आधुनिक आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में भाग ले सके और अपने जीवन को सवॉर सके और आर्थिक भावनाओं को न झेलना पड़े। परिवार के बुजुर्ग सदैव अपनी संतान को जीवन की ऊँचाईयों पर देखना चाहते हैं, वे अपनी सुरक्षा को दाँव पर लगाकर भी अपनी संतान के उज्ज्वल भविष्य के लिए चिंतन रहते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के उपाय भी स्वयं ही करने होंगे।

विषम परिस्थितियों के शिकार बुजुर्ग

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आवश्यक नहीं होता उसके जीवन में सब कुछ सामान्य हो, सभी के जीवन में कुछ-न-कुछ असामान्य होता ही है, परन्तु कभी-कभी इतना असामान्य होता है जिस कारण वह समाज में दया का पात्र बन जाता है, वह सबकी सहानुभूति का पात्र बन जाता है, किसी बुजुर्ग का जीवन साथी काफी पहले पिछड़ गया होता है, किसी को संतान सुख तो मिलता है पुत्र का अभाव खलता है, किसी को पुत्र को प्राप्त होता है परन्तु आपकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है। अर्थात् उससे विचार नहीं मिलते या वह अपने बुजुर्गों के प्रति संवेदनशील नहीं होता।

किसी भी प्रकार के नशे का सेवन करना प्रौढ़ावस्था में अभिशाप बन जाती है ऐसे बुजुर्गों के लिए जो आर्थिक रूप से अपनी संतान अथवा किसी अन्य परिजन पर निर्भर है, उनके लिए अपनी नशे की लतों के लिए धन की व्यवस्था करना संभव नहीं होता हैं अतः नशे की आदत प्रौढ़ावस्था में समस्या बन कर उभरता है। अतः युवावस्था में ही इन आदतों से बचना चाहिए इन आदतों से समय रहते निकल जाना चाहिए ताकि बुढ़ापा ठीक प्रकार से और सम्मानपूर्वक बिताया जा सके।

निष्कर्ष—संसार में प्रत्येक जीवन की जीवन यात्रा में वृद्धावस्था एक आवश्यक पड़ाव है। उसी प्रकार मनुष्य से भी यह एक सामान्य एवं प्राकृतिक स्थिति है। जिसने भी जन्म लिया है, समय के साथ उसके शरीर का विकास भी अवश्य होगा। यह तो संभव ही नहीं है कि वह सदैव एक अबोध बालक या युवा ही बना रहे। आयु बढ़ने के साथ शारीरिक क्षमताओं का हास प्रारंभ होगा और वृद्धावस्था आएगी। विकास की इस स्वाभाविक गति से हम सभी परिचित हैं।

फिर भी हम देखते हैं कि अधिकांश व्यक्ति बुढ़ापे के नाम से ही घबराते हैं। यह जानते हुए भी कि आयु बढ़ने के साथ ही बुढ़ापा तो आना ही है, वे मानसिक रूप से अपने को इसके लिए तैयार नहीं करते। बुढ़ापा जहां आयु बढ़ने से आता है, वहीं मानसिक रूप से भी। ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो 80-90 वर्ष की आयु में भी मन में जवानों जैसी उमंग व उत्साह से भरपूर अपनी बची-कुची क्षमताओं का सदुपयोग करते रहते हैं। वहीं अनेकों तो 30-40 वर्ष की आयु में ही थके हुए ओजहीन, उत्साहहीन, दीन-दुःखी दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ब्रह्मवर्चस्, 'सार्थक एवं आनंदमय वृद्धावस्था', गायत्री तपोभूमि मथुरा, वर्ष 2011
2. www.goole.com
3. www.wekipedia.com

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

भारत में वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास

❒ डॉ. संजय शंकर मिश्र*
❒ अरूण पाण्डेय**

शोध सारांश

वर्णव्यवस्था भारतीय समाज की आधारशिला रही है। प्रारंभिक भारत में चतुर्वर्ण्य व्यवस्था के द्वारा समाज को चार श्रेणियों में बांटा गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को अलग–अलग कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं, जिनमें ब्राह्मणों को प्रथम स्थान दिया गया। वर्ण व्यवस्था को समझने से पूर्व वर्ण और जाति के भेद को जानना आवश्यक है, जैसे कि वर्ण चार ही होते हैं, पर जातियों की संख्या हजारों में है। 1901 की जनगणना के अनुसार भारत में 2000 प्रकार के केवल ब्राह्मण थे। वर्ण और जाति दोनों अनुवांशिक होते हैं, और दोनों पर विवाह और भोजन संबंधी पाबंदिया लागू होती हैं। जाति का अर्थ अन्म होता है, इसलिये किसी की जाति का निर्धारण जन्म से होता है। प्रारंभ में वर्ण को एक बड़ी इकाई माना जाता था, और एक वर्ण में अनेक जातियां हो सकती थी, जब प्रतिलोम और अनुलोम संबंधों के कारण जातियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी, तब वर्णसंकर के सिद्धान्त को गढ़ा गया, जबकि यह सिद्धांत वास्तविक नहीं है, और जब भी वर्णों की संख्या मूलतः चार ही मानी जाती है। मध्यकाल आते–आते तो वर्ण और जाति का भेद जाता रहा, क्योंकि इस समय 36 वर्णों वाले गांव के संबंध में यह भी कहा गया कि इस गांव में 36 जातियां निवास करती है, अर्थात् वर्ण और जाति में बहुत विभेद नहीं है। भारतीय समाज का स्तरीकरण वर्ण विभेद के कारण हुआ, अब देखना यह है कि वर्ण विभेद और जाति भेद कैसे जन्में, और कैसे बदलते हुये समाज के साथ बदलते चले गये।

* प्राध्यापक वाणिज्य संकाय, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

पश्चिमी भारतविदों ने भारतीय समाज को रूढ़, सुप्त ओर अपरिवर्तनशील कहा है, और अन्य कुछ विद्वानों का भी यही कहना है कि भारतीय समाज प्राचीन काल से जाति प्रथा पर आधारित रहा है। हालांकि भारतीय सामाजिक संरचना में हो वाले परिवर्तनों की गति धीमी अवश्य थी पर उसमें समय–समय पर बदलाव अवश्य हुये। विकासवादी सिद्धांत को दृष्टिगत रखते हुये सामाजिक परतों को खोज करने की गहन आवश्यकता है। जैसे जाति प्रथा में विवाह और सामाजिक सम्पर्क की पाबंदिया अनुवांशिकता आदि सम्बद्ध है, क्योंकि किसी जाति का सदस्य दूसरी जाति से न तो वैवाहिक सम्बन्ध ही बना सकता है और न ही निचली जाति से भोजन ग्रहण कर सकता है, ब्राम्हण के रूप में किसी व्यक्ति के जन्म लेने मात्र से ही वह और उसके वंशज ब्राम्हण माने जाते हैं। सिद्धान्ततः कोई अपने जीवनकाल में वर्ण नहीं बदल सकता। चारों प्रमुख वर्ण और बहुसंख्यक जातियां, किसी न किसी वर्ण के अन्तर्गत आती है। यह विधि अनुष्ठान की दृष्टि से ऊंच–नीच की श्रृंखला में क्रमबद्ध है। ब्राम्हणों को सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त है, तो शूद्र को सबसे नीचा। क्षत्रीय दूसरी कोटि में और वैश्य तीसरी। बौद्ध ग्रन्थों में क्षत्रिय को प्रथम स्थान दिया गया है, और ब्राम्हण को दूसरा। धर्मशास्त्रों में जो अछूत जातियां हैं, उन्हें शूद्र वर्ण में रखा गया है, पर कहीं–कहीं पर उन्हें पांचवा वर्ण भी कहा गया है। अब तक ये पता चलता है कि ब्राम्हण और क्षत्रिय वर्ण के लोगों के पास जमीन होती थी, और वैश्य व्यापार करते थे, शूद्र, किसान, दस्तकार, खेतिहर, मजदूर और गृहदास होते थे, तथा अछूत मुख्यतः निम्न कोटि के दस्तकार और खेतिहर मजदूर के रूप में जीवन यापन करते थे, और अपने परिवार को चलाते थे।

जाति प्रथा की शुरूआत के लिये कहा जाता है, अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति और प्रतिभा के अनुरूप मानव समाज चार वर्गों में विभाजित है, जैसे कुछ लोग अध्यापन और पठन–पाठन का कार्य करते हैं, कुछ लोग युद्ध तथा कुछ व्यापार करते हैं। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था भी मानव समाज में विद्यमान स्वाभाविक और सहज गुणों पर आधारित है, पर बिना भौतिक और सामाजिक परिवेश को, जिसमें मानव पैदा होता है, पलता और बढ़ता है, ध्यान रखे कि उसके प्राकृतिक गुणों का पता लगाना कठिन है। वर्ण व्यवस्था के नैसर्गिक होने का सिद्धांत स्पष्टतः उन लोगों के स्वार्थ को सिद्ध करता है, जो इसे बनाये रखना चाहते हैं।

इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि जाति प्रथा पवित्रता और अपवित्रता के भावों पर आधारित है। ब्राम्हणों में पहली कोटि की पवित्रता पाई जाती है, और क्षत्रियों में दूसरी कोटि की इत्यादि। हालांकि भारत में पवित्रता के सिद्धांत पर वर्ण व्यवस्था का उदय नहीं हुआ, क्योंकि वैदिक काल में चमड़े का काम भी अपवित्र नहीं माना जाता था। परन्तु उत्तर वैदिक युग आते–आते जैसे–जैसे पुरोहित और योद्धा वर्ग हाथ के काम करने वालों ओर कारीगरों से अलग हुये, वे इन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगे और अपने को पवित्र तथा श्रेष्ठ समझने लगे।

तीसरे सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन बढ़ाने और आर्थिक प्रगति के लिये पेशे के अनुसार श्रम विभाजन की आवश्यकता के कारण जाति प्रथा की शुरूआत हुई। हालांकि इस सिद्धांत में जाति प्रथा के अनुवांशिक पहलू की उपेक्षा की जाती है, फिर भी यह तर्क संगत प्रतीत होता है।

प्रारंभ में ही सामाजिक संघर्षों के कारण और साधन तथा उत्पादन के असमान वितरण से समाज में वर्गभेद पैदा होता है। अतः जब तक भौतिक

जीवन में हुये परिवर्तनों से सामाजिक प्रक्रिया के घने संबंध को नहीं समझा जायेगा, तब तक जाति के उद्भव और विकास को नहीं समझा जा सकता है। प्रारंभिक भारतीय समाज में कोई वर्ग न होने के कारण ही इसे अपरिवर्तनशील कहा जाता था, क्योंकि उस समय निरंकुश राज्यों के कारण गांव से राजाओं का सीधा सम्पर्क नहीं थी, हालांकि करों, नजरानों और व्यापार के द्वारा गांव, शहरों से बंधे थे, और ब्राम्हणों, क्षत्रियों का सक्रिय समूह था, जो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को चलाता था। राजा और प्रजा के बीच मध्यवर्ती कार्य करने वाला यह वर्ग वाद में सामंती वर्ग कहा जाने लगा। यद्यपि प्राचीन भारतीय समाज को दास प्रथा पर भी आधारित नहीं कहा जा सकता। बुद्ध काल में मौर्य एवं गुप्त काल में कुछ स्थानों पर यह देखने में आया है कि दासों से कुछ कार्य और घरेलू कार्य करवाये जाते थे, परन्तु उस समय जब यूनान और रोम में बहुसंख्यक प्रजा दास होती थी, भारत वर्ष में लगभग सभी स्थानों पर उत्पादन का वास्तविक प्रबंध स्वतंत्र किसानों के हांथों में था, ये सभी वैश्य कहलाते थे, और इस समय शूद्र दासों, दस्तकारों और खेत मजदूरों की सहायता लेते थे।

यह वैश्य शूद्रावलंबी सामाजिक संरचना वैदिक ऋगवैदिग युग में नहीं पाई जाती थी। प्रारंभिक दैविक समाज मुख्यतः पशु चारी थी। इसमें कबीलाई तत्व प्रधान थे। ऋग्वेद के प्राचीनतम सूक्ताों में गाय के लिये शब्द (गो) का उल्लेख विभिन्न रूपा में 176 बार हुआ है, उस समय गायें (गो) सम्पत्ति की पर्यायवाची मानी जाती थी, और धनी व्यक्ति गोमत कहलाता था, वैदिक कालीन लोगों का गायों से इतना घनिष्ठ संबंध था कि जब उन लोगों ने भैंस को देखा तो उसे गोवाल की संज्ञा उसी प्रकार दी जिस प्रकार बेलीलोन निवासियों ने घोड़े को पहली बार देखकर पहाड़ी गधा कहा था। यद्यपि ऋग्वेद के प्रारंभिक अंशों में कारीगरों, कृषकों, पुरोहितों ओर योद्धाओं का उल्लेख मिलता है, पर तब भी उस युग में आर्यों का समाज मूलतः कबीलाई, पशुचारी और करीब–करीब समानतावादी था। अनाज पैदा करने वाली अर्थव्यवस्था कभी भी कायम नहीं हुई। इसलिये दान के नाम पर किसानों से अनाज पाने की गुंजाइश नहीं थी। अतः उत्पाद अधिशेष के अभाव में जीवन यापन करने वाले पुरोहितों और योद्धाओं का वर्ग नहीं कायम हो सका। ऋग्वेद में वर्ण अथवा वर्ग के नाम पर नहीं बल्कि कबिलाई जाति के नाम पर लोग संगठित होते थे।

परवर्ती वैदिक काल में यह परिवर्तन आया कि कृषि में वृद्धि तथा आर्य और अनार्य लोगों के मिश्रण के फलस्वरूप सार्वजनिक यज्ञों में विभिन्न अनुष्ठानों की देख–रेख के लिये सत्रह प्रकार के पुरोहित होते थे, जिनमें ब्राम्हण भी एक होता था, फिर ब्राम्हण अन्य सभी प्रकार के पुरोहितों को हटाकर पुरोहित वर्ग का एकमात्र प्रतिनिधि बन गया और सारी दक्षिणा के आधे का हकदार बन गया। उस समय वैश्यों और किसानों पर शासन करने के लिये ब्राम्हणों और राजन्यों को परस्पर सहयोग करने के लिये कहा गया है। इस युग में शूद्र छोटे सेवक वर्ग के रूप में उभरते हैं, इस वर्ग में ऐसे आर्य और अनार्य थे, जो पराजित थे, जिनके पशु छीन लिये गये थे, इनमें से कुछ शूद्र वैदिक अनुष्ठानों में भाग ले सकते थे, क्योंकि वे कबीलाई समाज के अंग थे। उस समय सामाजिक विभेदीकरण तेज नहीं हो सका। किसानों के पास उतनी ही जमीन होती थी, जिस पर वे अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से गुजर–बसर कर सके। यहां तक कि राजा भी हल जोतते थे। उन्हें गुलामों और खेतिहर मजदूरों की जरूरत नहीं पड़ती थी, इसीलिये वैदिक साहित्य में मजदूरी

करने वाले के लिये कोई शब्द नहीं पाया जाता है। कुल मिलाकर दोनों सामाजिक संगठन, वर्ग और राज्य, परवर्ती वैदिक युग में सुव्यवस्थित नहीं थे। उस समय न नियमित लगान की व्यवस्था थी न नियमित स्थाई सेना की। राजस्व और बलि नामक चढ़ावे के करों के बीच में अन्तर स्पष्ट नहीं था। विशु सेना का तात्पर्य सशस्त्र समूह होता था, और विशु की सहायता जीत के लिये अत्यावश्यक थी। इसके पश्चात परवर्ती वैदिक कालीन समाज में अधिक से अधिक दो–तीन शताब्दियों तक किसी एक स्थान पर लोग बसते थे। इन बस्तियों को कबीलाई सरदारों का क्षेत्र समझा जा सकता है, इस समय राजन्य और पुरोहित कबीलाई सरदारों से भिन्न हो चुके थे। किसानों से इन्होंने अपने को पूरी तरह से अलग नहीं किया था, इस युग में किसान सरदारों को जैसे राजा या राजन्यों को जब तब कर देता था, तथा ये लोग पुरोहितों, विशेषतः ब्राम्हणों को दान देते थे, तथा किसान भी पुरोहितों को दान देता था। धातुकर्मी, रथकार ओर बढ़ई जैसे शिल्पी मुख्यतः उभरते हुये योद्धाओं के वर्ग की सेवा में लगे रहते थे, इस युग में किसान इतना अनाज नहीं पैदा करते थे, जिससे शहरों के विकास में सहायता मिले, यह बात बुद्ध काल में आई। इस युग का समाज किसानी समाज था, इसमें मुद्रा का प्रचलन भी नहीं था। यह पूर्ण विकसित वर्गीय या वर्णाधारित समाज नहीं था। इस समाज में उपरोक्त वर्णित कबीलाई विशिष्टतायें बनी हुई थी।

खेती और दस्तकारी में लोहे के व्यापक प्रयोग की शुरूआत के साथ छठी सदी ई0 पू0 में ऐसी परिस्थिति पैदा हुई, जिसमें कबीलाई, पशुचारी और प्रायः समतावादी वैदिक समाज बदलकर पूर्ण विकसित कृषि आधारित और वर्ग विभाजित समाज बन गया। मध्य गांगेय काठे के जंगली क्षेत्र की लोहे की कुल्हाड़ी से सफाई होते ही संसार का एक बड़ा उपजाऊ हिस्सा मानवीय आबादी के लिये खुल गया। लोहे के फाल तथा अन्य औजारों की सहायता से किसान अधिक से अधिक अनाज पैदा करने लगे। कबीलाई सरदारों तथा कुछ अन्य लोगों के पास बड़े–बड़े भूखण्ड हो गये, इनमें काम कराने के लिये उन्हें मजदूरों की आवश्यकता पड़ने लगी। यहां तक कि छोटे–छोटे किसानों को भी अन्य लोगों की सहायता लेनी पड़ती थी। दस्तकारी के कारण पैदावार में ज्यादा वृद्धि हुई, इस कारण किसानों के औजारों, वस्त्रों की जरूरतें पूरी हुई तथा राजाओं तथा पुरोहितों के लिये भी विलास की सामग्री जुटाने में दस्तकारी सहायक रही।

अब हम देखते हैं कि किसानों, कारीगरों भाड़े के मजदूरों ओर खेतिहर गुलामों के द्वारा पैदा किये हुये सामाजिक अधिशेष के उपयोग के लिये वर्ण व्यवस्था का अविष्कार हुआ। अब तीनों उच्चतर वर्णों (सामाजिक वर्गों) के सदस्यों और चौथे वर्ण के सदस्यों को विधि अनुष्ठान के आधार पर बांट दिया गया। द्विजों को वेद अध्ययन तथा यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकारी बनाया गया तथा चौथे, वर्ण के सदस्यों शूद्रों को इनसे अलग रखा गया, क्योंकि वे इनकी सेवा के लिये थे। अतः पहले वालों को नागरिक और बाद वालों को अनागरिक कहा गया। इसके पश्चात् पुनः एक नागरिक और दूसरे नागरिक के बीच भेद हुआ, ब्राम्हणों और क्षत्रियों के लिये शारीरिक श्रम वर्जित था, बाद में तो ये उच्चतर वर्णों के लोग शारीरिक श्रम करने वालों को अछूत समझने लगे। वैश्य द्विज समुदाय के सदस्य होते हुये भी किसान, चरवाहे और कारीगर और बाद में व्यापारी के रूप में काम करते थे और महत्वपूर्ण बात यह है कि वही प्रमुख करदाता था। वर्ण व्यवस्था के द्वारा क्षत्रियों को किसानों से लगान तथा व्यापारियों एवं कारीगरों

से महसूल वसूली करने का अधिकार मिला, जिससे वह अपने पुरोहितों और कर्मचारियों को नगद भुगतान करने में सफल हुआ। ब्राम्हणों और पुरोहितों की जीविका इन्हीं से चलती थी। 200 ई0पू0 से 300 ई0 की अवधि में सिक्कों का प्रयोग आम हो गया था। आर्थिक सुविधायें व्यक्ति के वर्ण के आधार पर निश्चित की गई। ऋणों पर ब्राम्हणों को दो प्रतिशत, क्षत्रियों को तीन प्रतिशत, वैश्य को चार प्रतिशत तथा शूद्रों को पांच प्रतिशत ब्याज देने का प्रावधान बना। ब्राम्हण और क्षत्रिय किसानों और कारीगरों के द्वारा दिये गये करों और उपहारों पर जीवन यापन करते थे, इसको लेकर इनमें आपस में झगड़े भी हो जाते थे पर वैश्य और शूद्रों के विरोध का सामना न करना पड़े, वे झगड़े आपस में निपटा लिये जाते थे। मनु ने लिखा है कि ब्राम्हण और क्षत्रिय परस्पर सहयोग के बिना उन्नति नहीं कर सकते।

तीसरी सदी में वैश्य शूद्र श्रम पर आधारित संरचना संकट में पड़ गई, क्योंकि कई अन्य आवश्यकताओं के कारण ये अपने निर्धारित कर्तव्यों की अवहेलना करने पर मजबूर हुये। इस स्थिति को निबटाने हेतु राजाओं ने राज्य के प्रति की गई सेवाओं के बदले राजस्व अथवा भूमि अनुदान के रिवाज को अपनाया। यह प्रथा मध्य भारत और दक्षिण से प्रारंभ हुई, इन स्थानों पर वर्ण व्यवस्था तीसरी सदी ई0 सन् तक भी मजबूती से स्थापित नहीं हो पायी, यहां वर्णसंकर का जोर बढ़ा और भूमि अनुदान ज्यादा दिये गये। इन अनुदानों के कारण ही कृषि का फैलाव पशुओं (गायों) के संरक्षण की भावना भी फैली कृषि पंचाग और आयुर्वेदिक दवा के ज्ञान का विस्तार तथा कृषि उत्पादन का विस्तार भी हुआ। इस प्रक्रिया के दौरान अनुदानों के द्वारा बहुसंख्यक आदिवासी किसानों को शूद्रों के रूप में ब्राम्हण परक समाज में लाया गया। जिसके कारण प्रारंभिक मध्य युग में शूद्र, किसान और खेतिहर कहलाये। इसके विपरीत भू–अनुदानों के कारण वैश्य किसानों की स्वतंत्रता जाती रही और उनके ऊपर अनुदान भोगियों का आधिपत्य जमने लगा। अतः गुप्त युग के बाद वैश्य और शूद्र आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से एक दूसरे के काफी निकट आ गये। चूंकि वैश्य और शूद्र दोनों किसान कहलाने लगे तो इनमें ज्यादा अंतर न रहा। शूद्रों के लिये अनेक घरेलू अनुष्ठान अथवा संस्कार, धार्मिक व्रत और तीर्थाटन निर्धारित किये गये, जिससे साधारण ब्राम्हणों और निचली कोटि के पुरोहित की दान दक्षिणा का प्रबंध हुआ। शूद्र भी रामायण, महाभारत और पुराणों का पाठ सुन सकते थे, गुप्त और गुप्तोत्तर काल में जन जातीय इलाकों में भू–अनुदानों के कारण जातियों की संख्या में वृद्धि हुई। अधिकांश जनजातियों को शूद्रों के रूप में हिन्दू प्रणाली में शामिल कर लिया गया। मनु स्मृति के दसवें अध्याय में इकसठ जातियों का तथा ब्रम्हवैवर्त पुराण में एक सौ अधिक जातियों का उल्लेख मिलता है। अधिकांश जनजातियां जातियों में परिवर्तित हो गई। इन जातियों के उदभव को वर्णों के मिश्रण के फलस्वरूप बतलाकर इन्हें वर्णसंकर ठहराया गया, और इसी प्रकार जनजातीय सरदारों और कुछ विदेशी शासकों को ब्राम्हण धर्मावलंबी समाज में दूसरे दर्जे के क्षत्रियों के रूप में शामिल किया गया वे गुप्ततोन्तर काल में राजपूत कहलायें। भारत के और भारत के बाहर से आई कई जनजातियों को मिलकर विभिन्न प्रकार के राजूपत बने। इसी काल में व्यवसायी और व्यापारी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय इलाकों से भी करने लगे। परिणाम स्वरूप तरह–तरह के शिल्पों के नाम पर तरह–तरह की जातियों के नाम पड़े स्थानीय व्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप जाति व्यवस्था अधिक जटिल हो गई।

चौथी से साँतवी शताब्दी के बीच किसानों की उपज पर जीवन–यापन करने वाले जमींदार वर्गों का उदय हुआ, जिसने नये सामंती संगठन को जन्म दिया। लगभग तीन सदियों से अधिक समय तक व्यापार और प्राचीन शहरों की अवनति के कारण सामाजिक और स्थानिक गतिशीलता की कमी बनी रही, जिस कारण जाति प्रथा के विकास को प्रोत्साहन मिला। अनुवांशिक व्यवसाय, सजातीय विवाह, अंतर्जातीय भोज तथा दूरस्थ यात्राओं में पाबंदियों के कारण यह प्रथा और मजबूत होती गई।

इसी काल में जो नई सामंती संरचना सामने आई, उसके चार कारण दिखाई देते, प्रथम यह कि सामंती समाज में भू–स्वामियों के बुनियादी वर्ग द्वारा किसानों से लगान वसूल किया जाना। भारत में भूमि अनुदान सम्बन्धी सनदों (शासनपत्रों) के फलस्वरूप इस वर्ग का उदय हुआ। दूसरी यह कि सामंती समाज मुख्यतः पराधीन किसान वर्ग पर आधारित है। किसानों से लगान किसी भी रूप में लेना इनका कार्य है। अपने देश में यह स्थिति भूमि अनुदानों के फलस्वरूप और अंशतः स्थानीय पदाधिकारियों की बढ़ती हुई शक्ति के द्वारा विकसित हुई। तीसरे यह कि लगानों और श्रम सेवाओं का संग्रह भूस्वामी अपने शान–शौकत और ठाट–बाट के लिये करते हैं, न कि उत्पादन बढ़ाने और देश के आर्थिक विकास के लिये। चौथा यह कि सामंती सामाजिक आर्थिक संरचना का उद्‌भव और विकास मुख्यतः कृषि अर्थ व्यवस्था में होता है, जिसमें स्थानीय जरूरतों की पूर्ति उस स्थान पर पाये जाने वाले साधनों से हो जाती है, और बाजार प्रणाली के प्रचलन की गुंजाइश कम रहती है। इस प्रकार लगातार भूमि अनुदानों के फलस्वरूप सामंतवाद के यह चार लक्षण जो गुप्तकाल में दिखाई देते हैं, और उसके बाद के काल में भी समाज का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। इस सामंती समाज के विकास के कारण जातियों की अत्यन्त वृद्धि हुई। जिन्हें ऊँच–नीच तथा अन्य कई आधारों पर व्यवस्थित किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं, ऋग्वेदिक काल में सामाजिक संघटन कबीलाई अर्द्धखानाबदोश और पशुचारी था, जो मुश्किल से अधशेष पैदा करते थे। कबीलाई सरदारों और उनके चरणों के पास अनेक भाई–बंधुओं से ज्यादा पशु आदि होते थे। उनके पास सामाजिक सुविधाओं का अभाव था। अंतर कबीलाई युद्धों के फलस्वरूप प्राप्त लुट के माल का असमान वितरण कबीलाई सभाओं में किया जाता था। खेती के फैलाव के कारण परवर्ती वैदिक काल में वर्ग परक समाज और राज्य–संरचना की ओर सामाजिक संक्रमण का प्रारंभ हुआ। इसी समय ब्राम्हणों और राजन्यों (सरदारों) ने जन साधारण अथवा जनजातियों को अपने नियंत्रण में लिया और स्वयं को विशेषाधिकार सम्पन्न बनाया। लेकिन वस्तुतः वेदिकोत्तर काल में वर्ण विभाजित और राज्याधारित समाज लोहे के फल से हो रही खेती और बढ़ती उपज के कारण दृढ़ता से प्रतिष्ठित हो सका। कृषि उत्पादन को वर्ण व्यस्था के द्वारा नियमित किया गया। इसके अतिरिक्त पदाधिकारियों को नगद भुगतान के लिये कारीगरों द्वारा छोटी–छोटी चीजों के उत्पादन से और व्यापारियों से राजा को मुद्रा (नगदी आय) प्राप्त होती थी। वैश्य और शूद्रों पर टिकी यह सामाजिक व्यवस्था प्रायः छठी शताब्दी ई0 पू0 से तीसरी सदी ई0 सन् तक चलती रही, परन्तु बाद में राजाओं पुरोहितों और पदाधिकारियों को भूमि अनुदानों के माध्यम से वेतन भुगतान की प्रणाली प्रचलन में आई। इस प्रणाली के विकास के परिणामस्वरूप दासों, भाड़े के मजदूरों आदिवासी किसानों की कुछ उन्नति हुई, पर वे शूद्रों की कोटि में रहे। जमींदारों का वर्ग भी इसी प्रथा के कारण

बना, अब भूमि अनुदानों से वित्तीय सैनिक प्रशासनिक तथा धार्मिक सेवायें भी जुड़ गई, और सामंती संघटन का विकास हुआ। जिस व्यवस्था में पुरोहित और राजाओं का पर्याप्त नियंत्रण किसानों पर हुआ था, उनका अंतर भी स्पष्ट हुआ। निश्चित ही भू–स्वामी वर्ग के विशेषाधिकार बढ़े, व्यापार तथा नगरीयता के विकास की गति धीमी रही। अतः जातिगत बंधन मजबूत होते चले गये। इसके अतिरिक्त शुद्ध जातियों की संख्या भी बढ़ी, क्योंकि आदिवासी क्षेत्रों में भूमि अनुदानी ब्राम्हण जाकर बसने लगे, उनके वहां पर बसने से जनजातियां कई जातियों में परिवर्तित होती गई।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचना।
2. बी0 एन0 एस0 यादव, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन दि ट्वेल्थ सेंचुरी, इलाहाबाद 1973
3. पी0 बी0 काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, II भाग I पूना 1974
4. चित्रलेखा गुप्ता, ब्राम्हणाज इन इंडिया, ए स्टडी बेस्ड आन इन्स्क्रशंस।
5. वी0 एस0 अग्रवाल, इंडिया एज नोन टू पाणिनी, लखनऊ, 1953
6. Some Aspects of Hindu view of life According to the Dharmasastra Baroda 1932.
7. A.L. Basham History and poctrines of the Ajivikas London, 1951
8. H.C. Chakladar, social life in Ancient India Studies in Vatsyaana's Kamasutra Culcutta 1929.
9. Bhaskar Chattopadhyaya, Kusban state and India society culcutta 1975.
10. D.P. Chattopadhyaya, ed. History and society Essays in Honour of projersor Bibarranjan Ray, Culcutta 1978
11. B.N. Dutt Studie sin India Social policy, Culcutta, 1944
12. R.C. Dutt, A History of Indian civiligation in Ancient India based on Sanskrit literature, 3 vols. Culcutta 1989-90
13. Chitralekha Copla, Brahmanas in India A Study based on Inscreptions.
14. E.W. Hopkins, Position of Rulling cast in Ancient India Journal of the American Oriented Society, VIII. 57-376
15. J.H. Huttton, Cast in India, Secedn, Bombay, Oxford 1951.
16. S.V. Ketkar, History of cast in India, 2 Vols Newyork 1909, London.
17. G.H. Mees, Pharma and Society, the Hague 1935.
18. क्षितिमोहन सेन, भारत वर्ष में जाति भेद, कलकत्ता, 1940

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

भारतीय साहित्य और समाज में नारी की स्थिति

❐ डॉ. रेखा रानी*

शोध सारांश

किसी भी समाज की प्रगति का मापदण्ड उस समाज द्वारा स्त्रियों को प्रदत्त पद-प्रतिष्ठा है, क्योंकि स्त्रियाँ प्रत्येक सामाजिक संगठन की आधार और संस्कृति की स्रोत मानी जाती हैं। नारी शक्ति का अपार भण्डार है। नारी परिवार की नींव है, परिवार समुदाय की नींव है, और समुदाय राष्ट्र की। यह आज की ही सच्चाई नहीं है, यह तो आदिकालीन सत्य है क्योंकि प्रसिद्ध विद्वान रायडन ने कहा था—"स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नींव डाली और उन्होंने ही जंगलों में मारे-मारे भटकते-फिरते पुरुषों का हाथ पकड़कर उन्हें स्थित जीवन दिया और 'घर' में बसाया।"[1] देवताओं की वन्दना में माता का स्थान सर्वप्रथम माना गया है—"मातृदेवोभव में यही भावना सन्निहित है। स्मृतिकारों ने भी यह स्वीकार किया है कि जिन वासस्थलों में स्त्रियों की पूजा होती है, वहीं देवता लोग अपना स्थान ग्रहण करते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तेतत्र देवताः।[2]

और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती है वहाँ सम्पूर्ण क्रियाएँ असफल होती हैं—

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः।"[3]

इतना सम्मान प्राप्त होने पर भी कहीं-न-कहीं नारी जो समाज और अध्यात्म को व्यवस्था देने वाली है समाज को सहयोग देने वाली प्रेरणा की अजस्र स्त्रोत थी, उसे शूद्र, पशु और ढोल के समान ताड़ना दिये जाने का अधिकारी बना दिया। परन्तु गुप्तजी जैसे महान कवियों ने अपने काव्य द्वारा समाज में नारी उदय का बीड़ा उठाया। उन्होंने सिद्ध किया कि पुरुष प्रधान समाज में भी नारी की सहायता के बिना प्रगति नहीं की जा सकती है। वह नारी को साधिका, पथ-प्रदर्शिका, जीवन-संगिनी, वीरांगना और सौम्य उदात्त विचारों की प्रतिमा के रूप में देखते हैं।

* बैकुण्ठी देवी, कन्या महाविद्यालय, आगरा।

भारतीय संस्कृति में माता को सबसे बड़ा शिक्षक और देवता माना गया है। नारी जीवन की सार्थकता उसके मातृत्व में निहित है। हमारे प्राचीन साहित्य में ऐसी अनेक यशस्वी माताओं की कथाएँ मिलती हैं जिन्होंने अपनी कोख से वीर पुत्रों को जन्म दिया। उन वीरों ने अपनी यश-पताका संसार में फहराई। परन्तु 'त्रिया चरित्र पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' तो इस पुरुषवादी समाज में वह बहु-उल्लेखित कहावत है जो निश्चित ही किसी पुरुष द्वारा गढ़ी गई होगी। उस पुरुष द्वारा जो स्त्री को एक रहस्य बताकर आधी आबादी को उसके समानता के अधिकार से वंचित करना चाहता था। हमारे सहित्य में स्त्री की सकारात्मक और नकारात्मक छवि को लेकर इतनी अतिवादी उक्तियाँ हैं कि उन्हें पढ़कर 'नारी क्या है' का रहस्य और गहरा हो जाता है। हमारे ग्रन्थों में नारी को समाज में कमतर साबित करने के अनेकों उदाहरण मिल जाते हैं। रामचरितमानस में रावण भी मंदोदरी से कहता है—

''नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं
अवगुण आठ सदा उर रहही।
संशय, अनृत, चपलता, माया
भय, अविवेक, अशौच, अदाया।''[4]

ये आठ अवगुण हैं—संशय, झूठ, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौच और अदाया। अगर इन सब अवगुणों पर गौर किया जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि पुरुष समाज स्त्री को किस दृष्टि से देखता है। इन अवगुणों को स्त्री पर आरोपित करके उसे किस तरह पुरुष सत्ता की गुलाम बनाने की कोशिश की जाती रही है। भक्तिकालीन सन्त कवियों ने तो नारी की खुलकर निन्दा की है। तुलसीदास ने तो नारी की प्रताड़ना करते हुए उसे पशु तथा शूद्र के सदृश माना है—

''ठोल गँवार शूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी''[5]

हमारे साहित्य में जहां तमाम दोहे चौपाइयों से स्त्री की निंदा या उसे उपदेश देने के उदाहरण हैं वहीं नारी की सकारात्मक छवि को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले कवियों में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी के निष्कपट हृदय की स्वाभाविक व्यंजना अपने काव्य के माध्यम से की है। अपने नारी सम्बन्धी विचारों को व्यक्त करते हुए गुप्त जी ने नारी के सम्पूर्ण जीवन को जिन दो पंक्तियों में व्यक्त किया है। वे उनकी नारी भावना को मार्मिकता से अभिव्यक्त करती है—

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।[6]

इन पंक्तियों में नारी को अबला कहते हुए उसकी असमार्थ्य एवं अक्षमता पर दुःख व्यक्त किया गया है। तथा उसमें मातृत्व भाव की प्रबलता को स्वीकार करते हुए उसके जीवन को दुःख से भरा हुआ अवश्य माना है। परन्तु गुप्त जी नारी को नर से हीन नहीं मानते हैं। वे नारी नर से श्रेष्ठ निरूपित करते हैं—

नरकृत शास्त्रों के बन्धन है सब नारी ही को लेकर।
अपने लिए सभी सुविधाएँ, पहले ही कर बैठे नर।''[7]

पुरुष के अत्याचारों से त्रस्त नारी दयनीय शोषित एवं उपेक्षित है। पुरुष उस पर अवश्विास करता है, उसे असहाय समझता है, उस पर अत्याचार करता है। कैसी विडम्बना है इस समाज की, कि जिस पुरुष समाज को नारी जाति ने ही जन्म दिया वही समाज उसे अपने से कमतर समझता है।

नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्त्रोतस्वती।
हां दैव! नारी-जाति की कैसी यहाँ है! दुर्गती।।[8]

गुप्त जी ने नारी दुरावस्था को मुखर वाणी दी है। पुरुष ने उसके अधिकारों का हनन करके अपराध किया। अपनी अर्द्धांगिनी को अधिकारों के नाम पर ठेंगा दिखाने वाला पुरुष ही नारी के शोषण के लिए उत्तरदायी है। गुप्तजी ने भारतीय साहित्य में नारी की महत्ता स्थापित करते हुए उसे द्वापर में विधृता के माध्यम से अपनी नारी भावना को अभिव्यक्ति दी है। वह नारी को अन्याय के प्रति लड़ने वाली तेजस्वनी नारी के रूप में भी चित्रित करते हैं। उनके काव्य की नारी अन्याय के प्रति कभी न झुकने का आहवान करती हुई कहती है—

जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रूक सकती।
इस अन्याय समक्ष मरूँ मैं कभी नहीं झुक सकती।''[9]

गुप्तजी ने नारी के विविध रूपों का चित्रण अपने साहित्य में किया, जो समाज में उसकी सहभागिता को दर्शाता है। कहीं वह कुलवधू है तो कहीं गृहस्थ जीवन का भार वहन करती हुई गृहिणी है, कहीं प्रिया है तो कहीं विरहणी, कहीं वीरांगना के रूप में हुंकार भरती हुई नारी है, तो कहीं पति-परायणा पत्नी होकर सती नारी के आदर्श को वहन करती है। कहीं वह वात्सल्यमयी माँ है तो कहीं जन-सेविका के रूप में समाज के लिए सब कुछ अर्पित कर देने वाली तेजस्विनी नारी के आदर्श स्वरूप को दर्शाती नारी है। भारत-भारती में प्राचीन भारत की झलक देते हुए भारत भूमि की आदर्श नारियों के स्मरण को गुप्तजी ने इस प्रकार से संबोधित करते हुए कहा—

'केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था,
गृह देवियाँ भी थी हमारी देवियाँ ही सर्वथा।
था अत्रि-अनुसूया-सदृश गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,
दांपत्य में वह सौख्या था जो सौख्य था अपवर्ग में।
निज स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेती न वे
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देती न वे।''[10]

गुप्तजी ने आगे चलकर पुनः कहते हैं—

है प्रीति और पवित्रता की मूर्ति-सी वे नारियाँ
है गेह में वे शक्ति-रूपा देह में सुकुमारियाँ
गृहिणी तथा मंत्री स्वपति की शिक्षिता है वे सती।''[11]

गुप्तजी ने नारी को जन-सेविका एवं राष्ट्र-सेविका के रूप में भी चित्रित किया है। वह अपने लिए कुछ न रख कर सर्वस्व समर्पित कर देती है। किन्तु फिर भी उसे इस पुरुष बहुता वाले समाज से आंसुओं के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

'नारी लेने नहीं लोक में देने को आती है।
अश्रु शेष रखकर वह उससे प्रभु पद धो जाती है।''[12]

गुप्तजी का कवि हृदय चित्कार कर उठता है आधुनिक काल की स्त्रियों की दुर्दशा पर वह नारी के प्रति समाज में बदलाव चाहते हैं—

'पाले हुए पशु-पक्षियों का ध्यान तो रखते सभी
पर नारियों की दुर्दशा क्या देखते हैं हम कभी?
हमने स्वयं पशु-वृत्ति का साधन बना डाला उन्हें,
सन्तान-जनने मात्र को वस्तान्न दे, पाला उन्हें।[13]

इन सबके बावजूद आज स्थिति बदल रही है। आज, समता, शिक्षा, स्वावलंबन और स्वाधार के सहारे स्त्री ने पुरुष समाज की बराबरी करना सीख लिया है। इसी तरह के साहित्य प्रयासों से धीरे-धीरे पुरुष मानसिकता में भी बदलाव आ रहा है। इस प्रकार से कवि ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में नारी की स्थिति को सुधारने के लिए भरसक प्रयास किया है। जिससे एक उन्नत राष्ट्र, समाज की उन्नति सम्भव हो सकें।

''सोचो नरों से नारियाँ किस बात में है कम हुई?
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में है भारती के सम हुई।''[14]

निष्कर्ष—संक्षेप में कहा जा सकता है। कि गुप्त जी द्वारा कहे गये नारी के आदर्श आज हर साहित्य और समाज को विचार करने पर ध्यान आकर्षित करते हैं। उनकी नारी भावना उदात्त है उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए उनके, जननी, भार्या, जन-सेविका, प्रिया स्वरूप को उभारा है। जो एक प्रेरणा है। उस पुरुष समाज के लिए जो नारी को बराबर का दर्जा देने से कतराता है।

सन्दर्भ

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, प्र. 50
2. मनुस्मृति 3/56-57
3. मनुस्मृति 3/56-57
4. रामचरितमानस, तुलसीदास
5. रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, तुलसीदास
6. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, प्र. 74
7. भारत-भारती, भविष्यत् खण्ड प्र. 163
8. मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती, वर्तमानखण्ड, प्र.123
9. मैथिलीशण गुप्त, द्वापर, प्र. 106
10. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, भविष्यत् खण्ड प्र. 153
11. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, प्र. 136
12. जय भारत, द्रौपदी और सत्यभामा, प्र. 191
13. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, प्र. 125
14. भारत-भरती, वर्तमान खण्ड, प्र. 136

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

''उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों का अध्ययन''

❒ डॉ. (श्रीमती) योगेश सिंह*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध में उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में प्रतिदर्श के रूप में 100 उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं 100 निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के अर्थात् कुल 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। जिनकी आयु 18 से 22 वर्ष के बीच है। इस अध्ययन में प्रतिदर्श के चयन के लिए स्तरानुसार यादृच्छीकरण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों का धार्मिक रूचि के मध्यमानों में .05 स्तर पर भी सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। जबकि धार्मिक जानकारी के मध्यमानों में .05 स्तर पर सार्थक अन्तर है तथा धार्मिक ज्ञान एवं धार्मिक अनुष्ठान के मध्यमानों में .01 स्तर पर सार्थक अन्तर है।

की वर्ड्स : *धर्म, अभिवृत्ति, उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी, निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी।*

प्रस्तावना

वर्तमान समाज में व्यक्तित्व को संगठित, समायोजित एवं स्थित–प्रज्ञ बनाए रखने के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन संवेगों के आघात से उद्वेलित मानव अपने को समायोजित नहीं कर पा रहा है क्योंकि वह जीवन के महत्वपूर्ण पक्ष से दूर हटता जा रहा है। मनुष्य को संगठित बनाने में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि धर्म के द्वारा ही वह अपने दायित्वों का समुचित ढंग से निर्वाह कर सकता है। धर्म केवल कोरी आस्था या विश्वास ही नहीं है बल्कि धर्म का अर्थ है उन मूल्यों को धारण करना जो मानव में अपेक्षित गुणों का विकास करता है। धर्म मनुष्य को दुख से निकालकर सुख की शीतल गोद में ले जाता है, असत्य से सत्य की ओर ले जाता है, अन्धकारपूर्ण हृदय में अपूर्व ज्योतिपुंज भर देता है। धर्म ही

* सहायक प्रवक्ता (समाजशास्त्र विभाग), श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुन्झुनू (राजस्थान)

अत्याचार का विनाश कर धर्म राज्य की स्थापना में सेतु बनता है। महाराणा प्रताप और शिवाजी का नाम हिन्दू जाति में धर्माभिमान के कारण ही अमर है, गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों ने धर्म के लिए दीवार में चुना जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया था, ईसा मसीह धर्म के लिए ही सूली पर चढ़े थे। सर्वथा धर्म रहित कल्पना ही विचारवान् पुरुष के हृदय को हिला देती है। जिस प्रकार धार रहित तलवार का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार धर्म रहित मानव का कोई अस्तित्व नहीं है। वह मनुष्य होकर भी हिंसक पशुओं की भाँति है। आज जिस गति से धर्म का लोप हो रहा है उसका प्रभाव यह है कि समाज के सभी वर्ग के लोग उससे प्रभावित हो रहे हैं।

आज के इस भौतिकवादी युग में हमारी संस्कृति अपने आधार से निरन्तर अलग हटती हुई पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हो रही है। जिसका परिणाम यह है कि धार्मिक मूल्यों और प्रवृत्तियों में परिवर्तन हो रहा है, प्राचीन मान्यतायें घटती जा रही हैं और मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसके अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि समाज में जैसे–जैसे भौतिक साधनों की वृद्धि होती है, मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष सिमटने लगते हैं और इनमें पाखण्ड, अनाचार, दुराचार, बलात्कार जैसी क्रूर और नृशंस प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगती हैं। इन प्रवृत्तियों का अन्त धर्म द्वारा ही सम्भव है। धर्म के द्वारा ही व्यक्ति और समाज का चहुँमुखी विकास होता है क्योंकि धर्म एक मर्यादा है जो अर्थ और काम पर नियंत्रण रखकर व्यक्ति को पथ भ्रष्ट होने से रोकती है और उसे वास्तविक कृत्यों का बोध कराती है। धर्म का अर्थ केवल ईश्वर की आराधना मात्र ही नहीं है, अपितु इसका अर्थ अपने और समाज के प्रति कर्त्तव्यों के समुचित ज्ञान से है। धर्म परायणता के अभाव में मानव समाज धर्मान्धता की ओर बढ़ रहा है। इसलिये वह मानवीय और सामाजिक भावनाओं से ओत–प्रोत न होकर साम्प्रदायिक भावनाओं का शिकार हो रहा है, उसमें विसर्जन और विघटन के भाव उत्पन्न हो रहे हैं। विद्यार्थियों में जहाँ धार्मिक अभिवृत्तियों का ह्रास हो रहा है वहीं उनमें आत्मकेन्द्रीयता की अभिवृत्ति विकसित हो रही है। जो कुछ भी हो, किसी न किसी रूप में धर्म में प्रत्येक व्यक्ति आस्था व विश्वास रखता है। सृष्टि का अस्तित्व उसका साक्षी है कि धर्म के प्रति आस्था के अंकुर मनुष्य के मस्तिष्क में समूल नष्ट नहीं हुये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण में विशेष रूप से बदलाव आया है लेकिन यह प्रत्येक गुण में किसी न किसी रूप में जहाँ एक ओर क्षीण हुआ है, और वहीं नवीन रूप में उदय भी हुआ है। जैसा मनीषियों ने यह व्यक्त किया है कि जब धरा पर अधर्म का साम्राज्य होता है तब किसी न किसी रूप में धर्म की स्थापना अवश्य होती है। धर्म मानव जीवन की एक आधारशिला है जो उसके अस्तित्व को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म मूल्यों का निर्माण करता है, उन्हें स्थापित करता है, उन्हें पवित्रता प्रदान करता है, उन्हें प्रतीकात्मकता देता है और फिर उनका पालन करता है। धर्म का मूल्यों एवं नियमों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य है। व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित करने और सामाजिक मूल्यों में व्यक्तियों में निष्ठा उत्पन्न करने के क्षेत्र में भी धर्म ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में धर्म की अत्यधिक महत्ता है। धर्म एक मर्यादा है जो अर्थ और काम पर नियंत्रण रखकर व्यक्ति को पथ–भ्रष्ट होने से रोकता है और उसे उसके वास्तविक कर्त्तव्यों का बोध करता है। इसलिये धर्म मानव समाज का एक अभिन्न अंग है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'धृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है धारण करना अर्थात् सभी जीवों के प्रति मन में दया धारण करने को ही धर्म कहा गया है। धर्म वह जीवन पद्धति है। जिसके द्वारा लौकिक उत्कर्ष और केवल्य पद प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ इससे आध्यात्मिक परम सिद्धि भी प्राप्त होती है। धर्म का तात्पर्य केवल ईश्वर की उपासना से ही नहीं है, बल्कि धर्म का अर्थ अपने और समाज के प्रति कर्त्तव्यों के समुचित ज्ञान से है।

धर्म को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

एडवर्ड टायलर के अनुसार– ''धर्म का तात्पर्य किसी आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।''

मैलिनोवस्की के अनुसार– ''धर्म क्रिया की एक विधि है और साथ ही विश्वासों की व्यवस्था है। धर्म समाजशास्त्रीय तथ्य के साथ एक अनुभव है।''

राधाकृष्णन के शब्दों में – ''धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन स्वरूपों तथा प्रक्रियाओं को लाते हैं, जो मानव जीवन का निर्माण करती हैं तथा उसको धारण करती हैं।''

मजूमदार तथा मदान के अनुसार– ''धर्म किसी भय की वस्तु अथवा शक्ति के प्रति मानवीय प्रत्युत्तर है जो कि अलौकिक तथा अतीन्द्रिय है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति तथा अनुकूलन का वह तरीका है जो लोगों की अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित है।''

मानव व्यवहार को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में अभिवृत्तियाँ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सामान्यतः किसी व्यक्ति, वस्तु, विषय या समूह के प्रति व्यक्ति के प्रात्यक्षिक झुकाव, पूर्ण प्रवणता, अनुक्रिया, तत्परता या मानसिक प्रवृत्ति को अभिवृत्ति के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति अपने परिवेश में विद्यमान वस्तुओं, व्यक्तियों, संस्थाओं या परिस्थितियों के सम्बन्ध में एक निश्चित ढंग से सोचता है, अनुभव करता है तथा व्यवहार करता है। उसका ढंग उसकी अभिवृत्तियों से ही निर्देशित और नियंत्रित होता है।

अभिवृत्तियों का सम्बन्ध व्यवहार के मानसिक पक्ष से होता है। अभिवृत्तियाँ ही व्यक्ति के व्यवहार को एक दिशा प्रदान करती हैं। किसी भी व्यक्ति की अभिवृत्तियों को जानकर उसके व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अभिवृत्ति व्यक्ति के मन की वह दशा है जो उसके मनोभाव को व्यक्त करती है। जैसेः किसी नवयुवक या नवयुवती से बाल विवाह, गन्धर्व विवाह या विधवा विवाह के सम्बन्ध में उसकी अभिवृत्तियों के द्वारा उपयुक्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार अलग–अलग परिस्थिति, वस्तु, व्यक्ति या समूह के सम्बन्ध में अलग–अलग व्यक्तियों का वह मानसिक बिम्ब जो इन सबके प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है, वही उसकी अभिवृत्ति को व्यक्त करता है।

अभिवृत्ति शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एपट्स' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ योग्यता या सुविधा से है। हरवर्ट स्पेन्सर (1862) ने सर्वप्रथम अपने 'फर्स्ट प्रिन्सीपल' में इसकी चर्चा की है।

अभिवृत्ति को अनेक मनोवैज्ञानिक ने अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। जिसमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें इस प्रकार हैंः–

ऑलपोर्ट के अनुसार– ''अभिवृत्ति मानसिक एवं स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है जो अनुभव द्वारा निर्धारित होती है तथा जो उन समस्त वस्तुओं एवं परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित एवं निर्देशित करती हैं। जिनसे अभिवृत्ति सम्बन्धित है।''

थर्स्टन के अनुसार– ''मनोवैज्ञानिक पदार्थ से सम्बन्धित सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव की

मात्रा ही अभिवृत्ति है।'' सकारात्मक प्रभावों में जहाँ व्यक्ति किसी मनोवैज्ञानिक पदार्थ के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति बना लेता है, उसे पसन्द कर लेता है वहीं नकारात्मक प्रभावों में व्यक्ति किसी मनोवैज्ञानिक पदार्थ के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति बना लेता है, उसे नापसन्द करता है।

उदाहरण के लिए : यदि शिक्षा के प्रति हमारी अभिवृत्ति सकारात्मक है तो शिक्षा से हमें राग होगा और यदि नकारात्मक है तो हमें शिक्षा से विराग होगा।

क्रच एवं क्रच फील्ड के अनुसार–''अभिवृत्ति की परिभाषा व्यक्ति की दुनिया के किसी पहलू की ओर प्रेरणात्मक, सम्वेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक एवं विचारात्मक प्रक्रियाओं के एक स्थायी संगठन के रूप में की जा सकती है।''

इन उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अभिवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या किसी परिस्थिति के प्रति चेतन एवं मानसिक प्रतिक्रिया है, जो व्यक्ति को एक विशिष्ट ढंग से सोचने, विचारने और व्यवहार करने को प्रेरित करती है। धार्मिक अभिवृत्ति के सम्बन्ध में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख दृष्टिकोण निम्न प्रकार हैं–

ज्योरडानो एवं अन्य (2012) ने अपने अध्ययन के लिए 177 प्रयोज्यों का नर्सिंग चिकित्सा, व्यावसायिक चिकित्सा, फार्मेसी एवं भौतिक चिकित्सा के संदर्भ में जानकारी के लिए चयन किया। इसके लिए प्रयोज्यों के पाठ्यक्रम को दो साल के नियमित शैक्षिक संदर्भ में देखा गया। इस संदर्भ में इन छात्रों को एक वर्ष के अंत में लगभग 496 मरीजों को सौंपा गया। इसमें स्वायत्तता एवं व्यावसायिक सहयोग के संदर्भ में यह देखा गया कि अधिकांशतः छात्र अपने व्यवसाय से सम्बन्धित दृष्टिकोण में सकारात्मक पक्ष प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में यह भी प्रस्तुत किया गया कि शिक्षा का प्रत्येक पेशे की भूमिका पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उच्च शैक्षिक स्तर से सम्बन्धित विद्यार्थी अपने पेशे पर सर्वाधिक ध्यान रखते हैं तथा उसके अनुरूप अपनी सामर्थ्य को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवसायों पर शिक्षा का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त शिक्षा छात्रों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन प्रस्तुत करती है।

ऑटेकहरा, सुनचई कोल एवं अन्य (2008) ने बैंकाक एवं थाईलैंड के दो विश्वविद्यालयों के 1000 स्नातकों पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया तथा यह जानने का प्रयास किया कि धर्म एवं पर्यावरण के संदर्भ में इनका दृष्टिकोण किस प्रकार का है। इस अध्ययन के परिणाम यह प्रस्तुत करते हैं कि छात्रों के धार्मिक दृष्टिकोण एवं पर्यावरण के प्रति उनके दृष्टिकोण में पर्याप्त सकारात्मक सम्बन्ध देखे गये।

एस्ले, जेफ एवं अन्य (2012) ने ईसाई, यहूदी, इस्लाम एवं हिन्दू धर्म से सम्बन्धित 284 प्रयोज्यों, जिनमें 200 महिला एवं 94 पुरुष प्रयोज्यों का चयन किया तथा जिनकी आयु 16 से 18 वर्ष के बीच थी, अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। इन्होंने प्रत्येक धर्मों से सम्बन्धित छात्रों की धार्मिक अभिवृत्ति को मापने के लिए अलग–अलग धार्मिक मापनियों का प्रयोग किया। जिससे विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित छात्रों की धर्म सम्बन्धी अभिवृत्ति का उपयुक्त ज्ञान हो सके। इस प्रकार अध्ययन का परिणाम यह व्यक्त करता है कि प्रत्येक धर्मों के छात्र धार्मिक विश्वास को विशेष महत्व देते हैं। प्रत्येक धर्म से सम्बन्धित छात्र एवं छात्रायें धार्मिकता की पृष्ठभूमि में धर्म के प्रति अपने विश्वास को अत्यधिक महत्व देते हैं।

सिंह, विनीता (2006) ने विद्यार्थियों की धार्मिकता एवं लिंग भेद के संदर्भ में अपना अध्ययन प्रस्तुत किया। अपने अध्ययन के लिए इन्होंने 240 उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के

छात्र–छात्राओं का चयन किया। इन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया कि धार्मिकता एवं लिंग की पारस्परिक अतः क्रियाओं का प्रभाव सामाजिक दूरी पर स्पष्ट रूप से देखा गया है।

ओडेड स्टार्क (2010) ने यह व्यक्त किया कि अधिक आयु के माता–पिता धार्मिकता को विशेष महत्व देते हैं। वस्तुतः धार्मिकता एक प्रकार से प्रभावशाली चर के रूप में कार्य करती है तथा जो इस पर धनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इस संदर्भ में यह भी देखा गया है कि बहुत से परिवारों में बड़े–बूढ़े तथा बच्चों के बीच सामान्य तथ्य देखने को क्यों नहीं मिलते। इसके साथ ही साथ इनकी संख्यायें भी सीमित होती हैं। परिणाम यह भी व्यक्त करते हैं कि धार्मिकता तथा माता–पिता को सहायता में बच्चों के लिंग का विशेष महत्व होता है। यह भी पाया गया है कि अत्यधिक धार्मिक बच्चों, प्रौढ़ों की पुत्रियाँ अपने माता–पिता के लिए अपेक्षाकृत पुत्रों के अधिक सहायक होती हैं।

परिकल्पना–

उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

विधि–

प्रतिदर्श–

प्रस्तुत अध्ययन में अलीगढ़जनपद के 100 उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं 100 निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के अर्थात् कुल 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। जिनकी आयु 18 से 22 वर्ष के बीच है। इस अध्ययन में अलीगढ़ जनपद के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले केवल हिन्दू विद्यार्थियों को ही लिया गया है। प्रतिदर्श के चयन के लिए स्तरानुसार यादृच्छीकरण विधि का प्रयोग किया गया है।

चर

चर–प्रस्तुत अध्ययन में चरों का वर्णन निम्नलिखित है –

1. स्वतंत्र चर – प्रस्तुत अध्ययन के स्वतंत्र चर निम्नलिखित हैं–

(क) उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर

(ख) निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर

2. आश्रित चर – प्रस्तुत अध्ययन के आश्रित चर निम्नलिखित हैं –

(अ) धार्मिक जानकारी, (ब) धार्मिक ज्ञान, (स) धार्मिक रूचि, (द) धार्मिक अनुष्ठान

3. प्रांसगिक चर – प्रस्तुत शोध अध्ययन में कुछ प्रमुख प्रांसगिक चर इस प्रकार हैं –

(क) क्षेत्र, (ख) संस्कृति, (ग) लिंग, (घ) संकाय, (ड) जाति, (च) अभिप्रेरणा, (छ) व्यवसाय आदि

अध्ययन सामग्री –

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन के लिए डॉ0 आर0पी0 सिंह द्वारा निर्मित 'धार्मिकता स्तर मापा' का प्रयोग किया गया है। धार्मिकता स्तर मापा में धर्म के चार पक्षों जैसे– धार्मिक जानकारी, धार्मिक ज्ञान, धार्मिक रूचि एवं धार्मिक अनुष्ठान को प्रस्तुत किया गया है। इस मापनी के प्रत्येक पक्ष में 15 पदों को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार मापनी में कुल 60 पद दिये गये हैं।

विश्वसनीयता–

धार्मिकता स्तर मापा के इन चार पक्षों के लिये परीक्षण पुनः परीक्षण विधि द्वारा विश्वसनीयता का निर्धारण किया गया। जिसमें प्रतिदर्श के रूप में 100 युवकों एवं 100 वृद्धों को सम्मिलित किया गया। परीक्षण तथा पुनः परीक्षण के मध्य में तीन सप्ताह का अन्तराल रखा गया। धार्मिकता स्तर मापा के चार पक्षों के लिये प्राप्त किये गये सह–सम्बन्ध गुणांक इस प्रकार हैं :–

तालिका सं0 1

क्र.सं.	धार्मिकता स्तर मापा	युवक	वृद्ध
1	धार्मिक जानकारी	+0.74	+0.76
2	धार्मिक ज्ञान	+0.80	+0.76
3	धार्मिक रूचि	+0.78	+0.82
4	धार्मिक अनुष्ठान	+0.72	+0.78

वैधता–

प्रस्तुत मापनी की वैधता ज्ञात करने के लिये 'प्रोडेक्ट मोमेण्ट विधि' का प्रयोग किया गया है। जिसमें मापनी के प्रत्येक भाग के प्राप्तांकों के बीच सह–सम्बन्ध गुणांक ज्ञात किये गये हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है–

तालिका सं0 2

क्र. सं.	धार्मिकता	धार्मिक ज्ञान		धार्मिक रूचि		धार्मिक अनुष्ठान	
	स्तर मापा	युवक	वृद्ध	युवक	वृद्ध	युवक	वृद्ध
1.	धार्मिक जानकारी	+0.70	+0.72	+.68	+.65	+.62	+.58
2.	धार्मिक ज्ञान	-	-	+.65	+.62	+.57	+.55
3.	धार्मिक रूचि	-	-	-	-	+.72	+.75

प्रक्रिया–

प्रस्तुत शोध कार्य अलीगढ़ जनपद के उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर किया गया है। इसके लिए प्रतिदर्श में चुने गये सभी विद्यार्थियों पर परीक्षण को अनुशासित किया गया है। इस मापनी से प्राप्त प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। जिससे कि उपयुक्त निष्कर्ष प्राप्त हो सकें।

परिणाम एवं विवेचन –

एकत्रित प्रदत्तों का सारणीकरण एवं विश्लेषण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका सं0 3

उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–मूल्यों को प्रदर्शित करने वाली तालिका

धार्मिक अभिवृत्ति	उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी			निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी			एस.ई.डी.	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर
	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन			
धार्मिक जानकारी	100	34.67	4.97	100	36.00	5.16	0.57	2.33	x
धार्मिक ज्ञान	100	28.67	5.10	100	26.33	4.67	0.55	4.25	xx
धार्मिक रूचि	100	33.00	5.00	100	32.00	5.33	0.58	1.72	NS
धार्मिक अनुष्ठान	100	33.00	4.98	100	34.91	5.11	0.57	3.35	xx

नोट : NS = 0.05 स्तर पर भी सार्थक नहीं है।
x = 0.05 स्तर पर सार्थक।
xx = 0.01 स्तर पर सार्थक।

उच्च एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों के मध्यमानों को प्रदर्शित करने वाला स्तम्भ चित्र

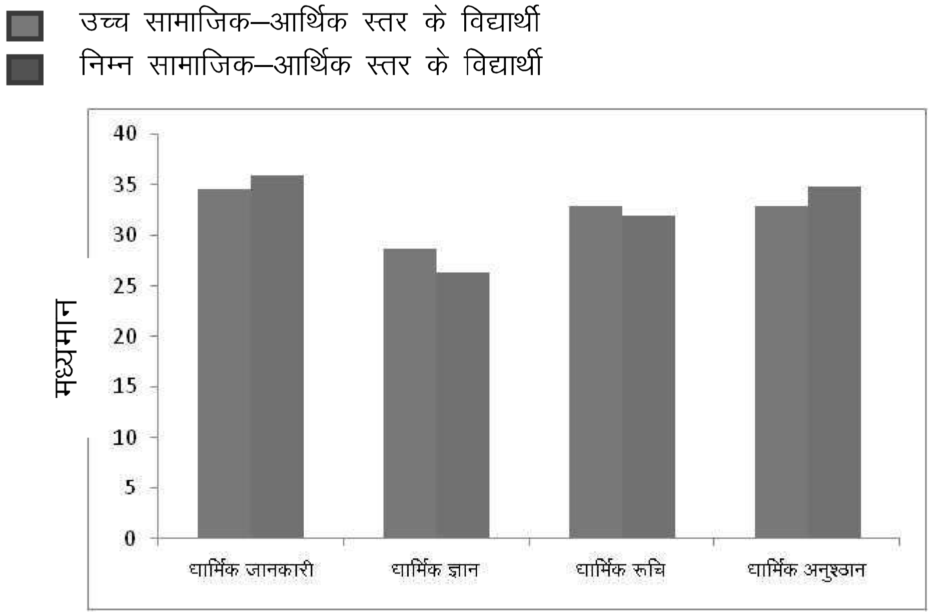

धार्मिक अभिवृत्तियों के क्षेत्र

तालिका संख्या 3 के परिणामों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि धार्मिक अभिवृत्ति के धार्मिक जानकारी एवं धार्मिक अनुष्ठान में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्यमान से अधिक है तथा इनके मध्यमानों का अन्तर धार्मिक जानकारी एवं धार्मिक अनुष्ठान के लिये क्रमशः .05 एवं .01 स्तर पर सार्थक है। इस सन्दर्भ में तार्किकता के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में प्रत्येक जाति,

धर्म एवं समाज के लोग मानव जीवन के विभिन्न आयामों को हल करने में अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दे रहे हैं। यह सत्य है कि आज उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोग धर्म सम्बन्धी विभिन्न आयामों में अन्य सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोगों की तुलना में पीछे नहीं है। किन्तु यह देखा गया है कि वर्तमान भौतिकवादी पर्यावरण में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप सफलता न प्राप्त करने के कारण धर्म के विविध आयामों को आत्मसात् करने में विशेष रूप से तत्पर दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि धार्मिकता का सम्बल उनके विचारों, भावों एवं कृत्यों को संगठनात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। ऐसी स्थिति में वह बच्चे भी अपने माता–पिता व अभिभावकों की तरह धर्म सम्बन्धी विविधताओं को जानने और धार्मिक कृत्यों को अपनाने के लिये प्रत्यनशील रहते हैं क्योंकि सामाजिक जीवन में मनुष्य अभावग्रस्त होने पर धार्मिक संवलों को विशेष महत्व देता है। शायद यही कारण है कि निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में धार्मिक जानकारी एवं धार्मिक अनुष्ठान को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। इसीलिए इनके मध्यमानों में सार्थक अन्तर परिलक्षित हुआ है। धार्मिक अभिवृत्ति के धार्मिक ज्ञान में उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्यमान से अधिक है और इनके मध्यमानों का अन्तर .01 स्तर पर सार्थक है। इस परिदृश्य में हम यह कह सकते हैं कि उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी अपनी पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में जिस प्रकार की धार्मिक विविधताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा अनेक प्रकार की पुस्तकीय एवं संचार सम्बन्धी सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। इस सन्दर्भ में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों को धार्मिक ज्ञान सम्बन्धी सुविधायें नहीं मिल पाती हैं क्योंकि अपनी अविकसित सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के कारण विद्योपार्जन के साथ–साथ अनेक प्रकार की श्रमिक व्यवस्थाओं में प्रायः लिप्त रहते हैं। शायद यही कारण है कि धार्मिक ज्ञान में इन दोनों समूहों के मध्यमानों में इस प्रकार का सार्थक अन्तर परिलक्षित हुआ है। धार्मिक अभिवृत्ति की धार्मिक रूचि में उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्यमान से अधिक है किन्तु इनके मध्यमानों का अन्तर .05 स्तर पर भी सार्थक नहीं पाया गया। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक एवं सामाजिक स्तरों की विभिन्नतायें इन दोनों सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के अनेक स्वरूपों को भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। प्रायः यह देखा गया है कि उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी यातायात एवं संचार की सुविधाओं से निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक लाभान्वित होने के कारण धर्म के विस्तृत आयामों को जानने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी सामाजिक–आर्थिक स्तर की सीमाओं में आबद्ध होने के बावजूद भी सामाजिक सन्दर्भों में उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के प्रतिमानों को अपनाने का अनवरत् प्रयास करते हैं। शायद यही कारण है कि धार्मिक अभिवृत्ति के धार्मिक रूचि में इनके मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त परिणामों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उच्च एवं निम्न सामाजिक–

आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की धार्मिक अभिवृत्तियों में सार्थक अंतर होता है। अतः हमारी निराकरणीय परिकल्पना अस्वीकार की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपाध्याय, आचार्य बलदेव (1977) : भारतीय धर्म और दर्शन, प्रकाशक– चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
2. एस्ले, जेफ एवं अन्य (2012) : एसेसिंग एटीट्यूड टूवर्ड्स रिलीजनः द एस्टले फ्रांसिस स्केल ऑफ एटीट्यूड टूवर्ड्स थीसटिक फेथ, ब्रिटिश जर्नल ऑफ रिलीजियस एजूकेशन, वॉ0 34(2), पृ. 183–193
3. ओंटेकहरा, सुनचई कोल एवं अन्य (2008) : रिलीजस आउटलुक एडं स्टूडेट्स एटीटयूडस टूवर्ड द एनविरोनमेंट, जर्नल ऑफ विलीव्स एंड वैल्यूज, वॉ0–29 (3), पृ. 305–311
4. ओडेड स्टार्क (2010) : डू रिलीजियस चिल्ड्रन केअर मोर एंड प्रोवाइड मोर केअर फॉर ओल्डर पेरेन्ट्स? ए स्टडी ऑफ फिनिअलं नॉर्मस एड बिहेवियर्स ए क्रॉस फाइव नेशस, जर्नल ऑफ कापेरेटिव फेमिली स्टडीज, वॉ0–41, नं0–4, पृ. 629–631
5. चौहान, बी0आर0 (2005) : मनोविज्ञान (तृतीय संस्करण) प्रकाशक–आजाद पब्लिकेशन, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र।
6. ज्योरडानो एवं अन्य (2012) : एटीट्यूड्स ऑफ फैकल्टी एंड स्टूडेंट्स इन मेडिसिन एंड द हैल्थ प्रोफेसन टूवर्ड्स इंटर प्रोफेशनल एजूकेशन, जर्नल ऑफ एप्लाइड हैल्थ, वॉ0–41 (1), पृ. 21–25
7. सिंह, अरूण कुमार : समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रकाशक– मोती लाल बनारसी दास, चौक, वाराणसी।
8. सिंह, विनीता (2006) : विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का मूल्य (भौतिक), धार्मिकता एवं लिंग भेद के संदर्भ में अध्ययन। पी–एच.डी. उपाधि हेतु डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा को प्रस्तुत शोध प्रबंध (अप्रकाशित)।
9. सुलैमान, मुहम्मद : उच्चतर समाज मनोविज्ञान, प्रकाशक–मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

वृद्धावस्था में प्रसन्न रहने के आध्यात्मिक सूत्र

❑ वर्षा गौतम*

वृद्धावस्था जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है जो हम सबके जीवन का अनिवार्य तत्व है। एक न एक दिन सभी के जीवन में यह पड़ाव अवश्य आता है। परन्तु यथार्थ यह है कि कोई इस अवस्था को स्वीकार करना नहीं चाहता।

बचपन या बाल्यवस्था सभी के अभिलषित क्षण होते हैं। न सिर्फ बच्चे बल्कि बड़े भी उसका पूर्ण आनन्द लेते हैं। युवावस्था सभी के आकर्षण का केन्द्र होती है। हम सभी चिर युवा रहना चाहते हैं। इनके विपरीत वृद्धावस्था को अवांछित तथा कष्टप्राय समझा जाता है।

प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों? जीवन की अन्तिम अवस्था जो जीवन का अनिवार्य अंग होने के साथ-साथ जीवन जीने का अन्तिम मौका भी है, उसे इतनी उपेक्षा भरी दृष्टि से क्यों देखा जाता है कि उस अवस्था में आने वाला प्रत्येक मनुष्य यह सोचने पर विवश हो जाता है कि इसके क्या प्रभाव है, और उम्र के इस पड़ाव पर प्रसन्न कैसे रहा जा सकता है।

इससे पूर्व यह देखना आवश्यक है कि वृद्धावस्था के विषय में सामान्य दृष्टिकोण या मान्यतायें क्या हैं? विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार—''विश्व भर में 50 से 65 वर्ष की उम्र के बाद के जीवन को वृद्धावस्था का अंग माना जाता है।'' भारतीय कानून तथा सरकार की भी मान्यताओं के अनुसार एक व्यक्ति इसी उम्र से वृद्धावस्था में प्राप्त होने वाले विशेष अधिकारों जैसे पेंशन और अन्य विशेष छूटें इत्यादि के योग्य हो जाता है।

विकीपीडिया में दी गई एक अन्य परिभाषा के अनुसार—''वृद्धावस्था समय के साथ मनुष्य के जीवन में होने वाले परिवर्तनों का एक समूह है, जिनमें शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक परिवर्तन शामिल है।

वृद्धावस्था के प्रभाव

वृद्धावस्था का प्रभव उसके अर्थ की ही तरह बहुआयामी होता है। इसका प्रभाव शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक रूप में हमारे समक्ष आता है। इन प्रभावों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

शारीरिक प्रभाव

वृद्धावस्था में शरीर में अनेक परिवर्तन आते हैं। इन परिवर्तनों में मांसपेशियों का ढीला पड़ना, त्वचा का सिकुड़ना या लटकना, दृष्टि तथा श्रवण आदि इन्द्रियों का शिथिल पड़ जाना, हड्डियों का कमजोर हो जाना, बालों का झड़ना या सफेद होना, स्मरण शक्ति का ह्रास होना, चय-पचय प्रणाली का धीमा हो जाना इत्यादि शामिल है। इन सबसे मनुष्य के पाचन-तन्त्र, नींद तथा रोग-प्रतिरोधक क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है।

मानसिक प्रभाव

मानसिक रूप से मनुष्य वृद्धावस्था में अधिक जल्दी अवसाद तथा अकेलेपन का अनुभव करता है। शारीरिक अक्षमतायें तथा विभिन्न शारीरिक कष्ट सामाजिक सक्रियता में कमी, इन सब कारणों से मनुष्य मानसिक रूप से अशक्त अनुभव करता है।

* अतिथि व्याख्याता (बी.एड. विभाग), अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सामाजिक प्रभाव

इस सब प्रभावों को समाज में इस नकारात्मक दृष्टिकोण से लिया जाता है, जैसे अब मनुष्य अपनी समस्त जीवन की उपलब्धियों तथा योग्यताओं से भी रिटायर हो गया हो। यहाँ तक कि उसकी समस्त चारित्रिक विशेषताओं, बहुमूल्य अनुभव तथा परिपक्व समझ को भी मूल्यहीन माना जाने लगता है तथा उसे सामाजिक जीवन में अनुपयोगी तथा महत्त्वहीन सिद्ध सा कर दिया जाता है।

वृद्धावस्था में प्रसन्न कैसे रहा जाए?

कहा जाता है कि स्वस्थ्य मन ही स्वस्थ्य तन का आधार होता है, यदि व्यक्ति मन से स्वस्थ है तो वह शारीरिक रूप से भी स्वस्थ होगा और मन को स्वस्थ्य रखने के लिए आवश्यक है कि आस-पास का वातावरण भी स्वस्थ्य हो पर वातावरण को स्वस्थ्य बनाने की जिम्मेदारी किसकी है। इस सवाल का जवाब हमारे अन्दर ही है। अपने वातावरण को स्वस्थ्य बनाने की जिम्मेदारी हमारी ही है। आज हम आधुनिकता जीवन जी रहे हैं। हम अपने मूल्यों से दूर हो रहे है। हमारी जड़ों को मजबूत हमारे संस्कार और संस्कृति करती है। अतः जरूरी है कि हम अध्यात्म से जुड़े। बौद्ध धर्म हमें सिखाता है खुश रहना, हमेशा खुश रहने के बारे में बताता है। खोजकर्ताओं ने तीन पक्षों की खोज की है जो उम्र के साथ खुशी को बढ़ाते हैं, वो तीन पक्ष है—आभार, कृतज्ञता और पुनर्निर्माण। बौद्ध धर्म के अनुसार यह आश्चर्यजनक नहीं होगा कि ये तीनों पक्ष खुशी प्रकट करते हैं। हम इनमें दो पक्ष और जोड़ सकते हैं—जिज्ञासा और लचीलापन। अतः कुल 5 पक्ष हैं जो उम्र के साथ-साथ खुशी को भी बढ़ाने में सहायक होते हैं, ये 5 सूत्र निम्नवत् हैं—

कृतज्ञता (आभार प्रदर्शन)—जब मनुष्य जन्म लेता है तो उस पर उसके माता-पिता का ऋण रहता है, क्योंकि उसको जीवन देने तथा पालन-पोषण करने का श्रेय उन्हीं को होता है। अतः एक बच्चे के लिए आवश्यक है कि वो अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञ रहे और अपनी कृतज्ञता को वो अपनी जिम्मेदारी, ईमानदारी से निभाकर प्रकट कर सकता है। ये पक्ष दोनों पहलू में कार्य करता है। यदि बच्चे अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञ हैं, तो उन्हें माता-पिता या फिर वृद्धावस्था में दादा-दादी, या नाना-नानी बनाने का श्रेय उन्हीं बच्चों को जाता है, जो उनकी वंशबेल को आगे बढ़ाता है। अतः माता-पिता को भी अपने बच्चों के प्रति कृतज्ञता (आभार प्रदर्शन) में कमी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जब वो छोटों को सम्मान देंगे तो वो छोटे भी उन्हीं से सीखेंगे।

उदारता—पीढ़ी दर पीढ़ी विचारों में परिवर्तन आता जाता है। हर नई पीढ़ी के साथ एक नया विचार एवं नई क्रांति आती है। जिस सोच के साथ एक माता-पिता अपने बच्चों का पालन-पोशण करते हैं। जरूरी नहीं है कि वही बच्चा जब अभिभावक बनेगा तो वो भी उसी सोच के साथ अपने बच्चों का पालन-पोषण करेगा। अतः उस परिवर्तन को अपनाना एक उदारता का परिचय होता है। अतः परिवर्तन को मर्यादित सीमा के अन्दर अपनाना उदारता कहलाता है और घर के बड़े-बुजुर्गों को अपने स्वभाव में उदारता लाना चाहिए।

पुनर्निर्माण—पुनर्निर्माण की आवश्यकता हमें उम्र के उस पड़ाव पर पड़ती है जब हम नौकरी से सेवानिवृत्त होते है। कई बार उस समय अवसाद की स्थिति आ जाती है। अतः उस वक्त पुनर्निर्माण की आवश्यकता होती हैं, उस समय ये सोचना चाहिए कि एक नया जीवन मिला है। जीवन में सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है बल्कि अब एक नई शुरूआत करना है। जीवन का एक नया अध्याय शुरू करना है।

जिज्ञासा—कहा जाता है कि एक बुजुर्ग व्यक्ति एक बच्चे के बाराबर होते हैं। कारण है कि एक बच्चा दुनिया को समझने के लिए प्रश्न करता है और एक बुजुर्ग व्यक्ति समूह में रहने के लिए बार-बार प्रश्न करता है, 'क्या हो रहा है?', कैसी हो?, क्या हाल है? आदि।

जिस तरह हम अपने बच्चे की जिज्ञासा को संतुष्ट करते है। उसी प्रकार उनके हर प्रश्न का जवाब देना चाहिए। क्योंकि बुजुर्ग व्यक्ति उस उम्र में अपने आपको अकेला महसूस करने लगते हैं।

लचीलापन—व्यक्ति में लचीलापन का गुण बहुत महत्त्वपूर्ण है, लचीलेपन के द्वारा हम अपने आस-पास के लोगों को अपने करीब कर सकते हैं। क्योंकि अच्छे व्यवहार के द्वारा ही बुजुर्ग अपने लोगों के बीच अपनी जगह बना लेते हैं। हमारे आस-पास बहुत-से परिवर्तन होते हैं। कुछ अटल होते हैं जिनको बदला नहीं जा सकता, परन्तु कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं जिनके साथ-साथ खुद को भी बदला जा सकता है, और उसको अपनाने में कोई बुराई नहीं होती है।

निष्कर्ष

आज समाज में बुजुर्गों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वो अपने आपको घर का एक सामान समझने लगते है। जिसका कोई मूल्य नहीं होता। इस वजह से वो अवसाद से ग्रसित हो जाते है। और यदि इस उम्र में उनका कोई साथी बिछड़ जाता है तो उनका अकेलापन और बढ़ जाता है और इस कारण इनका चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। फलस्वरूप वो घर के लोगों को गुस्सा करते रहते है। हर समय कुछ न कुछ माँग करते हैं या फिर गाली-गलौच करते रहते हैं। फलस्वरूप वो परिवार वालों के लिए सिरदर्द और बोझ बनने लगते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए अच्छी परिस्थिति चाहता है और प्रगतिशील बनना चाहता है। यदि वह बढ़ती उम्र के साथ-साथ ध्यान, योग और आध्यात्म को अपनाते हैं और साथ ही साथ ऊपर लिखी पाँच बातों को अपने जीवन में उतारते हैं तो वो अपने अन्दर बदलाव पायेंगे और अपने आस-पास के वातावरण को स्वस्थ्य और शांत बना सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Spirtual Practices for aging wll by the blog 12/29/2011 06:28 AKET Fed 28, 2012, Lewis Richmond (Buddhist Writer and Teacher)
2. वृद्धावस्था में सुखी जीवन—सत्येन्द्र नाथ राय

आदिवासी–स्वास्थ्य सुविधाएँ (पुष्पराजगढ़ तहसील के विशेष सन्दर्भ में)

❑ डॉ. प्रभात सिंह ठाकुर*
❑ डॉ. अश्विनी कुमार पाण्डेय**

शोध सारांश

स्वास्थ्य संस्थाओं का संबंध रोगों एवं बीमार व्यक्तियों से है तथा रोगियों की संख्या से संबंध जनसंख्या से होता है। किसी क्षेत्र में जैसे जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती है वैसे–वैसे प्रदूषण में वृद्धि तथा रोगों में धनात्मक वृद्धि होती है। अतः निष्कर्ष में सेवा केन्द्रों के विकास का संबंध जनसंख्या वृद्धि के साथ क्षेत्र में स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि धनात्मक मिलती है।

स्वस्थ्य जीवन अमूल्य निधि है, स्वास्थ्य ठीक न होने पर सारी सम्पदायें तुच्छ बन जाती हैं। रोग केवल कष्ट और पीड़ा ही नहीं भोगता अपितु वह संसार के समस्त कार्यों के लिए अक्षम भी हो जाता है स्वयं कष्ट भोगते हुए परिवार को दुःख और चिन्ता में डाल देता है। प्रतिक्षण उसे जीवन के नाश की आशंका बनी रहती है और अंत में उसका जीवन नष्ट हो जाता है। कुछ लोग स्वास्थ्य शारीरिक योग्यता को कहते हैं जिसके द्वारा वह शरीर से अधिक काम लेते हैं या अधिक समय तक जीवित रहे और अच्छी सेवा करे। पुष्पराजगढ़ तहसील में स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी सारणी क्रमांक 1 में दर्शाई गई है–

सारणी क्रमांक 1 (पुष्पराजगढ़ तहसील में स्वास्थ्य संस्थाओं का विकास)

क्र.	वर्ष	जनसंख्या	स्वास्थ्य सेवाओं फीस. जनसंख्या				योग
.			ऐलो.	आर्यु.	होम्यो.	यूना.	
1.	1971	87343	70	2	2	–	74
2.	1981	115780	105	2	3	–	110
3.	1991	134752	105	2	3	–	110
4.	2001	194574	105	2	3	–	110
5.	2011	221589	105	2	3	–	110

स्रोत–जिला सांख्यिकीय पुस्तिका जिला अनूपपुर एवं मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा प्राप्त प्राविधिक जानकारी पर आधारित 2014

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), शासकीय महाविद्यालय, स्लीमनाबाद, कटनी (म.प्र.)
** अतिथि विद्वान् (भूगोल), शासकीय महाविद्यालय, स्लीमनाबाद, कटनी (म.प्र.)

उक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि पुष्पराजगढ़ तहसील में जनसंख्या वृद्धि की दर का सीधा प्रभाव स्वास्थ्य संस्थाओं के ऊपर पड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता हैं। सन् –1971 से 2011 तक उपलब्ध जनसंख्या संबंधी आँकड़ों से स्पष्ट होता हैं कि आधार वर्ष 1971 में अध्ययन क्षेत्र की 87343 कुल जनसंख्या थी इस जनसंख्या के लिए समस्त प्रकार के स्वास्थ्य संस्थाओं की संख्या थी जिनमें ऐलोपेथी तथा 70 आर्युवेद संस्थाएँ थी। अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या 2011 में बढ़कर 221589 एवं 74 हो गई।

जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप सभी प्रकार के स्वास्थ्य संस्थाओं की संख्या बढ़कर क्रमशः 74 हैं स्वास्थ्य संस्थाओं के सन् 1971 से सन् 2011 के मध्य विकास क्रम को देखने से स्पष्ट होता है कि 1981 से पूर्व जनसंख्या वृद्धि एवं स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि समान रही है। 1981 के बाद स्वास्थ्य केन्द्रों की वृद्धि में एकाएक परिवर्तन आया जो जनसंख्या वृद्धि की तुलना में तीव्रतम दर से बढ़ी है। 1981 में स्वास्थय केन्द्रों की संख्या 35 थी इस प्रकार 1991 में बढ़कर 35 हो गयी और इस प्रकार 1981 में प्रति स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि अंकित की गई से 2014 के मध्य स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नानुसार हैं–

1. 1981 के पूर्व क्षेत्र की जनसंख्या का विकास सामान्य रहा। उसी अनुपात में स्वास्थ्य केन्द्रों का विकास हुआ।

2. 1981 के पूर्व प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों में वृद्धि अधिक नहीं थी जिसमें रोगो की बारम्बारता तथा विविधता निश्चित रही।

3. आदिवासी क्षेत्रों का कम विस्तार होने के कारण पर्यावरण मानव उपयोगी एवं संतुलित रहा हैं।

4. नगरीय क्षेत्रों में धीरे–धीरे विकास होने, जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि के कारण स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि होती गई –

5. वैज्ञानिक तकनीकि विकास के कारण चिकित्सकीय सुविधा से संम्बंधित उपकरण सस्ते दर से उपलब्ध हुए तथा विभिन्न शासकीय वित्तीय मदों के लिए उपलब्ध हुई जो स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास में सहयोग प्रदान की।

विभिन्न विद्वानों के अनुसार स्वास्थ्य को परिभाषित किया गया है–

1. **जे.एम. विलियम** के अनुसार–''स्वास्थ्य जीवन का गुण है जो व्यक्ति को अधिक सुखी ढंग से जीवित रहने तथा सर्वोच्च रूप से सेवा करने के योग्य बनाता हैं।''

2. **आचार्य चतुरसेन**–आरोग्य शास्त्र – प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 137

3. **के. के. वर्मा–** स्वास्थ्य शिक्षा टंडन पब्लिक लुधियाना–1999, पृ. 07

क्रोव एफ. के अनुसार–''स्वास्थ्य मानव की सामान्य तथा साधारण स्थिति और उसका जन्म सिद्ध अधिकार है। यह वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक व वातावरण सम्बंधी प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन यापन करता है''।

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार–अच्छा प्राणी होना जीवन की सफलता के लिए पहली वात हैं अच्छे प्राणियों पर राष्ट्र की खुशहाली निर्भर करती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार–Health is a status of complete physical mental and social well being and not merely the absence of disease or dinfirmity'

स्वस्थ शरीर का होना मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण है। सामाजिक दृष्टिकोण से भी मनुष्य का स्वस्थ रहना महत्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति रोग से पीड़ित है तो वह समाज के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता

हैं ऐसी हालातों में कहा जाता है कि मनुष्य का अच्छा स्वास्थ्य न केवल उनके अपने के लिए बल्कि उसके परिवार देश और समाज सभी के लिए बहुत अहमियत रखता है। स्वास्थ्य के महत्व पर जोर देते हुए स्वामी श्री विवेकानंद ने एक जगह लिखा है–''नायमात्मा बल हीने लक्ष्य'' अर्थात निर्बल व्यक्ति आत्मा के दर्शन नहीं कर सकता। चाहे वह शारीरिक रूप से निर्बल हो अथवा मानसिक रूप से। ऐसा व्यक्ति जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि आपस में सहनशीलता, आत्म सम्मान का अभाव होता है।

स्वास्थ्य का महत्व इस बात से सिद्ध होता है कि मनुष्य को जीवन में कई कार्य करने होते हैं। उसकी आजीविका जीवन निर्वाह के लिए कमानी पड़ती है। उसे अपने माता–पिता और बच्चों को सहारा देना होता है। उसे दूसरे पारिवारिक उत्तरदायित्वों को भी निभाने होते हैं। अतः यह कार्य एक स्वस्थ व्यक्ति ही कर सकता है।

आवश्यकता–स्वास्थ्य सुविधाएँ लोगों को प्रदान करना प्राचीन परम्परा रही है। मनुष्य जैसे जन्म लेता है वह अपने पर्यावरण में संघर्ष करने के लिये अपने शरीर को तैयार करता है। यह तैयारी प्रकृति जन्म होती है। किन्तु कभी–कभी शरीर में ऐसी कमजोरी आ जाती है जिसके कारण मानव शरीर अपने पर्यावरण के साथ समायोजन करते हुए भी विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो जाता है जिसका निदान किये बगैर स्वास्थ्य में सुधार नहीं होता। प्राचीन काल में भारत में चरक सुश्रुत, धनवन्तरि, जैसे चिकित्सकों ने विभिन्न जड़ी–बूटियों के द्वारा व्यक्तियों का उपचार कर लोगों के स्वास्थ्य की गुणवत्ता बनाये रखते थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि रोग तथा रोग निदान की परम्परा बहुत पुरानी है।

किसी प्रदेश के आर्थिक विकास में उस प्रदेश में निवास करने वाली जनसंख्या का महत्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि जनसंख्या अपने शारीरिक एवं मानसिक क्रियाकलापों के द्वारा क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अपने हित में करती है जिससे क्षेत्रीय विकास का प्रतिरूप तैयार होता है। इसके अतिरिक्त अपने पर्यावरण से सामंजस्य बनाये रखने के लिए भी उसे अनुकूलन एवं रूपांतरण की क्रियाओं को सम्पादित करना पड़ता हैं। इन परिस्थितियों में जनसंख्या का स्वस्थ रहना नितांत आवश्यक होता है। यदि जनसंख्या का औसत स्वास्थ्य ठीक है तो पर्यावरणीय परिर्वतनों से जनित रोग उससे कम प्रभावित करते हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्र के विकास संबंधी कार्यों का निरन्तर संपादन होता रहता है। जब कभी लोग रूग्णता के शिकार हो जाते हैं तो विकास कार्य में बाधा उत्पन्न होती है।

विश्व एवं भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति अध्ययन क्षेत्र पुष्पराजगढ़ में विभिन्न प्रदूषण का जोर बढ़ता जा रहा है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, भूमि प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण अपनी उपस्थिति प्रमुखता से दर्ज करवा रही हैं वही जनसंख्या प्रदूषण जनित विविध समस्याएँ भी उग्र रूप में धारण करती जा रही हैं। उन सबके प्रभाव से मानव स्वास्थ्य प्रभावित होता है तथा कार्य क्षमता के निरन्तर ह्रास दिखायी पड़ता है। स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से है–

1. स्वास्थ्य के उच्च गुणवत्ता को स्थापित करना।
2. रूग्णता को दूर करना।
3. जनसंख्या के शारीरिक एवं मानसिक विकास को सुनिश्चित करना।
4. क्षेत्रीय विकास को गति प्रदान करना
5. जनसंख्या के वृद्धि को नियंत्रित करना

6. रहन–सहन के स्तर को उच्च करना।

7. मानवीय सुविधाओं की सतत् आपूर्ति बनाये रखने को सुनिश्चित करना।

8. मृत्युदर को कम करके औसत आयु में वृद्धि करना।

उपर्युक्त कारणों से निदान प्राप्ति हेतु विभिन्न स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता अध्ययन क्षेत्र पुष्पराजगढ़ में निवास करने वाली जनसंख्या को है।

चिकित्सा पद्धति–उत्तम स्वास्थ्य की चाहत तथा निदान की आवश्यकता स्वास्थ्य सुविधाओं की जननी है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक के चिकित्सा पद्धति से इस बात की पुष्टि होती है। वर्तमान समय में उन सभी पद्धतियों के दर्शन सहजता से लिये जा सकते हैं। जिनमें स्वास्थ्य लाभ के लिये मंत्र, टोने, टोटके, झाड़ फूँक के अतिरिक्त देशज जड़ी–बूटियों, आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी, एलोपैथी, योगा, प्राकृतिक चिकित्सा आदि पद्धतियों के द्वारा रोगों का निदान कर स्वास्थ्य लाभ की प्रथा प्रचलित मिलती है। प्रकृति के अनुसार इन पद्धतियों के दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. अवैज्ञानिक पद्धति–इस पद्धति के द्वारा रोगों का निदान झाड़–फूँक, तंत्र–यंत्र, टोने–टोटके के द्वारा किया जाता है। इस पद्धति में वैज्ञानिकता का अभाव पाया जाता है। पूरा उपचार अंधविश्वास पर आधारित होता है। वास्तव में इस रोग के निदान की इस प्रकृति के मानव स्वास्थ्य को कोई लाभ नही पहुँचता है।

अध्ययन क्षेत्र पुष्पराजगढ़ तहसील में यद्यपि साक्षरता का प्रतिशत 54 प्रतिशत है फिर भी कुल जनसंख्या के लगभग 70 प्रतिशत लोग रोग निदान की इस पद्धति पर किसी न किसी रूप में करते हैं। क्षेत्रीय सर्वेक्षण में प्रमुखता से पाया गया कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के आवासों या आवास के पास विभिन्न देवी–देवताओं तथा झाड़–फूँक से संबंधित चबूतरे में मन्नतें माँगते हैं तथा झाड़–फूँक करते हैं तथा इसी प्रत्याशा में कई दिनों तक चिकित्सकों के पास नहीं जाते हैं।[2]

2. परीक्षण पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति–इस चिकित्सा पद्धति पर आधारित रोगों का निवारण परीक्षण के उपरान्त चुनी हुई औषधियाँ प्रदान की जाती हैं। इन पद्धतियों में यूनानी, होमियो, आयुर्वेद, एलोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा मुख्य पद्धतियाँ हैं। जिसमें रोग निदान के कार्यों का सम्पादन किया जाता है। रोग निदान की इस पद्धति का अध्ययन क्षेत्र के 65 प्रतिशत जनसंख्या अपनाती है जो बीमारी के तुरन्त बाद योग्य चिकित्सकों के परामर्श के उपरान्त औषधि का सेवन करते हैं। जब कि विशेष 35 प्रतिशत लोग झाड़–फूँक पर निर्भर रहते हैं।

संदर्भ स्रोत :–

1. डॉ. आर.सी. चान्दना, – जनसंख्या भूगोल, मेरठ
2. डॉ. जी.एस. सिंघई– चिकित्सा भूगोल, आगरा
3. जनगणना पुस्तिका– जिला–अनूपपुर 2011
4. डॉ. शिवकुमार तिवारी एवं श्री कमल शर्मा– मध्यप्रदेश की जनजातियां, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

किरातार्जुनीयम का महाकाव्यत्व

❑ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❑ पंकज मिश्रा**

शोध सारांश

संस्कृत साहित्य क इतिहास का अवलोकन किया जाय तो संस्कृत के मान्य आचार्यों द्वारा महाकाव्यों को श्रव्य काव्य के अन्तर्गत माना गया है। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न आचार्यों ने काव्य का लक्षण विभिन्न प्रकार से किया है, उसी प्रकार महाकाव्यों का लक्षण भी अनेक आचार्यों द्वारा अपने–अपने विचार से प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत काव्य शास्त्र में महाकाव्यों के विभिन्न लक्षणों का अल्लेख किया गया है, जिनमें आचार्य भामह का नाम सर्वप्रथम है।

1–आचार्य भामह द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य लक्षण–

**सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च चत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रयमृ।।
मन्त्रदूतप्रयाणानि नरायकाभ्युदये च यत्।
पञ्चभिसंन्धिभिर्युक्जतं नातिव्यारव्येय भद्भुतम्।।
चतुर्वर्गाभिधानेडपि भूयः सार्थोपदेशकृत।
युक्तं लोक स्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्य श्रुतादिभि।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।**[1]

अर्थात महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। उसका विषय गम्भीर होता है उसका नायक माहन् या धीरोदात्तादि गुणान्वित होता है। उसकी भाषा में वैदग्हय होता है। कथा में निरर्थक तत्वों या बातों का परिहार किया जाता है वह सालंकार होने पर भी सदाश्रित होता है। मन्त्र, दूत, प्रयाग, युद्ध और नायक के अश्युदयान्वित तत्वों से युक्त होने पर भी उसमे प्रकृति की समृद्धि अर्थात ऋतु, चन्द्रोदय, उद्यान, पर्वत आदि का रम्य चित्रण होता है। उपर्युक्त चित्रणों से युक्त होने पर भी महाकाव्य दुर्बोध नहीं होता। उसमें चतुवर्गों का प्रतिपादन होता है। उसका उपदेश सद सार्थक उपदेश होता है। उसमें नाटक की पाँचों सन्धियां और कार्यावस्थाएँ होती हैं। ऐसे काव्य से लोक स्वभाष और सभी रस प्रस्फुटित होते हैं। नायक का उत्कर्ष निमित्त उसका बध का वर्णन नहीं होता।

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए., संस्कृत, नेट, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

2. आचार्य दण्डी–दण्डी ने भामह द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को अपने समन्वयात्मक लक्षणों में समेट लिया। अतः दण्डी के मतानुसार महाकाव्य का लक्षण अधोलिखित हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते वस्य लक्ष्णम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोवपि तन्मुखम्।।
इतिहास कथोद्भूतामितरद्धा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोडान्तनायकम्।।
नगरार्णवर्शलर्तुचन्द्रसूर्योदय वर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधु पानरतोत्सवैः।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ।।
अलंकृतमसंक्षित्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यकृतेः सुसंधिभिः।।
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरूपेतं लोकरंजनम्।
काव्यंकल्पान्तरास्थायि जायेत सदलंकृतिः।।[2]

इस पकार आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में महाकाव्य का समन्वयात्मक एवं विश्लेषणात्मक लक्षण देकर महाकाव्य की निर्माण शैली में एक नवीन मोड़ प्रदान किया है। इनके अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है उसकी कथावस्तु ऐतिहासिक या सज्जन व्यक्ति के सत्य जीवन पर आश्रित होती है। उदात्तादि गुणों से युक्त चतुर नायक की चतुएर्गा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का चित्रण उसमें होता है। उसमें नगर समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, सलिल आदि का वर्णन रहता है। उसमें क्रीड़ा, मधुपान, रतात्सव आदि का चित्रण विप्रलम्भ श्रंगार, विवाह, कुमार जन्म का समावेश होता है। महाकाव्य अलंकृत, विस्तृत और रसभावादि से सम्पन्न होता है। उसके सर्ग अति विस्तीर्ण नहीं होते उसकी कथा श्रव्य–वृन्तों एवं सन्ध्यादि अङंगों से गठित होनी चाहिए। सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए। उपर्युक्त गुणों से युक्त महाकाव्य लोकरेजक ओर कल्पान्त स्थायी होता है।

3. आचार्य रूद्र – आचार्य रूद्रट ने काव्यलंकार के षोडश अध्याय में महाकाव्य की परिभाषा की है। इनका महाकाव्य का लक्षण दण्डी से प्रायः मिलता है। महाकाव्य में सर्गबद्ध एवं नाटकीय तत्वों से युक्त कथा होती है उसमें सम्पूर्ण जीवन का चित्र अंकित होता है और इस चित्र में किसी साहसिक कार्य अथवा किसी प्रधान घटना का चित्रण किया जाता है। कवि इस प्रधान घटना से सम्बद्ध अलङ्कृत वर्णनों प्रकृति चित्रणों तथा विभिन्न लौकिक, अलौकिक वर्णनों से इस काव्य की रचना करता है। लौकिक वर्णन में प्रकृति चित्रण वाटिका चित्रण, नगर चित्रण आदि होते हैं। अलौकिक चित्रणों में देवता और स्वर्ग आदि के चित्र अंकित होते हैं। महाकाव्य का नायक सर्वगुण सम्पन्न और विश्व विजिगीषु महान् वीर होना चाहिए। वह शक्ति सम्पन्न नीतिज्ञ व्यहार कुशल राजा होता है। महाकाव्य के प्रतिनरायक और उसके कुल का भी चित्रण होता है उसमें नायक की विजय और प्रतिनायक की पराजय दिखलायी जाती है। उद्देश्य रूप में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति प्रदर्शित की जाती है। महाकाव्य में सभी रसों की नियोजना होती है उसमें अतिप्राकृतिक तत्व भी होते हैं, पर मानवकृत अस्वाभविक घटनाचक्र का चित्रण नहीं होता।[3] इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समीक्षकों ने भी महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया है किन्तु संस्कृत साहिव्य में सबसे प्रमाणिक लक्षण आचार्य विश्वनाथ का माना गया है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए काव्य लक्षण पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों में दण्डी को ही अपना आदर्श मानकर महाकाव्य लक्षण निश्चित किया है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत अपजीव्य काव्यों को

ध्यान में रखते हुए कालिदासादि कतिकृत रघुरंश, किरात, माघ काव्यादि को भी अपनी समन्वयात्मक काव्य परिभाषा में समेट लिया है। इसी कारण आधुनिक आलोचना पद्धति में साहित्य दर्पण का सर्वाधिक महत्व है।

आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्धंशः क्षत्रियो वापि धीरादातगुणान्वितः।।
एकवंशभसवा भूपा कुलजा वहवोडपि वा।
अविकत्क्नःक्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।।
स्थेयान्निगूढ़मानो धीरोदात्तों दृढ़व्रतः कथिटः।
इतिहासोदभवं वृत्त अन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्वेष्वेकं च फलं भवेत्।
श्रृगाार वीशान्तानामेकोडङ्गी रस इष्यते।।
आदौनमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
वन्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्वनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेडय्यन्यवृन्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन् दृश्यते।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सुचनं भवेत्।।
संध्या सुयेन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त रवासराः।
प्रातर्मध्यान्ह मृगया शैलर्तुर्वनसागराः।।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपूराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपाङ्गा अमी इह।।

सा. द. 6/315–324

उक्त महाकाव्य के लक्षण का सारांश यह है। महाकाव्य सर्गबद्ध होता है अर्थात महाकाव्य के कथानक को सर्गों में निबद्ध किया जाता है। कोई एक देव या उत्तम तंशज धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा एक कुल में उत्पन्न अनेक राजाओं के चरित्र का वर्णन किया जाता है। श्रृंगार, वीर तथा शान्त इन तीनों रसों में से कोई एक रस प्रधान (अंगी) तथा नौ रसों में से शेष रस अपधान (अङ्ग) होते हैं। महाभरतादि इतिहास के या अन्य किसी सज्जन के चरित्र का वर्णन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय में से कोई एक फल लक्षित होते हैं। ग्रन्थादि में नमस्कारात्मक वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मंगल रहता है। किसी महाकाव्य में प्रथम दृष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा भी रहती है। पूरे सर्ग में एक प्रकार का छन्द अन्त में भिन्न तथा किसी किसी सर्ग में अनेक बिध छन्द रहते हैं। न तो बहुत बड़े न तो छोटे कम से कम आठ सर्ग होते हैं। सर्ग के अन्त में आगामी कथा का संकेत रहता है। संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोषकाल, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, अखेट, पर्वत, ऋतु, सम्भोग, तथा विप्रलम्भ श्रृंगार, मुनिस्वर्ग, नगर यज्ञ, युद्धयात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि जलक्रीड़ा, वन विहार आदि में से किन्हीं का यथायोग सांगोपांग वर्णन किया जाता है। कवि वृन्त (कथा) नामक या किसी अन्य मुख्य के नाम पर महाकाव्य का नामकरण होता है। आर सर्ग में वर्णित कथा के नाम पर प्रत्येक सर्ग का नाम रहता है। सम्भव है कि इस महाकाव्य के लक्षण में जितनी बातें कही गई हैं वे प्रत्येक महाकाव्य में एक साथ न पाई जाती हों और सभी बातों का एक साथ वर्णन प्रत्येक महाकाव्य में महाकाव्यकार के लिए अनिवार्य भी नहीं है तथापि प्रत्येक महाकव्य में इसके अधिकांश लक्षण पाये ही जाते हैं।

आदि कवि बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण और व्यास द्वारा सर्जित महाभरत उत्तरकालीन विराट महाकाव्य परम्परा के लिए आकर, उपजीव्य और आर्ष महाप्रबन्धकाव्य है। कालिदास के पूर्ववर्ती काव्यों में संस्कृत काव्यों के उदय का इतिहास व्याकरण शास्त्र के आदि आचार्य–त्रयी–पाणिनी, कात्यायन तथा पतंजलि के ग्रन्थों को भी जाता है। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि पाणिनी

यदा–कदा फुटकर पद्य लिखने वाले साधारण कवि नहीं थे, प्रत्युत संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम महाकाव्य लिखने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है इस महाकाव्य का नाम कहीं 'जाम्बवती जय' और कहीं पाताल विजय पाया जाता है। 'व्याडि' के बालचरित के स्वर्गारोहण के नाम मिलते हैं। इनके कतिपय श्लोक आदि भी उद्धृत हैं, परन्तु मूलतः ये आजकल उपलब्ध नहीं हैं। 12वीं सदी तक प्राप्त महाकाव्यों की सामान्य परम्परा डॉ. केशवराव मुसलगांवकर द्वारा प्रस्तुत तालिका के अनुसार इस प्रकार है–

1. बुद्धचरितम् – अश्वघोष
2. सौन्दरनन्द –
3. कुमार सम्भवम् – कालिदास
4. रघुवंश –
5. पद्य चूड़ामणि – बुद्धघोष
6. किरातार्जुनीयम् – भारवि
7. भट्टिकाव्य – भट्टि
8. जानकी हरण – कुमारदास
9. शिशुपाल बध – माघ
10. हर विजय – रत्नाकर
11. कण्किणीयुदय – शिवस्वामी
12. रामचरित – अभिनन्दन
13. द्विसन्धान – धनञ्जय
14. राघवपाण्डवीय – कविराज सूरि
15. रावणार्जुनीय – भट्टभौम
16. नवसाहसांक चरित – पद्मगुप्त
17. दशावतार चरित – क्षेमेन्द्र
18. विक्रमांक देवचरित – विल्हण
19. रामचरित – संध्याकरनन्दी
20. कुमारपाल चरित – हेमचन्द्र
21. धर्मशर्माभ्युदय – हरिश्चन्द्र
22. श्री कण्ठ चरित – मंखक
23. राजतङ्गिणी – कल्हण
24. नेमि निर्वाण – वाग्भट
25. नैषधीय चरित – श्री हर्ष
26. पृथ्वीराज विजय – जयानक

1. सं. सा. का इतिहास, पृ. 132–135, आचार्य बलदेव उपाध्याय

2. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा, पृ. 15

12वीं सदी के बाद भी महाकाव्यों की परम्परा चल रही हैं। अब भी अनेक महाकाव्य लिखे जा रहे हैं। यद्यपि विषय–विस्तार भय से यहाँ अन्य महाकाव्यों की चर्चा नहीं कि जा रही है, जबकि अन्यान्य महाकाव्य और भी है।

अब यहाँ कालिदासोत्तर कालीन महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम् के बारे में भी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है क्योंकि इन्हीं तीनों महाकाव्यों को संस्कृत साहित्य के मान्य आचार्य वृहत्त्रयी में गणना करते हैं। भारवि कालिदास से विपरीत एक नये काव्य मार्ग के प्रवर्तक थे, जिसे 'अलंकृत मार्ग' या 'विचत्र मार्ग' कहा जाता है। इन्होंने और इनके उत्तरवर्ती माघ श्री हर्ष आदि में भी इस नये मार्ग या शैली का अनुसरण करते हुए अपने–अपने महाकाव्यों की रचना की है। कालिदास के बाद के काव्यों के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध ही हैं। यद्यपि कालिदास और इनके पूर्ववर्ती काव्यों में तथा कालिदासोत्तर कालीन काव्यों में भाषा और कवित्य तथा विषय एवं उद्देश्य की दृष्टि से बड़ा अन्तर है तथापि इससे यह तो सिद्ध है कि संस्कृत काव्य रचना की धारा जो आदि उपजीव्य काव्यों से प्रवाहित हुई थी, अविभिन्न रूप से अद्यावधि प्रवाहित हो रही है। इस बीच अनेक कवियों में काव्यों की रचना कर संस्कृत काव्य कानन की भी वृद्धि की है।

संस्कृत साहित्य में शास्त्रीय दृष्टि से काव्यों का विभाजन विविध रूप में किया गया है जैसे मुक्तक, सन्दानितक, पर्यायबन्ध, सर्गबन्ध तथा महाकाव्यादि।[4] विभिन्न आलंकारिकों ने अपने ग्रन्थों

में इनका विशिष्ट रूप से विवेचन किया। भारवि के इस काव्य ग्रन्थ में महाकाव्य के समस्त लक्षण संघटित होते हैं। आचार्य दण्डी के अनुसार महाकाव्य[5] को विभिन्न सर्गों में विभाजित होना चाहिए। उसका प्रारम्भ आशीर्वाद या नमस्कारादि रूप मंगल से होता है। इसमें कथावस्तु ऐतिहासिक या उत्पाद्य दोनों ही हो सकती है। पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि को लक्ष्य में रखते हुए चातुर्य्य विशिष्ट उदात्त नायक का आश्रय लेना अनिवार्य होता है। रसोन्मीलन के हेतु नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय और चन्द्रोदय, उद्यान, जलकेलि, मधुपान और रतोत्सवों का भी वर्णन होता है। साथ ही विप्रलम्भ श्रृंगार, विवाह, कुमारोदय से इसे सुसज्जित होना चाहिए। इसमें मन्त्रणा, दूत प्रेषण, विजय यात्रा, युद्ध वर्णन आदि द्वारा नायक का अभ्युदय दिखाया जाता है। इसे विविध अलंकारों से अलंकृत, रसभाव से सम्पन्न तथा अति विस्तीर्ण होना चाहिए। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में वृत्त का परिवर्तन आवश्यक है साथ ही यह भी आवश्यक है कि यह चिरस्थायी हो अर्थात् केवल सामयिक घटनाओं पर ही विशेष बल न दिया गया हो।

अठारह सर्गों से युक्त भारवि के इस काव्य–ग्रन्थ में इतिहास प्रसिद्ध पांडवों के कथानक का आश्रयण किया गया है। महाभारत में प्रसिद्ध अन्यतम वीर अर्जुन इसके प्रधान नायक हैं। इतिवृत्त का आरम्भ द्यूतक्रीड़ा में हारे हुए पांडवों के द्वैतवनवास से होता है। युधिष्ठिर यहाँ रहकर भी दुर्योधन की ओर से निश्चिन्त नहीं हैं। वे एक वनेचर को दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिये 'चर' बनाकर भेजते हैं। ब्रह्मचारी बना हुआ अनेचर लौटकर आता है, और उसके युधिष्ठिर के पास पहुँचने के अनन्तर काव्य का इतिवृत्त चलता है। वनेचर दुर्योधन के शासन की पूरी जानकारी देता है और इस बात का संकेत देता है कि जुए के बहाने जीती हुई पृथ्वी को वह नीति से भी जीत लेने की चेष्टा में लगा है।[6] सारी बातें बताकर वनेचर लौट जाता है, और द्रौपदी आकर युधिष्ठिर को युद्ध के लिये उत्तेजित करती है। वह कटु शब्दों का प्रयोग करती हुई युधिष्ठिर की तपस्विजनोचित शान्ति, दूसरे शब्दों में कायरपन की भर्त्सना करती है। दूसरे सर्ग के आरम्भ में भीम द्रौपदी की सलाह की पुष्टि करता है और युधिष्ठिर को इस बात का विश्वास दिलाता है कि उसके चारों भाइयों के आगे युद्ध में कोई नहीं ठहर सकता।[7] पर नीतिविशारद युधिष्ठिर एक कुशल हस्तिपक की तरह मदमस्त हाथी के समान भीम को नीतिमय उक्तियों से शान्त कर देते हैं।[8] वे इस बात का संकेत देते हैं कि उन्हें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब पांडवों के मित्र पांडवों की सहिष्णुता की अत्यधिक प्रशंसा करने लगें तथा दुर्योधन के अभिमानी व्यवहार से अपमानित कई राजा, उससे अलग हो जांय। इसी सर्ग में भगवान व्यास आते हैं। तीसरे संग में वे अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिये इन्द्र की तपस्या करने को कहते हैं। व्यास के भेजे गये गुह्यक के साथ अर्जुन तपस्यार्थ इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचता है। उसकी कठिन तपस्या से डरकर इन्द्र अप्सराओं को अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिये भेजता है। पर अर्जुन का व्रत भंग नहीं होता। खुश होकर स्वयं इन्द्र अर्जुन के पास आता है तथा शिव की तपस्या का उपदेश देता है। अर्जुन पुनः तपस्या करता है। इधर एक मायावी दैत्य अर्जुन को मारने के लिये सुअर का रूप धारण करता है। इस बात को जानकर भगवान् शिव अर्जुन की रक्षा के हेतु किरात का मायावी वेश धारण करते हैं। तेरहवें सर्ग में सुअर के प्रवेश का वर्णन है। किरात तथा अर्जुन दोनों सुअर पर एक साथ बाण छोड़ते हैं। अर्जुन का बाण सुअर को मारकर पृथ्वी में घुस

जाता है। बाद में बचे हुए बाण के लिये किरात तथा अर्जुन का वादविवाद चलता है, जो पंचदश सर्ग में युद्ध का रूप धारण कर लेता है। युद्ध में पहले दोनों अस्त्रों से लड़ते हैं, बाद में कुश्ती पर उतर आते हैं। इसी समय अर्जुन की वीरता से प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट होते हैं, तथा अर्जुन की पाशुपतास्त्र–प्राप्ति की अभिलाषा के साथ काव्य की पूर्ति होती है।

व्रज जय रिपुलोकं पादपद्भानतः सन्,
गदित इति शिवेन श्लाधिनो देवसंघैः।
निजगृहमथ गत्वा सादरं पाण्डुपुत्रों,
धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम।।

(18.48)

''जाओ, अपने शत्रुओं को जीतों' इस प्रकार शिव के द्वारा आशीर्वाद दिया गया अर्जुन, (जो उनके चरणकमलों में नत था) देवताओं के द्वारा प्रशंसित होकर महान् जयलक्ष्मी को धारण कर अपने घर लौट आया और उसने युधिष्ठिर को प्रमाण किया।''

इस प्रकार 'श्रीः' शब्द के मंगलाचरण से आरम्भ भारवि का 'श्रीकाव्य' लक्ष्मी शब्द की विजयशंसना के साथ परिसमाप्त होता है। भारवि का काव्य जैसे 'लक्ष्म्यन्त' काव्य कहलाता है, ठीक उसी तरह माघ का काव्य 'श्रयन्त' तथा श्रीहर्ष का नैषध 'आनन्दान्त' है। भारवि ने मंगलसूचक 'लक्ष्मी' शब्द को प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में अवश्य रखा है, जो काव्य के तत्तत् पद्यों में देखा जा सकता है।

संदर्भ स्रोत :–

1. काव्यलंकार...... 1–23
2. काव्यादर्श– ।। 14–19
3. काव्यालंकार–2–19 आचार्य रूद्रट
4. काव्यस्यः प्रमेदा मुक्तकं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धं, सन्दानितकविशेषक – कलापककुलकानि, पर्यायबन्धः, परिकथा, खण्डकथासकलकथे, सर्गबन्धों, अभिनेयार्थ, आख्यायिकाकथे इत्येवमायः। ध्व0 लो0 3.7 (वृत्ति भाग)
   आदिशब्देनाख्यानचम्पूसङ्घतकोषचक्रवालो–दाहरणविरुदावलीभोगावलीतारावलीविश्वावली–रत्नावली–पञ्चाननावलीप्रभृतयो गृह्यन्ते..... दीधिति।
   ध्व0 लो0 पृ0 283
5. दण्डीकृत काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद 14........19
6. दुरोदरच्छद्भजितां समीहते नयेन जेतुं जगती सुयोधनः।। (1.7)
7. प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः।। (2.23)
8. उपसान्त्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टुमिवोपचक्रमे।। (2.25)

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

भास की नाटकीयता एवं स्वरूप

❑ डॉ. सूर्य नारायण गौतम*
❑ सुनीता**

शोध सारांश

भास के प्रायः सभी नाटक मानवता के लिए एक विशेष सन्देश देते हैं। उन्हें देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ने एक विशेष प्रयोजन को दृष्टि–पथ में रखकर ही उनकी रचना की है। उदाहरण के लिए देखिए–बालचरित जो बालकों को पराक्रमी बनाने के लिये है। 'विपत्ति से दीनदुखियों की रक्षा करना ही मानस्त्रियों का काम है'– यही दिखाना 'मध्यमव्यायोग' की कथा का प्रयोजन है। दूतवाक्य के अनुसार 'अपने व्यवहार में क्षुद्रता लाना पतन और तिरस्कार का कारण होता है। कर्णभार में 'यशःशरीर का संरक्षण ही परम कर्त्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।' पंचरात्र में भीष्म और द्रोण के औदार्य का वर्णन करके इन वयोवृद्ध और आचार्य के उत्तरादियत्व की गरिमा को कवि ने शतगुण कर दिया है।' ऊरुभंग और दूतघटोत्कच में 'युद्ध की भीषणता का चित्रण कर मानवता को उससे विरक्त करने की सीख दी गई है।' अविमारक में उत्साह और पराक्रम की प्रतिष्ठा की गई है। प्रतिमा में 'अहिंसा की सीख दी गई है। कौटुम्बिक वातावरण को शान्तिमय बनाने के लिए भास का यह नाटक सर्वाधिक सफल है।' प्रतिज्ञा–यौगन्धरायण में 'स्वामिभक्त लोगों की अद्‌भुत कार्यपरता का निर्दशन किया गया है।' चारुदत्त में 'चारुदत्त और उसकी पत्नी की उदारता का सर्वास्पृहणीय चित्रण है।' महाकवि भास ने नाटकीयता सफल प्रतिपादन कर अपने काव्यों में राजा, मन्त्री, सेवक, कुटुम्बी–जन आदि के चरितों का आदर्श रूप प्रतिष्ठित करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। प्रस्तुत शोध आलेख में कवि की नाटकीयता का अध्ययन किया है।

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुन्झुनू (राजस्थान)
** शोध छात्रा (संस्कृत विभाग), श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुन्झुनू (राजस्थान)

भास की कृतियों में नाट्य–विधान सुविकसित है। उनके नाटकों में जीवन के सभी प्रकार के और प्रायः सभी परिस्थितियों में पड़े हुए का समाहार मिलता है। उनमें संक्षिप्त रूप से पूरा जगत् ही सन्निविष्ट है। प्राकृतिक दृश्य–चन्द्रोदय, ज्योत्सना, अन्धकार, सूर्यसन्ताप, मेघ, महासागर, आश्रम के उपवन आदि का स्थान–स्थान पर रुचिर संविधान है। भास की कथाएं यद्यपि महाभारत आदि से ली गई हैं, फिर भी उनके नये–नये विवरण ऐसी कलापूर्ण पद्धति से पिरोये गए हैं कि, कथाएं ज्ञात होने पर भी नवीन–सी ही प्रतीत होती हैं। भास उन परिस्थितियों के सफल पारखी हैं, जो वास्तव में नाटकीय कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए–पंचरात्र में विराट के यहां पांचों पाण्डवों के गुप्त वेश में होने पर उनको न जानने वाले अभिमन्यु से मिला देना। अर्जुन बृहन्नला के रूप में होकर पिता की भांति जब अभिमन्यु से बात करता है तो उसे न पहचानने वाला अभिमन्यु विस्मय और क्रोध करता है। अर्जुन पूछता है कि तुम्हारी माँ कैसी है? अभिमन्यु कहता है–तुम कौन हो हमारे कुटुम्ब की स्त्रियों के विषय में पूछने वाले ? भास ने कथाओं का जो कलात्मक अपूर्व विन्यास दिया, वह भारतीय साहित्य में विरले स्थलों पर ही प्राप्य है।

भास का हास्य तो अप्रतिम है ही, किन्तु उनके नाटकों में प्रायः एक अनुपमेय विधि से हास्यसर्जन की प्रक्रिया देखी जा सकती है। उस हास्य के वृत्तान्त के साथ कथा–विन्यास का सामन्जस्य भास की अपनी निजी विशेषता है। अविमारक में वीर और श्रृंगार की सामंजस्य–गति का आविर्भाव मनोरम है।

भास की भाषा प्रभावपूर्ण होने के साथ ही प्रसादगुणमयी है। उनके वाक्यों में भाव को साक्षात् बोधगम्य बनाने की शक्ति मिलती है। भाषा की उपर्युक्त विशेषता का चमत्कार स्थानोचित लोकोक्तियों से निखर–सा जाता है। भास के लगभग 1,100 श्लोकों में एक–तिहाई से अधिक श्लोक छन्द में है। भास के अन्य प्रिय छन्द क्रमशः वसन्ततिलका, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, शालिनी और शिखरिणी आदि हैं।

भास की नाट्यकला कम से कम भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों से निगडित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि भास ने कथा के स्वाभाविक विकास में बाधा नहीं डाली है। भास का नाटकीय कथा–विन्यास स्पष्टतः दो प्रकार का है– प्रथम तो वह जिसमें रामलीला–शैली की कथा का अनुबन्ध दिखाई देता है और दूसरे वह जिसमें सन्ध्यङ्गों का आकलन किया गया है। इनके उदाहरण क्रमशः बालचरित और स्वप्नवासवदत्तम् हैं। इतिवृत्त में रखते हुए भास की समस्त रचनाओं का विभाजन इस प्रकार हो सकता है–रामायण से सम्बन्धित 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' हैं। महाभारत से सम्बन्धित कुल सात रूपक हैं–'बालचरित', पञ्चरात्र', 'मध्यमव्यायोग', 'दूतवाक्य', दूतघटोत्कच', 'कर्ण–भार' 'ऊरुभंग। प्रचलित कथा से सम्बन्धित या उदयन की कथा से सम्बन्धित 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' दो रूपक हैं। 'अविमारक' और 'चारुदत्त' भास के कल्पित नाटक हैं। इन उपर्युक्त सभी रूपकों में पर्याप्त साम्यता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा और कोमल कल्पना के निजी माध्यम से सभी रूपकों में अपनी छाप रख छोड़ी है। 'प्रतिमा' और 'स्वप्न–वासवदत्तम्' प्रधान नाटक हैं।

भास के नाटकों की वस्तु का क्षेत्र विविध है, और यह विविधता भास की प्रतिभा की मौलिकता को व्यक्त करती है। पर इतना होते हुए भी भास के सभी नाटकों में एक सी नाट्य कुशलता नही मिलती। रामायण से सम्बद्ध नाटकों का कथा संविधान बहुत शिथिल है, अतः भास की नाटकीय कुशलता का परिचय नहीं कहा जा सकता जब कि महाभारत से

सम्बद्ध नाटकों में भास की प्रतिभा अधिक व्यक्त हुई है। कवि ने महाभारत से सम्बद्ध इतिवृत्तों में विशेष दिलचस्पी दिखाई है। किन्तु भास को सबसे अधिक सफलता उदयन की रोमैन्टिक कथा से सम्बद्ध नाटकों में मिली है, तथा स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण भास के नाटकों में निश्चित रूप से उच्च कोटि के नाटक हैं।

राम के इतिवृत्त को लेकर लिखे गये दोनों नाटकों–अभिषेक तथा प्रतिमा में भास ने किसी मौलिक नाटकीय प्रतिभा का प्रदर्शन नही किया है। नाटकों के पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि इनके संविधान में नाटककार ने कौतूहलवृत्ति को उत्पन्न नही किया है, जो नाटक की प्रभावात्मकता के लिए अत्यावश्यक है दोनों नाटकों में रामायण की कथा का ही शुष्क संक्षेप है, जिसे मंच के उपयुक्त बना दिया गया है। नाटककार ने रामायण की मूल कथा में कुछ परिवर्तन किये हैं किन्तु वे महत्वपूर्ण नहीं है। सुग्रीव तथा वाली के द्वन्द्व को दो बार हुआ न बताकर एक बार ही हुआ बताया गया है। तथा राम के द्वारा बिना किसी कारण के बाली का वध करना राम के चरित्र को दोषयुक्त बना देता है।1 यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि बाद के संस्कृत नाटककारों ने राम के चरित्र से इस दोष को हटाने के लिए मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। भवभूति के महावीरचरित में बाली स्वयं चढ़ाई करने आता है, और युद्ध में मारा जाता है। रामायण में वर्णित ताराविलाप, अभिषेक नाटक में नही पाया जाता, तथा नेपथ्य से तारा के रोने की आवाज आती है, पर बाली उसे मंच पर आने से मना कर देता है। वह यह नहीं चाहता कि तारा उसे मरते हुये देखे।2 बाली की मत्यु मंच पर ही दिखाई गई है, जो नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के विरुद्ध जान पड़ती है। प्रतिमा नाटक का क्षेत्र अभिषेक नाटक की अपेक्षा विशाल है। इस नाटक में कवि ने दो–तीन मौलिक उद्भावना की है। भरत को सीताहरण का पता पहले ही चल जाता है,3 तथा राम नन्दिग्राम में ही भरत से राज्यभार संभाल लेते हैं, और उनका अभिषेक भी वहीं हो जाता है। राज्याभिषेक के बाद वे अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं।4 इसके साथ ही इक्ष्वाकुवंश के मृत राजाओं की प्रतिमाओं का देवकुल में स्थापित किया जाना भी भास की निजी कल्पना है, जिसका आधार उस काल में प्रचलित राजकीय परम्परा जान पड़ती है।5 दोनों के नाटकों के पात्रों का चरित्रचित्रण असफल हुआ है, और ऐसा अनुमान होता है कि ये दोंनो नाटक भास की नाट्यकला के आरंभिक विकास हैं।

महाभारत तथा कृष्ण संबंधी नाटकों में भास की नाट्यकला विशेष सुन्दर दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है, कवि स्वयं कृष्णभक्त था।6 मध्यम व्यायोग तथा दूतघटोत्कच के इतिवृत्त में भास ने नई उद्भावना की है। मध्यमव्यायोग में भीम तथा घटोत्कच का द्वन्द्वयुद्ध और घटोत्कच के द्वारा भीम को पहचाने बिना हिडिम्बा के पास ले जाना इतिवृत्त में 'कौतूहल' का समावेश कर देता है। दूतघटोत्कच में दुर्योधन तथा घटोत्कच के संवाद वीर रस से पूर्ण हैं। कर्णभार के द्वारा कवि ने कर्ण के दानशील चरित्र की उज्ज्वलता प्रदर्शित की है। दूतवाक्य में एक ओर दुर्योधन और दूसरी ओर कृष्ण के चरित्रों के वैषम्य को चित्रित किया गया है। दुर्योधन की दलीलों का, जो मुँह तोड़ जवाब कृष्ण ने दिया है, वह नाटकीय संवाद को स्वाभाविक एवं मार्मिक बना देता है।7 श्री कृष्ण के आयुध–सुदर्शन, कौमोदकी, शाङ्र्ग आदि का मंच पर लाना, सम्भवतः कुछ आलोचकों को खटक सकता है, विशेषतः सुदर्शन को एक मूर्तिमान् मानवी पात्र के रूप में उपस्थित करना। उरुभंग में दुर्योधन तथा भीम के गदायुद्ध का वर्णन है, गदायुद्ध में अनीतिबरतने के कारण बलराम भीम पर क्रुद्ध हो जाते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा शान्त कर दिये जाते है। अन्त में अश्वत्थामा के प्रचण्ड चरित्र को उपस्थित

कर कवि ने एक मौलिक उद्भावना की है, जो मरते हुए राजा दुर्योधन को पुनः विजय की आशा दिलाता है, तथा पाण्डवों को रात्रियुद्ध में मारने का प्रण करता है। उरुभङ्ग में भी अभिषेक के बाली की तरह दुर्योधन का देहावसान मंच पर ही होता है। दुर्योधन उरुभंग का नायक नहीं है, उसे प्रतिनायक ही मानना ठीक होगा, ठीक वैसे ही जैसे भट्ट नारायण के 'वेणीसंहार' में। पर उरुभंग में दुर्योधन का चरित्र अङ्कित करने में कवि पूर्णतः सफल हुआ है। दुर्योधन का चरित्र दुर्गुणों से युक्त होते हुए भी वह क्षत्रियोचित सम्मान के साथ मृत्यु प्राप्त करता है। पंचरात्र के कथानिर्वाह में कवि ने विशेष दिलचस्पी दिखाई है। महाभारत के विराट्पर्व की कथा को कवि ने अपनी कल्पना से नया रूप दे दिया है। दुर्योधन के द्वारा द्रोण के कहने से पाण्डवों को आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा, अभिमन्यु का कौरवों के साथ युद्ध में आना और भीम के द्वारा युद्ध में बन्दी बना लिया जाना, कवि की निजी कल्पनाएँ हैं। पंचरात्र में कई नाटकीय दृश्य हैं, किन्तु इतिवृत्त की दृष्टि से वह महाभारत के इतिवृत्त जैसा प्रभावोत्पादक नहीं बन पड़ा है।

बालचरित को इतिवृत्त की दृष्टि से हम पूरा नाटक न कहेंगे। श्रीकृष्ण के बालचरित से सम्बद्ध कई घटनाओं को यहाँ एक साथ रखकर नाटकीय रूप दे दिया गया है। नाटक में कुछ कल्पनाएँ की गई हैं, जैसे कंस के स्वप्न में चाण्डाल युवतियों का आना, मंच पर राज्यलक्ष्मी और शाप का मूर्त पात्रों के रूप में उपस्थित होना,1 किन्तु इनसे नाटक की प्रभावोत्पादकता नहीं बढ़ी है। दूतवाक्य की ही तरह कृष्ण के आयुध यहाँ भी मूर्त रूप में मंच पर प्रविष्ट होते हैं, तथा अरिष्ट दैत्य का बैल के रूप में आने पर भी मानवी पात्र की तरह व्यवहार करना आवश्यकता है। डॉ0 कीथ का अनुमान है, कि अरिष्टनेमि का पात्र मंच पर केवल कृत्रिम वेश में ही आता था, और उसकी उक्ति से सामाजिकों को यह कल्पना कर लेनी पड़ती होगी कि वह बैल है। ठीक यही बात कवि के पात्र के विषय में कही जा सकती है। जो मंच पर उपस्थित होता है10। डॉ0 कीथ का मत है कि बालचरित में भास की मौलिक प्रतिभा प्रकट हुई है। वस्तुतः नाट्यकला की दृष्टि से बालचरित में व्यापारान्वित का अभाव दिखाई पड़ता है।

अविमारक की वस्तु किसी लोककथा पर आधृत है। इस नाटक में किसी ऋषि के शाप से राजकुमार अविमारक अन्त्यज के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी रूप में उसका प्रेम कुंतिभोज की पुत्री कुरङ्गी से हो जाता है। पर अविमारक नाटक के नायक के द्वारा दो बार, तथा नायिका के द्वारा एक बार आत्महत्या करने का प्रयत्न कथा की प्रभावोत्पादकता में बाधा डालता है। भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भाँति यहाँ भी विदूषक की उद्भावना की है, किन्तु अन्त्यज बने नायक के साथ विदूषक की सङ्गति ठीक बैठती नहीं जान पड़ती। नारद को उपस्थित कर दोनों नायक–नायिका का विवाह करवाना निरर्थक प्रतीत होता है। यद्यपि डॉ0 कीथ अविमारक को प्रेमकथा के आधार पर निर्मित, सुन्दर नाटक मानते हैं, जिसकी अभिव्यंजना तथा घटना अप्रौढ़ है, किन्तु अविमारक में कहीं–कहीं इतनी अधिक भावावेशता चित्रित की गई है, कि वह नाटक के सौन्दर्य को विकृत कर देती है। 'दरिद्रचारुदत्त' में चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणय का 'रोमानी' वातावरण चित्रित है।

स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण निश्चित रूप से भास के उच्च कोटि के नाटक हैं। इन दोनों नाटकों में कवि ने उदयन की अर्धैतिहासिक कथा को लिया है, जिसे बाद में हर्ष ने भी रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटिकाओं का आधार बनाया है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन

के द्वारा बन्दी बनाये हुए उदयन के द्वारा वासवदत्ता को भगा ले जाने की कथा है; किन्तु उदयन तथा वासवदत्ता, दोनों ही नाटक के पात्रों के रूप में नहीं आते। नाटक का प्रमुख पात्र यौगन्धरायण है, जो अपनी नीति से उदयन का महासेन के बंदीगृह से छुड़ाने तथा वासवदत्ता से परिणय कराने में सफल होता है। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की भाँति प्रतिज्ञा यौगन्धरायण भी राजनीतिक चालों से भरा हुआ नाटक है। किन्तु जहाँ मुद्राराक्षस शुद्ध राजनीतिक नाटक है, वहाँ प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में उदयन और वासवदत्ता की प्रणयकथा के 'रोमानी' तानेबाने को बुन दिया गया है। आलोचकों ने प्रतिज्ञा में कृत्रिम हाथी के छल से उदयन के पकड़े जाने की, उद्भावना को, और महासेन के द्वारा प्रथम तो उदयन का आदर करने, किन्तु बाद में निष्कारण श्रृंखलाबद्ध कर दिये जाने की कल्पना को दोषपूर्ण माना है11। इतना होने पर भी, नाटक में यौगन्धरायण का स्वामिभक्त चरित्र अत्यधिक प्रभावशाली है, जो स्वामी के लिए प्रत्येक बलिदान करने को प्रस्तुत है। महासेन प्रद्योत के राजभवन का दृश्य, तथा तृतीय अंक का विदूषक और उन्मत्तक का वार्तालाप नाटक को मनोरजंक बनाने में सहायता करता है। स्वप्नवासवदत्तम् का घटनाचक्र विशेष कुशलता से निबद्ध किया गया है। इनमें कार्यान्विति का पूर्ण ध्यान रखा गया है, तथा प्रभावात्मकता पूर्णतः पाई जाती है। कवि ने लोककथा को लेकर अपने ढङ्ग से सजाया है। नाटक की दोनों नायिकाओं—वासवदत्ता और पद्मावती—के चरित्रों को स्पष्टरूप से निजी व्यक्तित्व दिया गया है। हर्ष की नाटिकाओं का विलासी उदयन यहाँ अधिक गम्भीर रूप लेकर आता है। हर्ष का उदयन दक्षिण होते हुए भी शठ तथा धूर्त विशेष जान पड़ता है। भास के स्वप्नवासवदत्तम् का उदयन पूर्णतः दक्षिण है। वह वासवदत्ता के जल जाने पर भी उसे नहीं भूल पाता। वासवदत्ता के चरित्र को चित्रित करने में कवि ने बड़ी सावधानी और कुशलता बरती है। वासवदत्ता अपनी वास्तविकता को छिपाकर अपने पति के पराक्रम के लिए अपूर्व त्याग करती है। यौगंधरायण के कहने से वह अपने को आग में जलने की खबर फैलवाकर मगधराज दर्शक के अन्तःपुर में पद्मावती के पास रहना स्वीकार करती है, तथा पद्मावती के साथ उदयन का विवाह होने देती है। यही नहीं, वह अपने आपको उदयन के समक्ष प्रकट होने से बचाती है। नाटक अत्यधिक भावात्मक है, किन्तु कवि ने यहाँ अविमारक की तरह 'मेलोड्रेमेटिक' तत्त्व का समावेश न कर, नाटक की प्रभावोत्पादकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। वैसे वासवदत्ता के न मरने का पता सामाजिकों को आरम्भ में ही चल जाता है, जो नाटक की कुतूहलवृत्ति को समाप्त कर देता है। पर ऐसा भी माना जा सकता है कि नाटककार स्वयं 'वासवदत्ता जली नही है' इस भावना को सामाजिकों में आरम्भ से ही उत्पन्न कर देना चाहता है, और यहाँ वह 'नाटकीय आश्चर्य' के स्थान पर 'नाटकीय अपेक्षा' की योजना करता जान पड़ता है। यद्यपि स्वप्नवासवदत्तम् का नाटकीय संविधान प्रौढ़ नहीं है, तथापि इसके निर्वाह से नाटककार का महान् व्यक्तित्व प्रकट होता है। राजशेखर का यह कहना कि 'भास के नाटकों को परीक्षार्थ (आलोचना की) अग्नि में फेंके जाने पर, स्वप्नवासवदत्त्म् न जलाया जा सका'12 उचित जान पड़ता है। राजशेखर की इन पंक्तियों से स्वप्नवासवदत्तम् में रानी के जलने की झूठी खबर उड़ाने की भी व्यजंना होती है।

संदर्भ स्रोत

1. रामः—हनूमन्, अलमलं संभ्रमेण। एतदनुष्ठीयते। (शरं मुक्त्वा) हन्त पतितो वाली। अभिषेक अंक 1.पृ0 325.

2. बाली—सुग्रीव, संवार्यवां स्त्रीजनः । एवंगतं नार्हति मां द्रष्टुम्।।
3. सुमन्त्रः— सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता।।(11)
4. भरतः— कथं हृतेति। (मोहमुपागतः)—(प्रतिमा—अंक 5, पृ0 306) वही पृ0 396.97
5. भरतः— कथं हृतेति। (मोहमुपागतः)—(अंक 3पृ0 277—78
6. कृष्ण की उपासना ईसा पूर्व पहली शती से ही चल पड़ी होगी, और भास के लगभग 200 वर्ष पूर्व ही कृष्ण का राजनीतिक व्यक्तित्व, अमीरों के उपास्थ 'गोपाल' कृष्ण से मिला होगा। यदि भास सचमुच क्षत्रपों के आश्रित थे, तो सम्भवतः क्षत्रप भी कृष्णभक्त रहे होंगे—क्षत्रप विष्णुभक्त थे, यह तो इतिहास प्रसिद्ध है।
7. दुर्योधनः— कथं कथं दायाद्यमिति।
   वने पितृव्यो मृगयाप्रसंगतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान्।
   तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृह; पराज्मजानां पितृतां कथंव्रजेत्।। 21।।
   वासुदेवः—पुराविदं भवन्तं पृच्छामि।
   विचित्रवीर्यो सिषयी विपत्ति क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम्।
   व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एवं लभेत राज्यं जनकः कथं ते।। 22।।
8. बालचरित—द्वितीय अंक, पृ0 525—28. 13 स0 क0
9. Keith: Sanskrit Drama- p. 106.
   (साथ हो) अरष्टर्षभः—एष भोः।
   श्रृङ्गग्रकोटिकिरणैः खमिवालिखंश्च शत्रौर्वधार्यमुप—गम्य वृषस्य रूपम्।।
   वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमानमाक्रम्यशत्रु—महमद्यसुखं चरामि।। (बाल0 3.5)
10. बालचरित, चतुर्थ अंक पृ0 546—47.
11. नकली हाथी की कल्पना को भामह ने दोष माना है, क्योंकि जब उदयन को हस्ति विद्या में कुशल माना गया है, तो वह नकली हाथी के धोखे में कैसे आ सकता था। (भामह 4.40) पर लोककथाओं में ऐसा चलता है, इसे मानने पर संभवतः भास की उद्भावना दोषयुक्त न दिखाई पड़ेगी।
12. भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैःक्षिप्ते परीक्षितुम्।
    स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।।
    —राजशेखर

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

वाल्मीकि रामायण में मानवीय चेतना

❑ डॉ. अनिरुद्ध कुमार पाण्डेय*
❑ पूजा शर्मा**

शोध सारांश

रामायण में सुन्दर पद विन्यास सुबोध रचना का सामांजस्य है जो ग्रन्थ को अर्वाचीनता का परिचायक बनाता है। महर्षि वाल्मीकि त्रेतायुग में होने वाले रामचन्द्र के समकालिक है। इस ग्रन्थ में आर्य सभ्यता को महर्षि ने विशुद्ध रूप से चित्रित किया है तथा वाल्मीकि के अरण्य को झांकने से अनेकानेक सौन्दर्य–बोध की प्रतीति होती है। भौगोलिक दृष्टि से भी यह अद्भुत तथा अत्यन्त प्राचीन मालूम पड़ता है। जैसे अनार्य तथा जंगली जातियों का वर्णन, सभ्यता, पर्वत श्रेणियों इत्यादि की उल्लेखनीयता। सामाजिक दृष्टि से भी रामायण का समाज आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित था। पिता कुटुम्ब का पोषक तथा नेता हुआ करता है जिसमें राम आदर्श पुत्र, भरत में आदर्श भ्रातृत्व, सुग्रीव में मित्रता की कसौटी, सीता में आदर्श पत्नीत्व के गुण महर्षि ने बड़ी ही कुशलता के साथ एक सूत्र में पिरो दिया है।

आदिकवि वाल्मीकि जी ने रामायण में अनेकानेक जगहों पर प्रकृति का मनोहारी वर्णन किया है उनके द्वारा किये गये वर्णनों को जब भी हम पढ़ते है तो उस दृश्य की छवि हमारे हृदय में स्थापित हो जाती है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानों सम्पूर्ण घटनाएँ हमारी आखों के सामने ही है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आदिकवि ने किसी प्राचीन काव्य को बिना ही देखे, किसी ग्रन्थ से बिना ही सहारा लिए सर्वोत्तम काव्य का निर्माण किया। इनका प्राकृतिक चित्रण तो सुन्दर है ही, संवाद सर्वाधिक सुन्दर है। रामायण के लक्षणों के आधार पर ही दण्डी आदि ने काव्यों की परिभाषा बतलायी। 'त्रयम्बकराज' मखानी ने सुन्दरकाण्ड की व्याख्याा में प्रायः सभी श्लोकों को अलंकार रसादियुक्त मानकर काण्डनाम की सार्थकता दिखलाई है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। सुन्दरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग तो नितान्त सुन्दर है ही। श्री मखानी ने सभी के उदाहरण भी दिये है। हुनमान जी की वार्तालाप कुशलता सर्वत्र देखते बनती है। श्री राम की प्रतिपादन शैली, दशरथ जी की संभाषण पद्धति अयोध्याकाण्ड दूसरा सर्ग। किमधिंक कहीं–कहीं रावण का भी कथन –

* प्राध्यापक एवं व्याकरण विभागाध्यक्ष, शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोध छात्रा, एम.ए. (संस्कृत), अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

"राजलक्षण युक्तेन कान्तेनानुपमेन च।
उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान्।।[1]

राजा दशरथ का स्वर राजोचित स्निग्धता और गम्भीरता आदि गुणों से युक्त था, अत्यन्त कमनीय और अनुपम था। वे उस अद्‌भुत रसमय स्वर से समस्त नरेशों को सम्बोधित करके बोले–अनेक सहस्त्र (साठ हजार) वर्षों की आयु पाकर जीवित रहते हुए अपने इस जराजीर्ण शरीर को अब मैं विश्राम देना चाहता हूँ। मेरे पुत्र श्रीराम मेरी अपेक्षा सभी गुणों में श्रेष्ठ है। शत्रुओं की नगरी पर विजय पानेवाले श्री रामचन्द्र बल–पराक्रम में देवराज इन्द्र के समान हैं। पुष्य–नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा की भॉति समस्त कार्यो के साधन में कुशल तथा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ उन पुरूष शिरोमणि श्री रामचन्द्र को कल प्रातःकाल पुष्यनक्षत्र में युवराज के पदपर नियुक्त करूँगा।

गुणान् गुणवतो देव देवकल्पस्य धीमतः।
प्रियानानन्दनाम् कृत्स्नान् प्रवक्ष्यामोऽथ तान् श्रृणु।।[2]

दशरथ जी श्रीराम जी के गुणों का वर्णन करते हुए कहते है कि "देव! देवताओं के तुल्य बुद्धिमान् और गुणवान् श्रीरामचन्द्र जी के सारे गुण सबको प्रिय लगने वाले और आनन्ददायक है, हम इस समय उनका यत्किञ्च वर्णन कर रहे है, आप उन्हे सुनिये। श्रीराम धर्मज, सत्य प्रतिज्ञ, शीलवान्, अदोषदर्शी, शान्त, दीन–दुःखियों को सांत्वना प्रदान करने वाले मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाववाले, स्थिरबुद्धि सदा कल्याणकारी, असूयारहित, समस्त प्राणियों के प्रति प्रिय वचन बोलने वाले और सत्यवादी हैं। वे सत्यवादी, महान् धनुर्धर, वृद्ध पुरूषों के सेवक और जितेन्द्रिय है। श्री रामचन्द्र जी" ऐसे सर्वगुण–सम्पन्न, लोकपालों के समान प्रभावशाली एवं सत्यपराक्रमी श्रीराम को इस पृथ्वी की जनता अपना स्वामी बनाना चाहती है।

इसी प्रकार हनुमान जी ने सीताजी के सामने और रावण के सामने जो श्रीराम के गुण कहे हैं, उनमें उन्हें ईश्वर तो नहीं बतलाया, किन्तु "श्री राम में यह सामर्थ्य है कि वे एक ही क्षण में समस्त स्थावर–जंगमात्मक विश्व को संहृत कर दूसरे ही क्षण पुनः इस संसार का ज्यों का त्यों निर्माण कर सकते हैं" इस कथन में क्या ईश्वरता का भाव स्पष्ट नहीं हो जाता? कितनी स्पष्टता हैः–

सत्यं राक्षसराजेन्द्र श्रृणुष्व वचनं मम्।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः।।
सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य संभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामों महायशाः।।[3]

संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य–सृष्टि का चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य कला का परम औदात्य है! वाल्मीकि रामायण 'महनीय कला' का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है।

संस्कृत की काव्य धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी–इसका परिचय उसी समय मिल गया जब प्रेम परायण सहचर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौञ्ची के करूण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था– 'शोकः श्लोकत्वमागतः! काव्य का जीवन रस है, काव्य की आत्मा रस हैं।

आदि कवि ने अपने काव्यमन्दिर की पीठ पर प्रविष्ठित किया है–मर्यादा पुरूषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को! विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच में रहकर व्यक्ति अपने शील के सौन्दर्य की किस प्रकार रक्षा करता है यह हमें वाल्मीकि जी ने ही सिखलाया है, यदि आदि कवि ने इस चरित्र का चित्रण न किया होता तो हमें मंजुल गुणों के सामंजस्य का परिचय कहाँ से मिलता? इसके शब्दों में इतनी माधुरी है, चित्रों में इतनी चमक है कि मानव

के कान और नेत्र इसके परिशीलन से एक साथ ही आप्यायित हो उठते हैं। रामायण को जितनी बार पढ़ा जाय उतनी बार नयी–नयी बाते सूझती है। इस सरल परिचित शब्दों में इतना रस–परिपाक हुआ है कि पढ़ने वाले का चित्त आनन्द से गद्गद् हो उठता है। सच बात तो ये है कि रामायण के इन अनुष्टुपों को पढ़कर शताब्दियों से भारत का हृदय स्पन्दित होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। वाल्मीकि रामायण में प्रत्येक काण्डों में सौन्दर्य बोध होता है। जैसे अयोध्या काण्ड में श्री राम के सद्गुणों का वर्णन राजा दशरथ का श्री राम को युवराज बनाने का विचार तथा विभिन्न नरेशों और नगर एवं जनपद के लोगों को मन्त्रणा के लिए अपने दरबार में इन जगहों पर वाकचटुता का सौन्दर्य वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब श्री रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण सहित वन के लिए प्रस्थान करके चित्रकूट पहुँचते हैं तो वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है।

"पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः।
तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चैव हि।।[4]
विचरन्ति वनान्तेषु तानि इक्ष्यसि राघव।
सरित्प्रस्त्रवणप्रस्थान दरीकन्दरनिर्झरान्।
चरतः सीतया सार्धं नन्दिष्यति मनस्तव।।[5]

वह पर्वत परम पवित्र रमणीय तथा बहुसंख्यक फल–फूलों से सम्पन्न है, वहाँ झुंड के झुंड और हिरण वन के भीतर विचरते रहते हैं। रघुनन्दन तुम उन सबको प्रत्यक्ष देखोगे। मन्दाकिनी नदी अनेकानेक जलस्त्रोत, पर्वत शिखर, गुफाद्व कन्दरा और झरने भी तुम्हारे देखने में आयेगें। वह पर्वत सीता के साथ विचरते हुए तुम्हारे मन को आनन्द प्रदान करेगा। फिर श्री रामचन्द्र जी माता सीता जी को चित्रकूट की शोभा दिखाते हुए कहते है कि कल्याणि! इस पर्वत पर दृष्टिपात तो करो, नाना प्रकार के असंख्य पक्षी यहाँ कलरव कर रहें है। नाना प्रकार के धातुओं से मण्डित इसके गगन–चुम्बी शिखर मानो आकाश को वेध रहे है। इन शिखरों से विभूषित हुआ यह चित्रकूट कैसी शोभा पा रहा है। विभिन्न धातुओं से अलकृत अचलराज चित्रकूट के प्रदेश कितने सुन्दर लगते हैं। इनमें से कोई तो चांदी के समान चमक रहें हैं। कोई लोह की लाल आभा का विस्तार करते है। किन्हीं प्रदेशों के रंग पीले और मंजिष्ठ वर्ण के हैं। यह पर्वत बहुसंख्यक पक्षियों से व्याप्त है तथा नाना प्रकार के मृगों, बड़े–बड़े व्याघ्रों, चीतों और रीछों से भरा हुआ है। वे व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु अपने दृष्ट भाव का परित्याग करके यहाँ रहते है और इस पर्वत की शोभा बढ़ाते है। इसी प्रकार वाल्मीकि जी ने रावण की लंका का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है।

काञ्चनेना वृता रम्यां प्रकारेण महापुरीम्।
गृहश्च गिरिसकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः।।6

वह महापुरी सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई थी तथा पर्वत के समान ऊँचे और शरद–ऋृतु के बादलों के समान श्वेत भवनों से भरी हुई थी। कपिवर हनुमान ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तथा राक्षसराज रावण द्वारा सुरक्षित उस पुरी को आकाश में तैरती–सी देखा। विश्वकर्मा की बनायी हुई लंका मानो उसको मानसिक संकल्प से रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी। इसके बाद हनुमान जी अशोक वाटिका में प्रवेश करके उसकी शोभा को देखते है। उस चहारदीवारी पर बैठें हुए महाकवि हनुमान जी के सारे अंगों में हर्षजनित रोमाञ्च हो आया। उन्होने बसन्त के आरम्भ में वहाँ नाना प्रकार के वृक्ष देखे जिनकी डालियों के अग्रभाग फूलों के भार से लदें थे। वाल्मीकि जी ने अशोक वाटिका का मनोहर वर्णन करते हुए लिखा है कि–

वह विचित्र वाटिका सोने और चांदी के समान वर्णवाले वृक्षों द्वारा सब ओर से घिरी हुई थी। उसमें नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे जिससे वह सारी वाटिका गूंज रही थी, उसके भीतर प्रवेश करके बलवान्–हनुमान जी ने उसका निरीक्षण किया। भांति–भांति के विंहगमों और मृगसमूहों से उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। वह विचित्र काननों से अलंकृत थी और नवोदित सूर्य के समान अरूण रंग की दिखायी देती थी।

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिनदा कुलाम्।
मतबर्हिण संधुष्टां नानाद्विजगणायुताम्।।[7]

वह वाटिका ऐसी थी जहाँ जाने से हर समय लोगों के मन में प्रसन्नता होती थी। मृग और पक्षी के मन में प्रसन्नता होती थी। मृग और पक्षी मदमत्त हो उठते थे। मत्तवाले मोंरो का कलनाद वहां निरन्तर गूँजता रहता था और नाना प्रकार के पक्षी वहाँ निवास करते थे। आदिकाव्य रामायणों की परम्परा का स्रष्टा अवश्य रहा आया तथा कुछ पुराणों में भी राम भक्ति का निर्झर प्रस्फुटित किया। परन्तु एक समय आया जब राम भक्त समूह अपने प्रभु की भक्ति में स्नेह–विभोर होने लगा था। वह चरणों की उपासना में विधा हुआ राघवेन्द्र सरकार के शारीरिक–सौन्दर्य हेतु ललक उठा और राम को लीला बिहारी, रसिकेन्द्रशेखर मानकर अपना बालक, स्वामी, पति, सखा एवं अन्य और भी रसिक संबंध देकर कभी उनकी बाल–लीला कभी रास–लीला तो कभी स्नान, निकुंज आदि केलियों में समय गुजारने लगा चाहे सम्बन्ध कोई भी हो, अपने प्रभु जिस प्रकार से सर्वाधिक प्रिय लगे, उसी नियम से उनसे स्नेह करना ही भक्ति का ध्येय बन गया। एक क्षण भी उनसे अलग रहना पाप समझता था। अस्तु एक विशिष्ट उपासना–पद्वति का जन्म हुआ–'अष्टयाम–उपासना'। आठों पहर श्री राम की दैनिक लीलाओं की भावना से मस्त होकर भाव–देह के द्वारा उनकी उपासना करना ही इन भक्तों का परम कर्तव्य हो गया। वाल्मीकि रामायण में उसका विकास हुआ, वह भक्ति बीज विटप बना–विभिन्न रामायणों, पुराणों एवं संहिताओं के साहित्य में वह राम भक्ति विटप असंख्य श्लोक पुष्पों से पुष्पित हुआ। इसी परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी के समीक्षक आचार्य हिन्दी का कवि भले ही स्वीकार करें किन्तु 'रामचरित मानस' में पूर्ववर्ती भक्ति पुष्पों का मधु–पराग सुरवाणी में ही संचित हुआ है।

इन सबका भावार्थ यह हुआ कि रामायण में एक ही कवि की लेखनी ने अपना चमत्कार दिखाया है। श्लोकों में समरसता शब्द और अर्थ का मंजुल सामंजस्य स्पष्ट प्रतीत होता है। यद्यपि रामायण के लेखक की चर्चा बहुतायत नहीं पायी जाती परन्तु लव और कुश के द्वारा गाये जाने वाले तथ्य से हम भली भांति परिचित है जिसको महर्षि ने अपने ज्ञान के रूप में बच्चों में उडेल दिया है। रामायण में सुन्दर पद विन्यास सुबोध रचना का सामांजस्य है जो ग्रन्थ को अर्वाचीनता का परिचायक बनाता है। महर्षि वाल्मीकि त्रेतायुग में होने वाले रामचन्द्र के समकालिक है। इस ग्रन्थ में आर्य सभ्यता को महर्षि ने विशुद्ध रूप से चित्रित किया है। तथा अनेकानेक सौन्दर्य बोध का वर्णन वाल्मीकि के अरण्य को झांकने से प्रतीत होता है। भौगोलिक दृष्टि से भी यह दुत अत्यन्त प्राचीन मालूम पड़ता है। जैसे अनार्य तथा जंगली जातियों का वर्णन, सभ्यता, पर्वत श्रेणियों इत्यादि की उल्लेखनीयता। सामाजिक दृष्टि से भी रामायण का समाज आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित था। पिता कुटुम्ब का पोषक तथा नेता हुआ करता है जिसमें राम आदर्श पुत्र, भरत में आदर्श भ्रातृत्व, सुग्रीव में मित्रता की कसौटी, सीता में आदर्श पत्नीत्व के गुण महर्षि ने पिरो दिया। तत् काल में नैतिक भावना भी अपने ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित थी। सुन्दरकाण्ड के प्रसंग में हनुमान सीता को अपनी

पीठ पर बैठाकर राम के पास चलने का प्रस्ताव करते है परन्तु सीता पर पुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं करती वह उन्हें तिरस्कार कर देती हैं। रावण वध के अनन्तर सीता कठिन अग्नि परीक्षा से तप्त होकर अपने चरित्र को सिद्व करती है। भारत के सांस्कृतिक मानस को ढालने में महर्षि वाल्मीकि की कृति ने प्रायः एक अपरिमेय शक्ति से युक्त साधन के रूप में कार्य किया है। इसमें राम, सीता जैसे या फिर हनुमान, लक्ष्मण, भरत जैसे पात्रों के रूप में अपने नैतिक आदर्शों की सजीव प्रतिमूर्तियों को उन्होंने चित्रित किया है ताकि सम्पूर्ण मानव इनसे प्रेम कर सके और उनका अनुसरण कर सके। जिसके परिणामस्वरूप इन्हीं की अभिव्यक्ति के साथ चित्रित होते है कि वे स्थायी भक्ति और पूजा के पात्र बन गए हैं। हमारे राष्ट्रीय चरित्र के सर्वोत्तम और मधुरतम तत्त्वों में से बहुतों का गठन इसी रामायण में ही किया है। इसी में इन सूक्ष्मतम और उत्कृष्ट तथा सुदंर आत्मिक स्वरों को सुकुमार मानव प्रकृति को प्रतिष्ठित किया है। जो सगुण और आचार–व्यवहार के प्रचलित वाह्य अंगों से कहीं अधिक मूल्यवान है। इनसे जीवन में ताजगी और ओज गुणों से भरपूर ये महाकाव्य एक पूर्ण राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कार्य की पूर्ति के लिए रचे गये थे, जो सहस्त्रों वर्ष पूर्व लिखे होने के पश्चात् भी आज हमारे जीवन को जीवन्तता प्रदान कर रहे हैं।

सन्दर्भ :–

1. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या–3।
2. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या–26।
3. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड 51वॉ वर्ग श्लोक संख्या–38,39।
4. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 54वॉ सर्ग श्लोक संख्या–41।
5. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 54वॉ सर्ग श्लोक संख्या–42।
6. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या–16।
7. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड द्वितीय सर्ग श्लोक संख्या–18।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

महाकवि कालिदास की अलंकार योजना
(सन्दर्भ : विक्रमोर्वशीयम्)

❐ डॉ. शीलेन्द्र पाठक*

शोध सारांश

यद्यपि महाकवि कालिदास अप्रतिम उपमा के लिए प्रसिद्ध हैं तथा ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, कवि उपमा के अलावा अन्य अलंकारों के प्रयोग से अछूते हैं। उन्होंने अपने खण्डकाव्यों, महाकाव्यों तथा नाट्यकाव्यों को रोचकता प्रदान करने के लिए सर्वत्र उपमा के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का प्रयोग किया है तथा अलंकार योजना में सफल भी रहे हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों का अध्ययन किया गया है जो विक्रमोर्वशीयम नाट्यकाव्य को आधार बनाकर किया गया है।

कथन की रोचक, ग्राह्य और प्रभावपूर्ण प्रणाली ही अलंकार है यदि ऐसा कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि यथार्थ यही है कि, कवि अपनी अनुभूतियों को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना चाहता है। अलंकारों के प्रयोग से कवि के कथन में शक्ति और प्रभविष्णुता उत्पन्न हो जाती है। वह सामान्य अर्थ की प्रतीतिकर शब्दों में भी चमत्कार उत्पन्न कर विशेष भावाभिव्यंजक बना देते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे– 'उसका हृदय बहुत कोमल है' वक्ता के द्वारा कथित इस वाक्य से हृदय की कोमलता का भाव उतनी स्पष्टता और मार्मिकता से व्यंजित नहीं हो पाता, जितना हम अलंकृत कथन से कर सकते हैं। जैसे–जब वक्ता यह कहता है कि, 'उसका हृदय नवनीत के समान कोमल है' तब निश्चय ही नवनीत उपमान के विधान से वक्ता की उक्ति में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। जो विषय बोधक होता हुआ उक्ति वैचित्र के कारण आह्लाद प्रदायक भी हुआ।

अतः यह सिद्ध हो गया कि, काव्य में सीधी अभिधात्मक उक्ति से कवि का काम नहीं चलता, उसे अपने काव्य को सजाने के लिए अलंकारों तथा अन्य शैली प्रसाधनों का सहयोग लेना पड़ता है। इस उक्ति में जो थोड़ा बहुत आह्लाद या अर्थ की कुछ रमणीयता दिखाई देती है वह एक मात्र उपमा अलंकार से ही उत्पन्न हुई है। अलंकारवादियों ने इसीलिए अलंकार को शब्दार्थ या काव्य का सौन्दर्यास्थानिक अन्तरंग तत्त्व माना है। इसी आधार पर आचार्य जयदेव ने यहाँ तक कह दिया कि, जो व्यक्ति काव्य को अलंकार रहित मानता है मानो वह अग्नि को उष्णता रहित मानता है। यथा–

* सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा (म.प्र.)

अंङ्गी करोति यः काव्यं शब्दार्थवनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुनुश्मनलंकृती।।[1]

स्वयं चन्द्रालोककार की उपर्युक्त उक्ति में यमक और निदर्शना अलंकारों का चमत्कार है तथा इस अलंकार विधान के कारण ही उपर्युक्त पक्तियों में कुछ काव्यत्व दिखाई देता है। अग्निपुराण में रस की काव्यजीवित के रूप में महत्ता स्वीकार की गई है तथापि अलंकार को काव्य का प्राणाधार माना गया है। यथा–''अलंकाररहिता विधवैवसरस्वती''[2] अर्थात् अलंकार रहित वाणी विधवा नारी के समान है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकार की दो प्रकार की परिभाषायें उपलब्ध होती हैं, किन्तु रोचक विषय यह है कि, वे दोनों ही एक दूसरे से विपरीत दिशाओं का स्पर्श करती हैं। एक परिभाषा है अलंकारवादी, तथा दूसरी है रसवादी।

अलंकार संप्रदाय के प्रतिष्ठापकाचार्य भामह हैं। इनके अतिरिक्त इस परंपरा में दण्डी, वामन, उद्भट, रुद्रट आदि दिग्गज कवियों की लम्बी पंक्ति है। भामह ने अलंकार को काव्य का सर्वोपरि तत्त्व माना है। उनका कथन है कि, नारी का सुन्दर मुख भी विना आभूषण के सुशोभित नही हो पाता–

''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्''[3]

भामह के काव्यालंकार से स्पष्ट विदित होता है कि उन दिनो काव्य में अलंकार वर्ण्यविन्यास, या पद लालित्य, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति, गुणविधान आदि शैली प्रसाधनों पर ही विचारको की दृष्टि मुख्यरूप से केन्द्रित हुआ करती थी। भामह ने अलंकार का मूल वक्रोक्ति को माना है। वक्रोक्ति से उनका अभिप्राय वचन का वा कम्पन अर्थात् वचनवैचित्र्य है। सामान्य लोकप्रचलन का अतिक्रमण करने वाला वचन वक्रोक्ति है–

लोकातिक्रान्त गोचरं वचनं वक्रोक्तिः''[4]

उन्होंने शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य माना है। 'शब्दार्थो काव्यम्' किन्तु उनकी दृष्टि में वक्र शब्द और वक्रार्थ से ही काव्य बनता है।'वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिरलंकाराय कल्प्यते'। भामह के अतिरिक्त दूसरे अलंकारवादी कवि दण्डी के अनुसार अलंकार काव्य के सहज धर्म हैं और काव्य–सौन्दर्य केवल अलंकार पर ही निर्भर करता है। यथा–

'काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते''[5]

दण्डी ने भी रस–भावादि को स्वतन्त्र स्थान न देकर अलंकार के अन्तर्गत ''रसवदलंकार प्रेयः'' अलंकार और उर्जस्वि अलंकार आदि कहा है। उन्होंने भी भामह के ही समान स्वभावोक्ति, वर्ण्यवस्तु, या भाव का शब्दार्थ चमत्कार रहित स्वाभाविक वर्णन को स्वीकार करते हुए आठों रसों को रसवत् अलंकार माना है। स्नेह, भक्ति आदि अत्यन्त प्रीतिकर भाव वर्णन को प्रेयः अलंकार कहा है तथा गर्वोक्ति को उर्जस्वि अलंकार कहा है। रस रीति, गुण आदि काव्यतत्त्व ही नही दण्डी ने सन्ध्यंग वृत्ति वृत्यंग लक्षण आदि नाट्यतत्वों को भी अलंकार में ही समाहित कर लिया है। आचार्य वामन ने अलंकार को गुण का सहायक तथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। उनके अनुसार अलंकार से ही काव्य में ग्राह्यता उत्पन्न होती है–''काव्यं ग्राह्यमलंकारात्''

आचार्य वामन ने गुण को काव्य का नित्य धर्म माना और अलंकार को उसका सहायक आवश्यक तत्व माना है।

इनके अतिरिक्त प्रतिहारेन्दुराज रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, अप्ययदीक्षित आदि अलंकारवादियों ने अपने–अपने समय में काव्य में अलंकारों का प्रमुख स्थान घोषित किया है।

काव्य में अलंकार विषय विवादास्पद होते हुए भी अबतक अभिव्यक्ति की अनुपमता के लिए अपरिहार्य है तथा काव्य के कलापक्ष का अभिन्न अंग है। वस्तुतः अलंकार काव्य के न तो सहज गुण हैं और न ही स्थिर धर्म, अपितु अलंकार काव्य के अविभाज्य अंग हैं। ऐसा माना जाना चाहिए। काव्य

में रस और उसके साथ–साथ अलंकार दोनों ही एक समान ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। काव्य में से अलंकार को पृथक नही किया जा सकता है और न उन्हें स्वतन्त्र अन्तरंग तत्त्व ही कहा जा सकता हैं। यद्यपि यह सम्य है कि, वे कविता में काव्य के समष्टि सौन्दर्य में संश्लिष्ट रहते हैं और कहीं अन्यत्र से आरोपित नहीं किये जाते। अनुभूति के क्षण में वे स्वतः ही स्फुरित हो जाते हैं। वास्तव में अन्तरंग अलंकार्य भाव रस वस्तु विषय के अन्तरंग साधन हैं। भामह के अनुसार अलंकार का आधार वक्रता है, और दण्डी के अनुसार अतिशयोक्ति। व्यक्ति जो कुछ भी है उससे और अधिक प्रकट करने की प्रवृत्ति ही अलंकार की जननी है। अलकार की महत्ता को नया स्वरूप प्रदान करते हुए आधुनिक अलंकारवादी विद्वान डा. नगेन्द्र कहते हैं कि, हमारे अलंकार प्रेम की प्रेरक प्रवृत्ति हैं।

आत्म प्रदर्शन और दर्शन में अतिशय का तत्त्व अनिवार्यतः होता है। इस प्रकार अलंकृत वाणी स्पष्ट शब्दों में अलंकार का मूलरूप अतिश्योक्ति ठहरती है। जीवन में आभूषणों की मूल्यवत्ता अपने स्व को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में है और काव्य में अलंकार की मूल्यवत्ता उक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने में।

यही सब स्थितियाँ अलंकार के विभिन्न रूप हैं। जैसे अलग–अलग अंगों में अलग–अलग आभूषणों का चयन किया जाता है वैसे ही मानसिक स्थितियों को प्रकट करने के लिए विभिन्न अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

चमत्कार मूलक–

श्लेष, यमक, मुद्रा और चित्र अलंकार।

सादृश्य मूलक–

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, संन्देह, भ्रम, उल्लेख, व्यतिरेक, अनन्वय, दृष्टान्त, उदाहरण, निदर्शना, अन्योक्ति, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, प्रदीप, दीपक आदि।

विरोध मूलक–

असंगति, विभावना, विशेषोक्ति, विस्मयादि।

व्यंङ्यार्थ मूलक–

व्यंग्योक्ति, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि।

अतिश्योक्ति मूलक–

अतिश्योक्ति अलंकार।

औचित्य मूलक–

तद्गुण, परिसंख्या, अनुज्ञा, तिरस्कार, विनोक्ति, परिकर आदि।

अलंकार काव्य की रोचक, ग्राह्य और प्रभावपूर्ण प्रणाली है। यह आरोपित न होकर अनुभूतिक होती है। परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अलंकारों का प्रयोग किया जाता है।

विक्रमोर्वशीयम् में साम्यमूलक तथा वैषम्यमूलक दोनों ही प्रकार के अलंकारों की प्रधानता है। रूपसाम्य और गुणसाम्य तथा उसके साथ ही प्रभाव साम्य की रोचक छटा के दर्शन एक साथ होते हैं। आचार्यों के उपरोक्त उदाहरणों से काव्य में अलंकार की प्रधानता स्पष्ट हो चुकी है। काव्यगत भावों का प्रकाशन करने के लिए भाषा की परमावश्यकता होती है। वह भाषा हमारी अलंकृत हो तो सब प्रकार से सुखद सरस और प्रभावोत्पादक हो जाती है। जिससे काव्य की रमणीयता और भी बढ़ जाती है। इसीलिए कहा गया है–

''रमणीयार्थप्रतिपादकःशब्दः काव्यम्''[6]

अर्थात् भाव को प्रभावपूर्ण बनाना शब्दगुम्फन और वाक्य–विन्यास का ही कार्य है। काव्य में शब्दों का समायोजन मधुर, मंजुल और मृदुल होता है। वह श्रुति सुखद होकर भावुक ह्रदय को अपनी ओर

आकृष्ट कर अपने अर्थ और भाव को समझाने तथा उसके रसस्वादन करने की ओर प्रवृत्त करता है।

जब काव्य की शब्दावली अलंकृत होती है तब उसकी संवेदना अधिक होती है तथा उसमें काव्यार्थ भी अधिक होता है और वह भावुक के द्वारा समझने में अधिक सहज होती है। यही कारण है कि, कवि के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले काव्यों को अनुप्रास, उपमा आदि अलंकारों से सुसज्जित कर भावुकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ''काव्य में शब्दालंकारों का सम्बन्ध मानव की स्वाभाविक मनोवृत्तियों के आधार पर होता है। अतः वे स्वाभाविक रूप से मानव की मनोवृत्तियों को अतिप्रिय है। शब्दों से परे अर्थ या भाव और भावार्थों से परे भावनाएँ या रसाधार नहीं हैं। अच्छे शब्दों के द्वारा ही भावुक के हृदय में अच्छी भाव व्यंजना उत्पन्न होती है।''[7]

इसलिए अर्थालंकारों से अलंकृत वाक्य–विन्यास ही रस भावोद्दीपक हो सकते हैं। इस विचार से भी काव्यों में अलंकारों की महत्ता सिद्ध होती है। काव्य में रस भाव की प्रधानता मान्य है, किन्तु उससे भी बढ़कर अलंकार की ही महत्ता प्रकाशित होती है।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि, महाकवि कालिदास अप्रतिभ प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं, वे सुकुमार मार्ग के पथिक हैं। उन्होंने अपने भावों में तीव्रता तथा उदारता के संचारार्थ अलंकारों का प्रयोग औचित्यपूर्ण एवं कलात्मक ढंग को अपनाते हुए बड़ी सजगता से किया है। संस्कृत साहित्य जगत् में कालिदास की प्रसिद्धि उनकी उपमाओं के लिए जानी जाती है। जैसे– ''उपमा कालिदासस्य''[8]

किन्तु उनके काव्यों का रसस्वादन करने के पश्चात् यह निश्चित हो जाता है कि महाकवि केवल उपमा को ही महत्व देते हैं अन्यों को नहीं, यह तथ्य उचित नहीं। उनके काव्यों में यथास्थान सभी अलंकारों का मंजुल समावेश दिखाई देता है। यथा–

यमक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, दृष्टान्त, तुल्ययोगिता, अपन्हुति, अर्थान्तरन्यासादि। कालिदास का काव्य प्रयोग काव्य में भार स्वरूप न होकर उसके सौन्दर्य, उसकी जीवन्तता और रोचकता की अभिवृद्धि के निमित्त ही हुआ है।

उनकी लेखनी चलती है तो अलंकारों से भरी हुई होती है तथा उन अलंकारों के मध्य उपमा का कोमल, मृदुल स्पर्श नैसर्गिक रूप से पदे–पदे होता रहता है। यह महाकवि की विशेषता है। विक्रमोर्वशीयम् नाट्यग्रन्थ में उन्होंने उपमा के साथ–साथ निम्नांकित अलंकारों का प्रयोग मार्मिकता तथा समयानुकलता से किया है। यथा–

उपमा अलंकार–

गतं भयं भीरु सुरारि संभवं
त्रिलोक रक्षी हि महिमा हि वज्रिणः।
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं
निशावसाने नलिनीव पंकजम्।।[9]

उक्त श्लोक में महाकवि द्वारा उपमा अलंकार का प्रयोग किया है। महाकवि ने उर्वशी के नेत्रों की उपमा प्रातःकालीन नलिनी के द्वारा कमलिनी के विकसित करने से की गई है।

सन्देहालंकार–

मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां
शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः।
आकाशे सुरगण सेविते समन्तात्
किं नार्यः कल मधुराक्षरं प्रगीताः।।[10]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि ने मकरन्द पान से मत्त भौंरों की गुंजार है क्या? अथवा कोयलों की यह धीर गुंजन है क्या? देवताओं द्वारा सेवित आकाश में चारों ओर देवांगनाओं की मधुर ध्वनि है क्या? इस प्रकार बड़ी चातुरता से प्रश्न परिप्रश्न के माध्यम से संन्देहालंकार को प्रस्तुत किया है।

काव्यलिंगालंकार–

आविर्भूते शाशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रिः,
नैशस्यार्चिर्हुतभुज इवच्छिन्न भूयिष्ट–धूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना,
गंगा रोधः पमन कलुषा गच्छतीव प्रसादम्।।[11]

उक्त श्लोक में महाकवि ने स्वाभाविक रूप से मानवीय प्रकृति को स्पष्ट करते हुए तथा उर्वशी की आन्तरिक मूर्च्छा का अलंकारिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि उर्वशी वैसे ही प्रतीत हो रही है जैसे अन्धकार से वियुक्त होने पर धूम रहित अग्नि प्रतिभासित होती है। उपमालंकार का वर्णन करते हुए–

अदः सुरेन्द्रस्य कृतापराधान्
प्रक्षिप्य लवणाम्बु–राशौ।
वायव्यमस्त्रं शरधिं पुनस्ते
महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम्।।[12]

यहाँ पर राजा पुरुरवा के पास उपलब्ध तरकस में बाण वैसे ही लौट कर आ जाते हैं जैसे काला साँप अपने बिल से निकल कर अपना शिकार कर लेने के पश्चात् पुनः अपने बिल में घुस जाता है। यहाँ पर बाणों की उपमा भयंकर विषैले साँप से दी गई है। उपमा का दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है–

श्लेषालंकार–

आलोकान्तात् प्रतिहत तमो वृत्तिरासां प्रजानां
तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः।
तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये,
षष्ठे काले त्वमति लभसे देव विश्रान्ति मह्नः।।[13]

हे महाराज ! मेरा मानना है कि, संसार में व्यक्त, प्रजाओं के मध्य व्याप्त तमोगुण और तमोराशि (अंधकार) को हटाने के कारण आपका और सूर्य का काम एक जैसा ही है। (दूसरे अर्थ में अथवा दर्शनमात्र से क्रमशः प्रजाओं का कष्ट और अन्धकार नष्ट कर देने वाले हैं, आप और सूर्य हमारे मत में एक जैसे हैं) क्योंकि, सम्पूर्ण ग्रहों के एकमात्र स्वामी भगवान् सूर्य मध्यान्ह होने पर एक क्षण के लिए आकाश के मध्यवर्ती क्षेत्र में ठहर जाते हैं, तथा दिन के इस छठे भाग अर्थात् मध्यान्ह में आप भी प्रजाकार्य से निवृत्त होकर क्षणभर के लिए किञ्चित ही विश्राम करते हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट किया जाता है कि, उपमा के महापण्डित महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में न केवल उपमा को अपितु उससे भिन्न समस्त अलंकारों का प्रयोग किया है। विविध अलंकारों के मिश्रण के कारण ही महाकवि कालिदास की रचनायें प्राचीन होती हुई भी नित नूतन दिखाई देती हैं तथा जितना अधिक पठित होती हैं उतनी ही अधिक नवनूतन भावोत्पादिका हैं। उनके काव्यों का अध्ययन करने से पाठक कुछ पल के लिए ही सही किन्तु कवि हो जाता है, वह कल्पनाओं की उत्तुंग तरंगों में अपने को उड्डीयमान पाता है। वह कवि बनने की लालसा संजोने लगता है। यही तो महाकवि का वैशिष्ट्य है कि, वे अपना काव्य परोस कर कवि बनाने की कला रखते हैं।

सन्दर्भ–

1. चन्द्रालोक
2. अग्निपुराण
3. काव्यालंकार 1.1
4. वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्
5. काव्यादर्श
6. काव्य प्रकाश
7. अज्ञात शोध प्रबन्ध से
8. उपमा कलिदासस्य भारवेर्र्थ गौरवम्।
   दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति. योगुणाः।।
9. विक्रमोर्वशीयम् 1.6
10. विक्रमोर्वशीयम् 1.3
11. विक्रमोर्वशीयम् 1.9
12. विक्रमोशीयम् 1.19
13. विक्रमोर्वशीयम् 2.1

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

स्मृतियों में वर्णित उद्योग-धन्धे, व्यापार और वाणिज्य

❑ डॉ. सन्ध्या कुमारी*

शोध सारांश

वेद भारतीय धर्म के मूल हैं। वैदिक ज्ञान राशि का ही विस्तार उपनिषद्, दर्शन, स्मृति, आयुर्वेद आदि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं में हुआ है। स्मृति वैदिक ज्ञान और आचारशास्त्र का मूर्त रूप है। स्मृतियों में अनुभवी मुनियों ने वैदिक सिद्धान्तों को क्रियात्मक और व्यावहारिक रूप दिया है।

स्मृतियों की संख्या और उनका निर्माण-काल दोनों बहुत व्यापक हैं। निश्चित किया गया है कि ईसा से 200 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा की दसवीं शताब्दी तक स्मृतियों की रचना होती रही। उपलब्ध स्मृतियों में प्राचीनतम है मनुस्मृति। मनु के बाद स्मृतियों की एक दीर्घ परम्परा विकसित हुई। याज्ञवल्क्य स्मृति, अत्रि स्मृति, विष्णु स्मृति, पाराशर स्मृति, औशनश स्मृति, व्यास स्मृति, वसिष्ठ स्मृति, कात्यायन स्मृति, दस स्मृति, शंखस्मृति, आपस्तम्ब स्मृति, गौतम स्मृति, हारीत स्मृति, सम्वर्त स्मृति, बृहस्पति स्मृति, आंगिरस स्मृति, लिखिनि स्मृति, यम स्मृति, योगीश्वर, प्रचेता स्मृति।

विविध स्मृतियों में विविध प्रकार के धन्धों के विषय में वर्णन है। नारदीय मनुस्मृति में निम्न प्रकार के उद्योग-धन्धों के विषय में वर्णन है। कुसीद वृत्ति अर्थात् ब्याज पर रुपया देना, महापथिक राजमार्ग के व्यापारी, समुद्र से भी व्यापार किए जाने का वर्णन मिलता है। समुद्री व्यापार की समुद्र वणिक् के नाम से जाना जाता था। अभिनेता लोगों को कुशीलव, नट को शैलूष, विष तथा मद्य-विक्रेता को विषजीवी कहा जाता था। अन्य धन्धे इस प्रकार थे–सपेरा को आहितुंडिक, कृषक को कीनाश, दुराचारी व्यक्ति की साहसिक, कुश्ती लड़ने वाले को मल्ल, तेली को तैलिक, मद्य विक्रेता को शौण्डिक, ज्योतिषी को वर्षनक्षत्रसूचक, जादूगर को ऐन्द्रजालिक कहा जाता था। कुछ व्यक्ति लुब्धक (बधिक), चित्रकृत् (चित्रकार), मंख (स्मृति-पाठक, भाट), कूटकारक (छल-प्रपंच के कार्य करने वाले), कुहक (जादूगर), तस्कर (चोर), वार्धुषिक (ब्याज पर धन देने वाला), मनुष्य विक्रेता (आदमी या बच्चों को बेचने वाला) आदि धन्धे करते थे। उस समय विष-विक्रेता (मद्य एवं गांजा आदि के विक्रेता), शस्त्र-विक्रेता (हथियार विक्रेता), लवण-विक्रेता (पंसारी), अपूप-विक्रेता (हलवाई), कुलिक (कलाकार), स्तावक (भाट), दास (सेवक), नैकृतिक (जालसाजी से जीविका चलाने वाला) आदि धन्धे प्रचलित थे।[1]

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), पी.सी. बागला (पी.जी.) कॉलेज, हाथरस

मनुस्मृति में निम्नलिखित धन्धों का वर्णन है–अध्यापन, याजन (यज्ञ कराना), प्रतिग्रह (दान लेना), राष्ट्ररक्षा, व्यापार और वाणिज्य, वार्ताकर्म, कृषि, गोरक्षा, पशुरक्षा, कुसीद (सूद पर रुपया देना) तथा सेवाकार्य[2]। बुधस्मृति ने अध्यापन, याजन (पुरोहिताई), प्रतिग्रह, क्रय-विक्रय (व्यापार), वाणिज्य और साझेदारी आदि का तथा कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और सेवाकर्म आदि उद्योगों का वर्णन किया है।[3] बृहस्पति स्मृति में निम्नलिखित उद्योग-धंधों का उल्लेख है–

सुवर्णकार (सुनार), कुप्यकार (आभूषण निर्माता), सूत्रकार (जुलाहा), काष्ठशिल्पी (बढ़ई), पाषाणशिल्पी (मूर्ति बनाने वाला), चर्मकार (चमार), नर्तक, देवगृहकार (मन्दिर आदि बनाने वाला), धार्मिक वस्तुएँ (बर्तन आदि) बनाने वाले।[4] विष्णुस्मृति में रंगावतरण अर्थात् रंगमंच पर अभिनय का भी उल्लेख है[5]। वृद्ध हारीत ने निम्न उद्योग धंधों का वर्णन किया है। यथा–(1) मिट्टी के कार्य (मिट्टी के खिलौने आदि बनाना), (2) दारुकर्म (लकड़ी के खिलौने आदि बनाना), (3) शैलकर्म (पत्थर की मूर्तियाँ आदि बनाना), (4) लौहकर्म (लोहे के बर्तन और मूर्तियाँ बनाना)[6]। वृद्ध हारीत ने सारथ्य (सारथि का काम), गाणिक्य (वैश्याओं द्वारा नृत्य संगीत आदि), वैणव (मुरलीवादन) को भी धंधों के अन्तर्गत माना है[7]। बृहत्पराशर ने शिल्पियों के दो भाग किये हैं–शिल्पी और कारुक। शिल्पी में सुनार, मूर्तिकार,नर्तक, गायक आदि आते हैं और कारुक में बढ़ई, कुम्हार, मिस्त्री आदि आते हैं।[8]

विष्णुस्मृति ने कुछ निन्दित धन्धों का वर्णन किया है। इसमें प्रमुख धन्धे निम्नलिखित हैं–विकर्मस्थ (बुरे कामों में लगे हुए), वैडालव्रतिक (धूर्त), वृथालिंगी (पाखण्डी), नक्षत्रजीवी (ज्योतिषी), देवलक (पुजारी), चिकित्सक (वैद्य), सूचक (चुगलखोर), भूतकाध्यापक (वेतनभोगी अध्यापक)[9]। पराशर स्मृति में रजकी (धोबिन), चर्मकारी (चर्म-कर्म करने वाली), लुब्धकी (पक्षियों आदि को मारने वाली), वेणुजीविनी (बाँस की टोकरी आदि बनाने वाली) स्त्रियों का उल्लेख है।[10] बृहत्पराशर तथा बृहस्पति ने स्त्रियों के दासी (सेविका) कर्म का उल्लेख किया है। बृहस्पति ने दास-दासी की प्रथा को वंशपरम्परागत माना है।[11] मनु ने राजा को निर्देश दिया है कि वह बढ़ई, लोहार, कारीगर, मजदूर आदि तथा जो शूद्र श्रम द्वारा अपनी जीविका यापन करते हैं, उनसे महीने में एक दिन राजा को कुछ कार्य करा लेना चाहिए।[12]

व्यापार और वाणिज्य

मनु ने जीवन के दस हेतु बताए हैं, जिनसे जीवन निर्वाह किया जाता है। ये दस हेतु निम्न प्रकार हैं–(1) विद्या, (2) शिल्प, (3) भृति, (4) सेवा, (5) गोरक्षण, (6) व्यापार, (7) खेती, (8) धैर्य, (9) भिक्षा-समूह, (10) सूद[13]। छठें स्थान पर व्यापार को स्थान दिया गया है। यह व्यापार जीवन-निर्वाह का साधन था। मनु के ही व्यापार, पशुपालन और खेती करना वैश्य का कर्म है।[14]

स्मृतियों के मत से विपत्ति के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय को व्यापार का आश्रय लेना चाहिए। किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय पर व्यापार के बहुत से नियन्त्रण थे। गौतम ने ब्राह्मण को निम्नलिखित वस्तुएँ बेचने को मना किया है; जैसे–सुगन्धित वस्तुएँ (चन्दन आदि), द्रव पदार्थ–तेल, घी आदि, पका भोजन, तिल, सन, क्षौम, मृगचर्म, रंगा एवं स्वच्छ किया हुआ वस्त्र, दूध एवं उससे निर्मित वस्तुएँ–घी, दही, मक्खन आदि, कन्दमूल, पुष्प, फल, जड़ी-बूटी, मधु, मांस, घास, जल, विषैली औषधियाँ–अफीम, विष आदि मारे जाने वाले पशु, मनुष्य (दास), बांझ गौयें, बछड़ा, बछिया आदि।[15] कुछ विद्वानों ने ब्राह्मण को भूमि, चावल, जौ, बकरियाँ एवं भेड़, घोड़े, बैल, सद्यःप्रसूता गाय, जोतने योग्य बैल आदि को बेचना वर्जित माना है।

मनु के अनुसार ब्राह्मण यदि मांस, लोहा और नमक बेचता हैतो वह तत्क्षण ही पापी हो जाता है। तीन दिन दूध बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।[16] मनु,

बौधायन धर्मसूत्र और वसिष्ठ तीनों के विचार तिल के सम्बन्ध में एक हैं–उनके अनुसार कोई व्यक्ति तिल का उपयोग खाने, स्नान करने तथा दान के अतिरिक्त किसी अन्य काम में करता है तो वह कृमि (कीड़ा) हो जाता है और अपने पितरों के साथ कुत्ते की विष्ठा में गिर जाता है।[17]

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने प्रस्तर, नमक, रेशम, लोहा, टिन, सीसा, सभी प्रकार के वन्य पशु, सभी पालतू पशु तथा एक खुर वाले पशु, पक्षी एवं दांत वाले पशुओं को ब्राह्मण को नहीं बेचना चाहिए।[18] मनु ने इन वस्तुओं के अतिरिक्त मोम, कुश तथा नील को सम्मिलित किया है। याज्ञवल्क्य ने सोम, पंक, बकरी के ऊन से बने हुए कम्बल, चमरी हिरन के बाल, खली आदि को ब्राह्मण व क्षत्रिय द्वारा बेचने का निषेध किया है।[19] शंखलिखित तथा हारीत ने भी वर्जित विक्रेय वस्तुओं की सूची दी है। मनु ने ब्राह्मण को स्वोत्पादित तिल धार्मिक कार्यों हेतु बेचने को कहा है। याज्ञवल्क्य तथा नारद का भी यही मत है।[20] विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार राजा को विदेशी वस्तुओं पर दसवाँ भाग तथा आयातित वस्तुओं पर बीसवाँ भाग कर-ग्रहण करना चाहिए।[21]

याज्ञवल्क्य ने वस्तु का बीसवाँ भाग शुल्क के रूप में राजा को ग्रहण करने को कहा है। यदि बेचने के निषिद्ध वस्तु बेची जाती है तो राजा उस वस्तु को लेने का अधिकार रखता है।[22] जो व्यापारी आपस में मिलकर दूसरे देश से लाई गयी वस्तु को कम मूल्य पर बिकने से रोक देते हैं या अधिक मूल्य पर बेचते हैं उनके लिए उत्तम साहस का दण्ड निर्धारित है।[23] अपने देश की वस्तु को लेकर तुरन्त बेचने वाले व्यापारी को पाँच प्रतिशत लाभ लेना चाहिए।[24] दूसरे देश से लाई गई वस्तुओं को बेचने पर दस प्रतिशत लाभ लेना चाहिए। राजा को आयातित वस्तु के मूल्य के साथ व्यय को जोड़कर क्रेता और विक्रेता के लाभ का विचार करके मूल्य निर्धारित करना चाहिए तथा कर लगाना चाहिए।[25]

व्यापार में साझेदारी

नारद स्मृति का कथन है कि जब बहुत से व्यापारी या विविध लोग मिलकर कोई व्यापार करते हैं तो वह व्यापार 'सम्भूयसमुत्थान' के नाम से जाना जाता है।[26] बृहस्पति स्मृति ने साझेदार व्यक्तियों में इन गुणों का समावेश होना आवश्यक बताया है–उन्हें चतुर, प्राज्ञकुलीन, आलस्यरहित, सिक्कों की जानकारी वाला, आय-व्यय में पटु, ईमानदार तथा शूर-वीर होना।[27]

बृहस्पति, नारद और याज्ञवल्क्य के अनुसार जो व्यापारी सम्मिलित होकर लाभ के लिए साझे में व्यापार करते हैं वे लोग अपनी-अपनी पूँजी के अनुसार फायदा या नुकसान ग्रहण करें या जैसा नियम बना लिया हो, वैसा ही लाभ-हानि में भाग लें।[28] नारद, बृहस्पति तथा याज्ञवल्क्य के मतानुसार साझेदारी में से कोई सबके मना करने पर या बिना सम्मति लिए हुए कोई काम करके या प्रमाद से वाणिज्य की कोई वस्तु नाश कर देगा तो उसका हर्जाना देगा। यदि कोई राजउपद्रव आदि से वस्तुओं की रक्षा करेगा तो वह दसवाँ भाग पायेगा। नारद ने राजउपद्रव आदि के साथ में देव उपद्रव, चोर उपद्रव का भी उल्लेख किया है।[29] मनु तथा नारद स्मृति ने यजमान का कितनी दक्षिणा पुरोहित को देनी चाहिए इसका विस्तृत वर्णन किया है। चारों पुरोहितों को आपस में किस हिसाब से दक्षिणा का विभाजन करना चाहिए, इसका भी विस्तृत विवरण दिया है।[30]

याज्ञवल्क्य के अनुसार सम्मिलित व्यापार करने वालों में से जो व्यापारी बेईमानी करे, उसको कुछ फायदा

संदर्भ :

1. ना.मनु. 1.86-92, 157-170, ना.मनु. 5.2-7 (नारदीय मनुस्मृति)।
2. मनु. 10.75-84, 115-116, 8.410-415 (मनुस्मृति)।
3. बुधस्मृति।

4. बृह. 13.33-37।
5. रङ्गावतरणमायोगवानाम्.। विष्णु. 16.8
6. वृद्ध हा. 4.176-180।
7. वृ.हा. 4.177-178।
8. वृ.परा. 8.47।
9. विष्णु.अ. 82।
10. रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी। परा. 6.44
11. बृह. परा 8.47, बृह. 15.22-25।
12. कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः।
 एकैकं कारयेत् कर्म मासि मासि महीपतिः।। मनु. 7.138
13. विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
 घृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः।। मनु. 10.116
14. मनु. 10.79।
15. गौतम. 7.8-14।
16. सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
 त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्।। मनु. 10.92
17. कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति। मनु. 120.91
 बौधायन. 2.1.786, वसि. 2.30।
18. वसि. धर्म. 2.24-29।
19. मनु. 10.86-89, याज्ञ. 3.39।
20. शंख. अपरार्क द्वारा उद्धृत पृ. 1113 तथा स्मृति. च. 1.180
21. वि. धर्म. 3.29-30।
22. अर्धप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत्।
 व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीतं राजगामि तत्।। याज्ञ. 2.261
23. याज्ञ. 2.250।
24. स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग् गृह्णीत पञ्चकम्।
 दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयो।। याज्ञ. 2.252
25. याज्ञ. 2.253।
26. ना. 6.1।
27. बृह.स्मृति. च. 2 पृ. 185।
28. बृह. व्यवहार मयूख पृ. 200। ना. 6.5, याज्ञ. 2.263।
29. ना.–3 वि. पद 5-6, याज्ञ. 2.264।
30. ना. 6.10, मनु. 8.206-210।
31. जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत्।
 अनेन विधिराख्यातऋत्विक्कर्षककर्मिणाम्।। याज्ञ. 2.265।
32. याज्ञ. 2.264, ना. 6.717-18।
33. बृहस्प. विवाद-रत्ना. पृ. 123।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

वाल्मीकि रामायण में सौन्दर्य-प्रेम

❑ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*

महर्षि बाल्मीकि संस्कृत के आदि कवि है तथा उनका रामायण आदिकाव्य है। उनकी कविता देश तथा काल की अवधि के द्वारा परिच्छित्र नहीं की जा सकती। वे उन विश्व कवियों में अग्रणी हैं, जिनकी वाणी एक देश–विदेश के प्राणियों का हो मंगल–साधन नहीं करती और न किसी काल विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। काल–क्रम से संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी बाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य सृष्टि का चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य–कला का परम औदात्य है, बाल्मीकि का रामायण महनीय कला का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। फ्रान्स के आदरणीय आलोचक फ्लाउवेर ने महनीय कला के लिये जिस आदर्श को काव्य–गोष्ठी में प्रस्तुत किया है, वह बाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है फ्लाउबेर की सम्पत्ति की सम्मति की साधना तथा प्रसारणा से मण्डित होती है। "मानव सौख्य की अभिवृद्धि, दीन–आर्त जनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभूति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी वन जाय या ईश्वर की महिमा झलके"। यह लक्षण बाल्मीकि के रामायण के ऊपर अक्षरशः घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिये रामायण में जिन आदर्शों की बाल्मीकि ने अपनी अमर तूलि का से चित्रित किया, वे भरतवर्ष के ही लिये मान्य और आदरणीय नहीं है, प्रत्युत वे मानव मात्र के सामने उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं। हमारी दृष्टि में बाल्मीकि का काव्य शाश्वतवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से काव्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकता है।

जीवन के अस्थायी तथ्यों के संगठन द्वारा निर्मित काव्य इस प्रकार की साहित्यिक रचना किसी काल–विशेष के लिये ही रोचक और उपादेय होती है उस काल या युग का परिवर्तन होने पर नई आर्थिक स्थिति या सामाजिक ढांचा आने पर वह केवल पुरानी ही नहीं पड़ जाती है; बल्कि वह अनावश्यक, अनुपादेय, निष्प्राण तथा निर्जीव वन जाती है। प्रत्येक युग में कतिपय समस्याएँ अपना विशिष्ट समाधान चाहती है; जैसे मध्ययुगीन यूरोप में 'क्यूडल सिस्टम' (सामनीय प्रथा), वर्तमान युग में वर्गों का परस्पर संघर्ष, मालिक और मजदूर का परस्पर विद्रोह, जमीदार किसान का मनोमालिन्य, जो किसी विशेष आर्थिक ढाँचे की उपज है। इन समस्याओं का समाधान उनके मूल्यवान कृतियों का प्रेरक रहा है, परन्तु उस युग विशेष के परिवर्तन

* प्रो. एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शा.ठा.रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

के साथ ही ये कला–कृतियाँ भी विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाती हैं।

जीवन के स्थायी मूल्यवान तत्वों तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित काव्यकृतिया मानव जीवन बालू के भीत के समान शीघ्र ही ढहकर गिर जाने वाली वस्तु नहीं है। उसमें स्थायित्व है; पीछे आने वाली पीढ़ियों को राह दिखाने की क्षमता है और यह सम्भव होता है महनीय शोभन गुणों के कारण; जैसे उदात्तता, अर्थ और काम की धर्मानुकूलता, संकट के समय दीन का संरक्षण, विपत्ति के आघात से प्रताड़ित मानव को अपने बाहुवल से बचाना शरणागत का रक्षण आदि। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थापित तथा महनीयता की जननी होती है। ऐसे काव्यों को हम शाश्वत काव्य का अभिदान दे सकते हैं। बाल्मीकि का काव्य इस शाश्वत काव्य का समुज्जवल निदर्शन है, क्योंकि वह मानव जीवन के स्थायी मूल्यवान तत्वों को लेकर निर्मित किया गया है।

संस्कृत की आलोचना परम्परा में रामायण 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है। कथावस्तु की विवेचना के अवसर पर आनन्दवर्धन का यह प्रख्यात श्लोक है–

सन्ति सिद्धरस प्रख्या ये च रामायणादयः।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रस विरोधिनी।।[1]

अभिनव गुप्त की व्यवस्था से 'सिद्धरस' कारस स्पष्ट झलकता है–सिद्धः आस्वादमात्र शेष; न तु भवनीयों रसों यस्मिन् अर्थात् जिसमें राम की भावना नहीं करनी पड़ती प्रस्तुत रस आस्वाद के रूप में परिणित हो गया रहता है, यह काव्य 'सिद्ध रस' कहलाता है, जैसे रामायण/श्रीरामचन्द्र का नाम सुनते ही प्रजावत्सल उनके वचन मात्र से हमारा हृदय आनन्द विभोर हो उठता है। उनसे आनन्द की स्फूर्ति होने के लिये क्या राम के आदर्श चरित्र के अनुशीलन की आवश्यकता पड़ती है? हमारा हृदय राम कथा से इतना स्निन्ध, रस–सिक्त तथा घुलमिल गया है कि हमारे लिये राम और जानकी किसी अतीत युग की स्मृति न रहकर वर्तमान काल के जीवन प्राणी के रूप में परिणत हो गये है। इसलिये रामायण को 'सिद्धरस' काव्य कहा गया है।

बाल्मीकि विमल प्रतिमा से सम्पन्न दैवी गुणों से मण्डित, आर्षचक्ष रखने वाले एक महनीय कवि थे। 'कवि' के वास्तविक स्वरूप की झलक अलोचकों को बाल्मीकि के दृष्टान्त से ही मिली। कवि की कल्पना में 'दर्शन' के साथ 'वर्णन' का भी म०जुल सामरस्म रहता है। महर्षि की वस्तुओं का निर्मल दर्शन मिथ्या रूप से था, परन्तु जब तक वर्णन का उदय नहीं हुआ तब तक उनकी 'कविता' का प्राकट्य नहीं हुआ। समालोचक शिरोमणि भट्टतोत का यह कथन यथार्थ है–

तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिलकवेर्मुने।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना।।

संस्कृत की काव्य धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी। इसका परिचय उसी समय मिल गया जब प्रेम परायण सहचर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौञ्ची के करुण को सुनकर बाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में ढलक पड़ा था, शोक श्लोकत्वमागतः। काव्य का जीवन रस है; काव्य की आत्मा रस है– यह आदिकवि की आलोचना जगत् को महती देन है।

बाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है– उदात्तता। पात्रों के चित्रण में, प्रसंग के वर्णन में, प्रकृति के चित्रण में तथा सौन्दर्य की स्फूर्ति में, सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजती है। आदिकवि के इस काव्य मन्दिर की पीठस्थली है, राम तथा जानकी का पावन चरित्र। रामशोभनं गुणों के भव्य पुञ्ज है। बाल्मीकि ने ही हमें रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर संसार के सामने एक

आरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। राम कृतज्ञता की मूर्ति है, वे किसी प्रकार किये गये एक भी उपकार से संतुष्ट हो जाते हैं, परन्तु सैकड़ों अपकारों का भी स्मरण नहीं रखते –

कथाञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमव्यात्मवत्तया।।[2]

वे सदा दान देते हैं, कभी दूसरे से प्रतिग्रस्त नहीं लेते वे अप्रिय कभी नहीं बोलते, सत्य पराक्रम राम आने प्राण बचाने के लिये भी इन नियमों को उल्लंघन नहीं करते–

दघान्न प्रतिग्रछनीयान्न ब्रयात् किञ्चिद्प्रियम्।
अपिजीवितहेतोवी रामः सत्यपराक्रमः।।[3]

राम पूर्ण मानव है। वे आदर्श पति है। सीता के प्रति राम का सन्ताप चतुर्मसी हे स्त्री (अवल) के नाश होने से वे करूणा से सन्तप्त है। आश्रिता के नाश से दया (आनृशंस्य) के कारण, पत्नी (यज्ञ से सहधर्म–चारिणी) के नाश से शोक के कारण तथा प्रिया (प्रेमपात्री) के नाश से प्रेम (मंदन) के कारण वे सन्तप्त हो रहे है–

स्त्री प्रणाष्टेति कारूण्यादश्रितेत्यानृशंस्यातः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति गदनेन च।।[4]

राम के भातृ–प्रेम का परिचय हमें तब मिलता है, जब वे लक्ष्मण को शक्ति लगने पर अपने अनूठे हृदगत भाव की अभिव्यक्ति करते हैं–

देशे–देशे कलत्राणि देशे–देशेच वान्धवाः।
तंतु देशं न पश्यामि यत्रभ्राता सहोदरः।।

प्रत्येक देश में स्त्रियाँ मिल सकती हैं तथा बन्धुजन भी प्राप्त हो सकते है, परन्तु मैं तो ऐसा देश ही नहीं देखता, जहाँ सहोदर भ्राता मिल सके। अनूठी उक्ति है राम की यह। शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही शरणागति प्रदान करना राम के चरित्र का मर्मस्थल है, परन्तु मेरी दृष्टि में उनकी उदात्तता का परिचय रावण–वध के प्रसंग में हमे मिलता है। राम का यह औदार्य आज तो कल्पना के भी बाहर है–

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
तिग्यतामस्य संस्कारों ममाप्येष यथा तब।।

हे विभीषण वैर का अन्त होता है मरण से। रावण की मृत्यु के साथ ही हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। उसका दाह–संस्कार आदि क्रिया करो। मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा। ''ममाप्येषयथा तव'' रामचरित्र की उदात्तता का चरम उत्कर्ष है। तथा आये ललना की विशुद्धि का प्रतीक है। रावण को सीता की यह भर्त्सना कितनी उदात्त है–

चरणेनापि सत्येनः न स्पृशेय निशाचरम्।
रावणं कि पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।[5]

इस निन्दनीय निशाचर रावण से प्रेम करने की बात दूर रही मैं तो इसे अपने पैर से नहीं–नहीं वाएँ पैर से भी नहीं छू सकती। अपनी पीठ पर बैठाकर राम के पास पहुँचा देने के हनुमान है प्रस्ताव को ठुकराती हुई सीटों कह रही है, कि मैं स्वयं किसी भी परपुरुष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती। रावण का तो स्पर्श अनाथ तथा असमर्थ होने से ही मुझे करना पड़ा था। सीता की यह चिरस्मरणीय उक्ति विशुद्धि के चरम उत्कर्ष की सूचि का है–

भर्तुर्भक्ति पुरस्कृता रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्पष्टुं स्वतो गायमिच्छेयं वानरोत्तम।।[6]

परित्याग के समय भी सीता का धैर्य तथा उनका उदार चरित्र बाल्मीकि की लेखनी का चमत्कार है जिसे कालिदास और भवभूति ने अपने ग्रन्थों में अक्षरशः चित्रित किया है।

आदिकवि न अपने काव्य मन्दिर की पीठ पर प्रतिष्ठित किया है–मर्यादा पुरुषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को। विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच में रहकर व्यक्ति अपने शील के सौदर्य की किस प्रकार रक्षा कर सकता है। यह हमें बाल्मीकि ने ही सिखलाता है। यदि आदि कवि ने इस चरित्र

का चित्रण न किया होता तो, हमें मञ्जुल गुणों के सामंजस्य का परिचय कहाँ से मिलता? इसके शब्दों में इतना माधुरी है, चित्रों में इतनी चमक है कि मानव के कान और नेत्र इसके परिशीलन से एक साथ ही आप्याथित हो उठते हैं।

राम के किन आदर्श गुणों के अंकन में यह लेखनी प्रवृत्त हो? उनकी कृतज्ञता का वर्णन किन शब्दों में किया जाय? राम तो किसी तरह किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते है; और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनसे से एक भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। अपकारों को भूलने वाला हो तो ऐसा ही। उनके क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोध है। अपने अपराधों के कारण हनन–योग्य व्यक्तियों को बिना मारे वे नहीं रहते और अवध्य के ऊपर क्रोध के कारण क्या उनकी आंख भी लाल नहीं होती –

नास्य क्रोधः प्रसदो वा निरर्थोऽस्तिकचाचन्।
हनयेष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्याति।।[7]

राम का शील कितना मुधर है। वे सदा दान करते हैं; कभी दूसरे के प्रति ग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते हैं। साधारण स्थिति की बात नहीं प्राण संकट उपस्थित होने की विषम दशा में भी सत्य पराक्रम वाले राम इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते। अपने कुटुम्बियों के प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल तथा सहनुभूतिपूर्ण है। सीता के प्रति राम के प्रेम का वर्णन करते समय आदि कवि ने मानस तत्व का बड़ा ही सक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत किया है। राम सीता के वियोग में चारकारणों से सन्तप्त हो रहे हैं–

स्त्री प्रणष्टेति कारूण्यात् आश्रितेव्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकिन प्रियेति मदनेन च।।[8]

सीता के प्रति उनके परिताप का कारण चतुर्मुखी हैं। धर्मशास्त्र, आपत्ति में स्त्री की रक्षा करने का उपदेश देता है, परन्तु राम से यह न हो सका, अतः वह अवला स्त्री की रक्षा न कर सकने के कारण 'करूण' से सन्तप्त है। वन में सीता राम की आश्रिता थी, परन्तु राम ने अपने आश्रित की रक्षा नहीं की, अतः आनृशंस्य'–आश्रित जनों के संरक्षक स्वभाव से सनप्त है। सीता उनको पत्नी सहधार्मिणी ठहरी। उनके नष्ट होने पर श्रीराम के धर्म का पालन क्यों कर हो सकेगा, अतः शोक से; वे उनकी प्रिया, प्रियतमा ठहरी, परम सुख की साधिका ठहरी। उस परम लावव्यममी पत्नी के नारा ने उनके हृदय में अतीत के उस आनन्दमय जीवन की मधुर स्मृति जगा दी है– इस कारण 'प्रेम से'। इन नाना भावों के कारण सीता के वियोग में राम सन्तप्त हो रहे हैं।

बाल्मीकि की दृष्टि से मानव जीवन में सबसे श्रेष्ढ पदार्थ है चरित्र और वही इसी चरित्र से युक्ति व्यक्ति की खोज करने पर नारद जी ने बाल्मीकि को रक्षा कुवंशीय रामचन्द्रजी सबसे श्रेष्ठ आदर्श मानव बतलाया। ब्रह्मा को साक्षात् करने वाले, 'अनुष्टप् छन्द के प्रथम अवतार के कारणभूत आदिकवि बाल्मीकि की परिणत प्रज्ञा का फल है, यह बाल्मीकि रामायण। मानव समाज मानव–व्यवस्था तथा मानव सद्गुणों की पराकाष्ठा का पूर्व निर्वाह हम राम के जीवन में पाते हैं। राम शारीरिक सुषुमा तथा मानसिक सौन्दर्य दोनों के जीते–जागते प्रतीक थे। राम के सौन्दर्य के वर्णन में बाल्मीकि कह रहे हैं–

न हितस्मान्मनः कश्चित् चक्षुषी वा नारोत्तमात्।
नरः शक्नोत्यपाक्रष्टु भतिक्रान्तेऽपि राघवे।।[9]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उपयुक्त श्लोकों से यह बात अवश्य प्रकट होती है कि वाल्मीकि रामायण में पदे–पदे पर सौन्दर्य प्रेम उल्लिखित पंक्तियों में स्पष्ट होता है।

संदर्भ स्रोत

1. आनन्दवर्द्धन – आनन्द रामायण –(पृ0 148)
2. वाल्मीकि रामायण (2/1/11)
3. वाल्मीकि रामायण (3/336)
4. वाल्मीकि रामायण (5/15/49)
5. वाल्मीकि रामायण (5/37/62)
6. वाल्मीकि रामायण (5/37/63)
7. वाल्मीकि रामायण (2/4/6)
8. वाल्मीकि रामायण (5/15/49)
9. वाल्मीकि रामायण (2/17/13)

 ISSN : 2350-0441

ECONOMICAL IMPORTANCE OF MEDICINAL PLANTS IN PEOPLE LIFE

(Calotropis procera)

❒ Dr. Suresh Kumar Tiwari*
❒ Dr. Shri Niwas Mishra**

ABSTRACT

Calotropis procera is traditional Medicinal plant used in Madhya Pradesh it is commonly known as Aak. This plant is a richest sources of bioactive constituents used in India to treat diseases sor for phytochemical study was made on the different plant extract. The extract of *Calotropis procera* was Screening for phytochemical properties. Result of the phytochemical analysis should that are Alkaloids, Carbohydrates, Gycocides, saponins, protein, terpendoides, and steraides were the activity compared present in the plant. *Calatropis procera* obtained from methane and petroleum ether extract were investigated.

Keywords : Phytochemical, *Calotropis procera*, Extract Screening.

INTRODUCTION

Medicinal Plants have been used by human beings since time Immemorial for curing health. Bioactive constituents have been reported from plant extract, this phytoextract can protect human against disease. Calotropis procera belong to family sclepidiaceae. Calotropis procera have number of phyarmacologcial properties like antimicrobial, antifengal and antibacterial antihepatotexicity. The plant used in Aurvedic medicine are leaves, the Root bark and the flowers. The powered leaves are used for the fast healing for wounds, as a puryative and to treat indigestion. They are treat skin diserdys and liver problems. The dried leaves are used to promote sexual health including. the application of medicinal plant specialy in

* Guest Faculty, Govt. Art & Commerce P.G. College, Majhuli, Sidhi (M.P.)
** Professor of Botany, A.B.B. Hindi University, Bhopal (M.P.)

treadicinal medicine is currently well acknowledge and estabilished as a viable profession. This plants is Richenosouurces of bioactive constituents of plant extract. The phytoextract can protact many humen disease. It is one of widely used in Ayurvedic formulation and Homeopathic system of medicine.

Phytoconstituents : Calotropis procera contain alkaloids, carbohydrates, Glycosides, sapenins, protein starch, terpendoids, phenalic compound and tannin showed their presence in almost extract of the all parts of plants but quantative estimation of different part of the plant extract had large quantity of carbohydrate and tannin in flower while young bud had higher amount of phonemic compound and oil, mature leaves showed maximum activity against all the Bacterial diseases.

Material and Method :

(i) Plant material : Calotropis procera leaves were collected in month of January 2017 from residential garden and Kuthuliya Rewa. The plant material was identified at the field using standard keys and discription.

(ii) Method of Extraction : Solvent - petroleum ether, methenol

Method - Maceration Procedure : Leaf power was weighted 400 gm and kept in a container in contact with pet ether for seven days, with vigorous shaking at regular interval, material was filtered a first.

(iii) Phytochemical Testing - (Morpho film) Phytochemical screening was carried out using standard method to Detect the bioactive compound. Test for alkloid- substance with few drop of 2NHCL with two drop of Mayr's Regent formation of white colourd indicate the alkloids.

Test for Reducing sugar - The the substance was mixed with equal volume of feelings A and B solutions, heated or water with formation of Red colour is the indicating of presence of sugar.

Protein : Protein to form stable water soluble compounds there by killing bacteria by Directly domaging its cell membrane Maruti et al (2010), (Maigsora et al, (2012) analysed spermacognystic stemddrezation of leaves of Calotropis procera Varahalarao et al (2010) examined bioassays for antimicrobial activities.

Test for Glycosides - The extract of plant dissolve in pyridine, sodium nitropruside solution is added to it and made alkaline, pink or red colour show the presence of Glycosedes.

Test for Flavonoids - Test substance is alcohol, a few magnesium and a few drop of Concentration HCl were added and boiled for 5-8 minutes Red colour show the presence of flovonoids.

Test for protein & amino acid - The test solution the Biuret reagent is added the blue reagent turn violet indicate presence of proteins and Amino acid.

Test for Tanin & phenalic - Test substance mixed with boric lead acetate

solution white callorization show the presence of tannin & phonemic.

Test for Terpendoids - Test substance with tin and thinly chloride were added and boiled Red colorization show that indicate terpond.

Test for Steroids - 1 gram substance was Dissolve in a few drop of acidic acid, acetic aldehyde warmed and cooled under top water and drop of sulfuric acid were added along the sides of the test tube presence of green colour show the positive test for steroids.

Table 1 : Phytochemical Screening of Calotropis procera leaf

Phytochemical	Petroleum ether extract	Methenol extract
Alkloids	-	-
Carbohydrates	-	+
Reducing Sugar's	-	-
Flavonoids	-	+
Glycocides	+	+
Tannin and phenolic	-	+
Saponin	-	-
Protein and amino acid	+	+
fats and oils	-	-
Terpendoids	+	+
Steroids	+	+

(+)= Indicate presence (-) Indicate absence

Chemical Profile : Ajiboso et. al. (2015) Moisture content - 10-92%, Protein- 28.53%, Fats & Oil - 20.42%, Carbohydrates -24.13%, Fibre - 6.50%, Alkaloid - 2.05%, Tannin, Glycoside & Saponin - 0-5% to 0.88%, Phenol - 1.15%, Aminoacid - 17%, Magnesium - 36.5 ppm, Potasium 24.5ppm, Calcium- 17 ppm, Zink - 2.10 ppm, Phosphorous - 0.40 ppm, Sodium - 12.5 ppm,

Folklore use of Calotropis procera. The plants are used alone or in combination of to treat common disease such as fever, Rheumatism, indigestion, cough, cold, eczema, asthma, elephantsis, Nausea, vomiting, diarrhea, Catarrh, Anorexia, inflammations, tumors, (Ajiboso et.al. 2015).

Result and Discussion : The material of phytochemical analysis of the extract is present Alkaloids, reducing sugar, flavonoids, Saponin, fats and oil, Glycosides, Taine, terpendoids, steroids, protein and amino acid.(Tiwari A., et al 2014) There are many phytochemical found in plants either the product of plant metabolism or synthesized for different purpose. The phytochemical are useful for defense of many disease as like alkaloid are use in malaria, painkillers and heart disease,(Kumar and Basu 1994) and (Kumar and Arya 2006) flavonoids are use in antialergic, Anti inflammatory, anticancer activities, (Kumar and Basu 1994) Tannin are use in inhibit the growth of micro-organism and Anti fungal disease, Terpendoids are use in viral, Bacterial and fungal infections, steroids are use in Antimicrobial activity. protein to form stable water soluble compound there by killing bacteria by directly Damaging its cell membrane (Mainasora et all 2012) Murti et al (2010) analysed pharmacogonostic standardization of leaves of Calotropis procra (Varahaloro et.al. 2010) Examined bioassays

for antimicrobial activities. The leaves of Calotropis procera are used by various tribes of central India as a curtative agent for Jaundice (Sharma et.al. 2011) the leaves are used to treat Joint pain and reduce swelling. It is also used as a homeopathic medicine (Meena et. al. 2011) it is also used by Traditional medicine Practicener in Gwari communities for the treatment of Ringwarm (Kuta 2008). Latex of Calotropis procera are hepatoprotactive, antioxidants and Bacteriolytic. (Shoaib Quazi 2013)

This research has been proved as a path to many scientists who may implement the result of the present work in developing drugs from Calotropis procera against human pathogenic micro-organism.

Conclusion - Very important phytochemical were obtained in Calotropis procera. The plant Calotropis procera can be use as patient drug explanting the anti-alergic, anti-inflammatory, anti infection, anti-dibetes, anti-heart diseases, activities of the plant. It is interesting to note that the action of the extract of Calotropis procera is non-toxic. The obtained results provide a support for the use of this plant is traditional medicine.

REFERENCES :

Ahmed, K.K.M., Rana, A.C. and Dixit, V.K. (2005) Calotropis species (Asclipidiaceae) : A comprehensive Review. Pharmacog. Maga, 1(i): 48-52

Goyol, M. and Mathur, R. (2011) Antimicrobial potential and phytochemical analysis of plants extracts of Calotropis procera. Int. J. of Drug discovery and Herbal Reearch, 1(3): 138-143

Kawo, A.H. Mustapha, A., Abdullahi, B.A., Rogo, L.D., Baiya, Z.A. and Kumerya, A.S. (2009). Phytochemical properties and antibacterial activities of the leaf and lutex extreat of Calotropis procera (Ait. F) Bayero J. of Pune and applied sciences, 2(1) : 34-40.

Kuta, F.A. (2008). Antifungal effect of Calotropis procera stem bark of epidermophyton flocosum and trichophyton gypsums. African J. of Biotechnology, 7: 2116-2118.

Larhsini, M. Bousaid, M., Lazrek, H.B. and Jana, M. (1997). Evolution of Antifungal and molluscicidal properties of extract of Calotropis procera. fitatropia, 68:371-373

Mainasarsa, M.M.1 Aliero, B.L., Aliero, A. and Yakubu, M. (2012). Phytochemical and antibacterial properties of Root and Leaf extract of Calotropis procera. Nigerian J. of Basic and Applied Science, 20(1):1-6.

Meena, A.K., Yadav, V. and Rao, M.M. (2011) Ayurvedic uses and pharmacological activities of Calotropis procera linn. Asian J. of treditional medicines, 6(2) : 45-53.

Mohsin, A,; Shah, A.H. Alaha, M.A., Tarigi, M.O. and Ageel, A.M. (1989). Analytic anti-pyretic activity and phytochemical screening of some plants used in traditional Arab systems of medicine. Fitoerapai, 60(3) : 174-177.

Mukherjee, B., Bose, S. and Dutta, S.K. (2010) Phytochemical and Pharmaacological iInvestigation of fres flower extract of

Calotropis procera linn. Int. J. of Pharmaceutical sciences and research, 1(2): 182-187

Patil, S.M. and Saini, R. (2012). Antimicrobial activity of flower extract of Calotropis procera Int. J. Pharma. Pharmacological Research, 1(4): 142-145.

Ramaprabha, M. and Vasantha, K. (2012) Phytochemical and Antibacterial activity of Calotropois procera (Ait.) R. Br. flowers. Int. J. of Pharma and Biosciences, 3(1) : 1-6

Sharma G.K., (1934) Calotropis procera and Calotropis gigantea. Indian J. of Veterinary Science. 4:63-74

Sharma, A.K., Kharib, R and Kaur, R. (2011). Pharmacognostical aspects of Calotropis procera. Int. J. of Pharma and biosciences 2(3): 480-488.

Varahalarao, V. and Chemendrashekhar, N.,(2010) in vitro bioactivity of Indian medicinal plant Calotropis procera. J. of global pharma technology, 2(2):43-45.

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

फसल अवशेषों को जलाने के कुप्रभाव एवं उनका बेहतर प्रबन्ध

❐ शिव प्रसाद विश्वकर्मा*
❐ एस. पी. वर्मा**
Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 400 मिलियन टन फसल अवशेष पैदा होते हैं। फसल की कटाई के बाद लगभग 130 टन अवशेष खेत में ही जला दिये जाते हैं। उत्तर-पश्चिम भारत में यह क्रिया बहुत ही सामान्य है। यहाँ किसान धान और गेहूँ कम्बाइन से कटाई करके उसके पुवाल या अवशेषों को जला देते हैं। इससे जलने वाला काला धुंआ मानव स्वास्थ्य के लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा कर रहा है। अवशेष जलाने से उत्पन्न गर्मी से भूमि का तापमान 40 डिग्री से. से अधिक हो जाता है जिससे भूमि के केंचुए एवं अन्य सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं। इन अवशेषों के जलने से कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, गंधक एवं अन्य हाइड्रोकार्बन वातावरण को प्रदूषित करते हैं और ये गैसें ग्रीन हाउस पर प्रभाव डालती हैं। हालांकि फसल अवशेषों को यदि भूमि में मिलाया जाए तो उसके आभासी घनत्व में 1.33 से 1.49 ग्रा./सी.सी., जलधारण क्षमता में 36.76 से 51 प्रतिशत, जैविक पदार्थों में 1.21 से 1.47 प्रतिशत तथा सभी प्रकार के पोषक तत्त्वों में वृद्धि के साथ मृदा के सूक्ष्मजीवों की संख्या में भारी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त भारत में फसल अवशेषों के प्रबंध के विकल्पों में इसका जीरोटिल में उपयोग, कम्पोस्ट बनाने, बायोगैस प्लांट, बिजली उत्पादन आदि में किया जाता है।

भारत में प्रतिवर्ष विभिन्न फसलों से लगभग 400 मिलियन टन अवशेष पैदा होते हैं। इन अवशेषों का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा खाद्यान्न फसलों का होता है। इसमें मुख्य रूप से धान, गेहूँ, गन्ना आदि फसलें हैं। सारणी (1) से स्पष्ट है कि हमारे देश में इन अवशेषों में से लगभग 170 मि. टन का सदुपयोग कर भूमियों को 3.54 मि. टन पोषक तत्त्वों की पूर्ति की जा सकती है। (हेगड़े एवं सहयोगी, 2001)

अपने देश में अधिकांश भाग या तो दूसरे घरेलू उपयोग में प्रयोग किया जाता है या फिर इन्हें नष्ट कर दिया जाता है। गेहूँ, गन्ने की हरी पत्तियाँ, आलू, मूली आदि की पत्तियाँ, जानवरों के चारे के काम आती है जबकि सनई, अरहर, धान की पुवाल, गन्ने की सूखी पत्तियाँ, कपास, अरहर एवं सरसों/राई के सूखे तने अधिकतर जलाने के काम आते हैं।

* कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001
** कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

सारणी (1)

भारत में उपयोग हेतु उपलब्ध फसल अवशेष

क्र0सं0	फसल	कुल फसल अवशेष (मि0टन)	उपयोग हेतु उपलब्ध फसल अवशेष (मि0टन)	कुल एन0पी0के0 (मि0टन)	उपयोग हेतु उपलब्ध पोषक तत्व (मि0 टन)
1.	धान	119.2	39.2	2.59	0.86
2.	गेंहूँ	93.9	31.3	1.71	0.57
3.	ज्वार	19.9	6.6	0.41	0.14
4.	गन्ना	28.0	28.0	0.52	0.52
5.	सभी दलहने	17.9	6.0	0.59	0.19
6.	अन्य	76.7	58.3	1.62	0.76
	कुल योग	355.6	169.9	7.44	3.54

स्रोत : हेगड़े एवं सुधाकर बाबू (2001)

सारणी (2)

फसलों के अवशेषों में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की औसत मात्रा

क्र0सं0	फसल अवशेष	नाइट्रोजन प्रतिशत	फास्फोरस प्रतिशत	पोटाश प्रतिशत
1.	गेहूँ का भूसा	0.53	0.10	1.10
2.	जौ का भूसा	0.57	0.26	1.20
3.	धान की पुवाल	0.36	0.08	0.70
4.	धान की भूसी	0.40	0.25	0.40
5.	मक्का की कड़वी	0.47	0.57	1.65
6.	राई/सरसों का तना	0.57	0.28	1.40
7.	मटर की सूखी पत्तियां	0.35	0.12	0.35
8.	गन्ने की पत्तियां	0.35	0.10	0.60
9.	गन्ने की खोई	2.25	0.12	–
10.	बाजरे की कड़वी	0.65	0.75	2.50

सारणी (3)

धान की फसल कटाई पश्चात मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर प्रभाव

उपचार	पी0एच0	आभासी घनत्व (ग्रा./सी.सी.)		जल संचालकता सेमी/घंटा	जल धारणा क्षमता (प्रतिषत)	जैव पदार्थ (प्रतिषत)
शून्य अवषेष	5.5	1.43	1.53	9.58	36.76	1.21
धान का भूसा (5 टन/हे0)	5.4	1.34	1.44	11.66	50.60	1.47
धान के अवषेष (5 टन/हे0)	5.5	1.33	1.49	11.99	51.06	1.47
CD (P=0.05)	NS	0.03	0.02	0.59	3.09	0.04

फसलों के अवशेष जलाने के कारण

श्रम की मजदूरी की अनुपलब्धता, फसलों के अवशेष दूर करने में ऊँची लागत तथा धान, गेहूँ, फसल-चक्र विशेष रूप से गंगा के मैदानी क्षेत्रों में इनकी कटाई हेतु कम्बाइन का प्रयोग, जलने से कचरे का शीघ्र निस्तारण आदि फसलों के अवशेष जलाने का मुख्य कारण है। सदियों से किसान यह मानते आये हैं कि इन्हें पशुओं के खिलाने या जलाने के अतिरिक्त उनका कोई विकल्प नहीं है क्योंकि धान की कटाई के बाद इसके पुवाल का सही ढंग से प्रबंध करना एक बड़ी समस्या है। धान की कटाई के बाद किसान समय से गेहूँ की फसल बोने के लिए अपने-अपने खेतों में अवशेषों को जला देते हैं।

अवशेष जलाने के दुष्परिणाम

फसलों के अवशेष जलाने से भूमि में उपस्थित जैविक गुणों में हास होता है तथा मिट्टी के पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। अवशेषों को जलाने से न केवल वायु प्रदूषण होता है बल्कि मीथेन, कार्बन डाई आक्साइड एवं नाइट्रस आक्साइड के रूप में ग्रीन हाउस गैसें उत्पन्न होती हैं जो ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार हैं। साथ ही काला धुंआ निकलने से पर्यावरण प्रदूषित होता है जिससे मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खांसी, दमा, श्वांस तथा तनाव जैसी बीमारियों से लोगों की जान तक चली जाती है।

प्रायः अखबार या टीव चैनलों के माध्यम से खबर आती है कि पड़ोसी राज्यों पंजाब, हरियाणा में पुवाल जलाने से दिल्ली की हवा जहरीली हो रही है। एक अध्ययन में यह सच पाया गया है कि देश में फसलों के अवशेष जलाने में पंजाब, उत्तराखण्ड एवं हरियाणा सबसे आगे है जिनमें धान एवं गेहूँ की प्रमुख फसलें हैं।

केवल एक टन धान का पुवाल जलाने से 5.5 किग्रा. नाइट्रोजन, 2.3 किग्रा. फास्फोरस तथा 2.5 किग्रा. पोटाश और 1.5 किग्रा. गंधक जैसे तत्त्व मिट्टी से नष्ट हो जाते हैं तथा जलने की गर्मी (40 डिग्री सें.ग्रे.) से खेत के जीव जैसे-केंचुआ एवं उपयोगी सूक्ष्म जीव जैसे बैक्टीरिया, कवक आदि मर जाते हैं।

शर्मा एवं सहयोगी (2009) की शोध रिपोर्ट के अनुसार खेत में फसल के अवशेषों को जलाने मृदा की सम्पूर्ण नाइट्रोजन, 20 प्रतिशत फास्फोरस, 20 प्रतिशत पोटाश तथा 90 प्रतिशत गंधक नष्ट हो जाता है।

दास एवं सहयोगी (2001) के प्रयोग में पाया गया कि भूमि में धान एवं गेहूँ के अवशेषों के मिलाने से उसके आभासी घनत्व में 1.33 से 1.49 ग्रा/सी.सी., जल धारण क्षमता में 36.76 से 51.06 प्रतिशत तथा कार्बनिक पदार्थों में 1.21 से 1.47 प्रतिशत की औसत बढ़ोत्तरी पायी गयी।

गिल एवं वालिया (2000) ने अपने प्रयोग में पाया कि धान एवं गेहूँ के अवशेष खेत में मिलाने से मृदा का आभासी घनत्व में 1.4 ग्रा/सी.सी. से 1.44 ग्रा/सी.सी. तथा जल के अंतःसरण में 37.1 मिमी/हे. से 39.4 मिमी/हे. तक बढ़ोत्तरी पायी गयी।

फसल अवशेष प्रबंधन

फसलों के अवशेषों के बेहतर प्रबंध कर विभिन्न प्रकार से सदुपयोग कर किया जा सकता है—

1. यथास्थाने (इन-सीट) खेत में मिलाना

कटाई के पश्चात् के फसलों की जड़ों, ठूठों एवं पत्तियों आदि को रोटावेटर या रोटोड्रिल अथवा हल से खेत में मिला देने से मृदा को पर्याप्त मात्रा में आवश्यक तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं तथा मृदा वायु एवं जलक्षरण से भी बच जाती है जिससे कुछ समय बाद खेत में सड़ने में जीवांश पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाती है और मृदा उर्वरकता एवं उत्पादकता बढ़ती है। (सारणी-2)

2. खाद तैयार करना

अवशेषों को सीधे खेत में मिलाने से कुछ अनसड़े पदार्थों से आगामी फसल प्रभावित होती है; जैसे—बुवाई में तथा अंकुरण में कठिनाई एवं अस्थायी पोषक तत्त्वों की कमी के लक्षण एवं दीमक का प्रकोप आदि। किन्तु यदि इन अवशेषों जैसे धान का पुवाल को आदि कम्पोस्ट के गड्ढे में पशुओं का गोबर एवं मूत्र छिड़ककर खाद तैयार की जाए तो फसलोत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

3. फसलों के अवशेष में शून्य भू-परिष्करण अथवा बीज की सीधे बुवाई

भू सतह पर पूर्व फसल के अवशेष बने रहते हैं। इनकी उपस्थिति में हैपी सीडर या जीरो टिल ड्रिल मशीन से गेहूँ के बीज की बुवाई कर दी जाती है। जीरों टिलेज पद्धति से गेहूँ की समय से बुवाई हो जाती है। फसल अवशेष पलवार (मल्च) का कार्य करते हैं जिससे खेत में नमी संरक्षित रहती है। 50-60 प्रतिशत खरपतवार कम उगते हैं, पलेवा सिंचाई की बचत होती है तथा समय श्रम एवं खर्च की बचत होती है। इस विधि से ग्रीष्मकालीन मूंग एवं मक्का आदि की बुवाई की जा सकती है।

4. एकत्रीकरण एवं गट्ठर बनाना

फसल अवशेषों को गट्ठर बनाने वाली मशीन से 15-35 किग्रा वजन के गट्ठर बना लिए जाते हैं। फिर इनका उपयोग कम्पोस्ट बनाने या अन्य कार्यों के लिए किया जाता है।

5. मशरूम उत्पादन

अवशेषों विशेषकर धान के पुवाल का प्रयोग बटन एवं ढिंगरी मशरूम उत्पादन में किया जाता है।

6. जानवरों के बिछावन के रूप में

पालतू पशुओं के नीचे विशेषकर शीत ऋतु में अवशेषों को बिछा देने से पशुओं को आराम मिलता है। साथ ही इसमें पशुओं का मल-मूत्र मिल जाने से उच्च कोटि की कम्पोस्ट खाद बनती है।

7. पैकेजिंग

आज सामानों की पैकिंग कर एक स्थान से दूसरे स्थान को सुरक्षित पहुँचाने के लिए अनेक प्रकार के सिन्थेटिक चीजें उपलब्ध हैं किन्तु वे सब पर्यावरण अनुकूल नहीं होते। फसलों के अवशेष प्राकृतिक होते हैं। इनका प्रयोग इलेक्ट्रानिक, क्राकरी, काँच के सामान आदि को सुरक्षित रखने के लिए कुशन के रूप में किया जाता है।

9. कार्ड बोर्ड एवं पेपर निर्माण में

इन अवशेषों का प्रयोग गत्ते, कार्ड बोर्ड एवं पेपर बनाने में किया जा सकता है जिससे पेड़ों की कटाई रूकेगी और लोगों को रोजगार भी मिलेगा।

10. बिजली उत्पादन

बिहार में हस्क पावर कम्पनी ने फसल अवशेषों से बिजली बनाकर ग्रामीण परिवारों को इसकी आपूर्त्ति कर रही है। इसी प्रकार उत्तराखण्ड में भी अवशेषों से एथेनाल का उत्पादन किया जा रहा है। पंजाब एवं हरियाणा में इस प्रकार के प्लान्ट लगाने से पर्याप्त सुअवसर हैं जिससे अवशेषों का उचित प्रबन्ध होगा और गाँव को बिजली भी प्राप्त होगी।

निर्देश

हेगड़े, डी.एम. तथा एस.एम., सुधाकर बाबू : Fertilizer News, 2001, 46 (12) : 61-72

सैनी एस.के. : Winter School Manual on Management of Soil Quality for Sustainable, Agriculture (Dec. 01-21, 2005), 85-89

शर्मा, पी.के. तथा मिश्रा, बी. : J. Ind Soc. Soil Sc. 2001, 49 (3) 425-29

दास के., मीधी, एन. तथा गुहा बी. : Fertilizer Ind. J. Agron, 2001, 46 (4), 648-53

गिल, एम.एस. तथा वालिया, एस.ए. : Indian Farmers Digest, 2000, 30 (8) : 61-72

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

Impact of Animal Agriculture on Environment: A Focus on Methane

❐ Dr. Sheetla Prasad Verma*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

Animal Agriculture inefficiency consumes natural resources, contributes to deforestation, and produces immense quantities of animal waste, threatening water and air quality and contributing climate change. As "the single largest anthropogenic user of land" and responsible for an estimated 18% of human induced GHG emissions, the farm animal production sector must be need accountable for its many deleterious impacts, and society must achieve changes in animal-agricultural practices worldwide. There must be incorporation of environmentally sound and animal welfare friendly practices into daily life, including a reduction in meat, milk and egg consumption can reduce our environmental impact. The production, processing, transport and preparation of an Indian, non-vegetarian meal including mutton collectively emits nearly twice the GHGs as that of vegetarian meal that excludes dairy products and eggs.

Keywords: Animal Agriculture, GHGs, non-vegetarian meal, climate change, etc.

Introduction

Animal agriculture inefficiency consumes natural resources, contributes to deforestation, and produces immense quantities of animal waste, threatening water and air quality and contributing to climate change. The Food and Agriculture Organization (FAO) of the United Nations estimated in 2006 that animal agriculture was responsible for 18% of global, anthropogenic, or human-induced, greenhouse gas emissions and was "by far the single largest anthropogenic user of land." Climate change poses significant challenges to India's agricultural sector, which is already facing increased completion for land and water.

Farm Animal Production and Intensification in India

According to the Food and Agriculture Organization (FAO) of the United Nations, approximately 67.5 billion land animals were raised globally for human consumption in 2008. India has the largest national herd of cattle and buffalo in the world, with over 170 million cattle and over 100 million buffalo. Over 38 million

* Associate Professor (A.H. & Dairy Science), Kulbhaskar Ashram P.G. College, Allahabad-211001

buffalo and 38 million cattle were used to produce milk in India in 2008. India is also one of the top five egg and chicken meat producers in the world. The nation's 230 million egg-laying hens produce approximately 55.6 billion eggs per year.

Global consumption of meat and milk has been growing since 1980, especially in developing countries. In India, between 1980 and 2005, per capita egg consumption more than doubled, while meat consumption grew 38% and milk consumption grew 69%.

A growing number of farm animals are raised in industrial farm animal production (IFAP) facilities, where thousands or tens of thousands of animals are confined and concentrated, along with their waste, on the land. According to the FAO, industrial systems now produce approximately two-thirds of the world's poultry meat and eggs, and more than half of all pork. In fact, "[i]n recent years industrial livestock production has grown at twice the rate of more traditional mixed farming systems and at more than six times the rate of production based on grazing." IFAP facilities (also called "factory farms"), compromise animal welfare, degrade the environment, and threaten public health, and rural livelihoods.

Nearly 80% of laying hen housing systems in India confine hens in cages. Hens in battery cages spend their lives confined in tiny wire enclosures, where they are unable to engage in most of their natural behaviour, such as nesting, perching, dustbathing, flying short distances, or even freely stretching their wings without touching other hens or the cage walls.

Operations with 10,000 to 50,000 hens crowded together are common in India. India also housed over 700 million broiler chickens in 2008. A spokesperson for the Poultry Federation of India reportedly stated that India's broiler chicken industry was comparable to that of developed countries, which suggests that broiler chickens in India experience the crowded confinement, and stressful handling common in the U.S. chicken industry.

The dairy industry in India is also changing. The FAO predicts that, in India, "increase in demand for dairy products will put increasing pressure on dairy production systems; traditional breeds and feeding practices are likely to give way to higher-yielding breeds, associated intensification of production systems, increased disease risks, pollution and animal health issues, and a greater reliance on (feed) concentrates."

Unfortunately, industrialized animal agriculture is rapidly spreading globally, including in developing countries, The Pew Commission on Industrial Farm Animal Production warned that the known environmental and public health costs of IFAP "may be exacerbated by institutional weakness and governance problems common in developing countries."

The Environmental Threat of Animal Agriculture

In 2006, the FAO published "Livestock's Long Shadow: Environmental Issues and Options," its landmark report assessing the impacts of animal agriculture. The FAO concluded that "[t]he livestock sector emerges as one of the top two or three most significant contributors to the most serious environmental problems, at every scale from local to global." It is concerning, then, that global meat and milk production are expected to approximately double between 2000 and 2050.

Waste

Traditional farming systems balance the number of animals with the crops' ability to absorb the animals' manure. On factory farms, where thousands of animals are confined, the amount of manure can overwhelm the ability of the surrounding land to absorb it. When animal waste is over-applied to land and exceeds the capacity of soil and crops to assimilate its nutrients, it becomes a pollutant- and can contaminate water supplies and emit harmful

gases into atmosphere. According to the United States Department of Agriculture's (USDA's) Economic Research Service, in 1997, IFAP operations in the United States produced 1.12 million tonnes of spreadable nitrogen from manure; however, "cropland and permanent pasture controlled by operators of confined livestock and poultry operations is estimated to have assimilative capacity for only 38 percent of the calculated nitrogen available." Similar studies need to be conducted in India to determine the quantities of manure being produced by IFAP operations relative to the surrounding land's ability to assimilate nutrients from the waste. According to the USDA, the problem of excess nutrients is most pronounced in poultry production operations, which produce 52% of the excess phosphorous and 64% of the excess nitrogen created by farm animal waste in the United States. Run-off from poultry operations into the Chesapeake Bay in the eastern United States has been blamed for outbreaks of Pfiesteria piscicida in the water, killing fish and causing skin irritation, short-term memory loss, and other cognitive problems in those exposed. An editorial in an October 2007 edition of a prominent local newspaper commented, "For too long, the poultry industry in this state has wielded economic and political clout to escape responsibility for its primary role in the slow, steady poisoning of the Chesapeake Bay."

Resource Use

Approximately 70% of the world's agriculture lands are dedicated to raising animals for food, including grazing and feed production. Raising farm animals for human consumption consumes exorbitant amounts of cereals. Over 97% of global soymeal produced is fed to farm animals and during the last four decades of the 20^{th} century, over 60% of the corn and barley crops were also fed to these animals. Yet, the conversion of grains to meat is a highly inefficient process. It takes approximately 7 kilograms of grain to produce one kilogram of beef in developed countries. The ratios for pig meat (1 kg meat/ 4 kg grain) and poultry meat (1 kg meat/ 2 kg grain) similarly exemplify this inefficiency.

This inefficient use of resources can be seen in India. Approximately ten percent of India's coarse grain production goes to feed farmed animals, and approximately 50% of all corn consumed is used as animal feed- most of which is for poultry. For 2010-2011, 76% of Indian oil meal is anticipated to go to animal feed. In addition to the inefficiency of converting grains to meat, using crops for poultry can negatively affect commodity prices. In 2008, it was reported that a shift to using rice for animal feed raised rice prices in the South, where rice is a basic staple in people's diets.

Greenhouse Gas Emissions (GHGs) and Climate Change

According to a 2006 estimate by the FAO, globally, animal agriculture is responsible for 18% of anthropogenic GHGs. Therefore, this sector offers a key opportunity for the immediate mitigation of anthropogenic climate impact worldwide, including in India, which is the fifth largest GHG emitter in the world.

Almost every part of the animal production chain pollutes the air or contributes to climate change. The sector emits significant amounts of three of the most important GHGs: carbon dioxide (CO_2), methane (CH_4), and nitrous oxide (N_2O). In fact, globally the farm animal sector accounts for:

- 9% of human induced CO_2 emissions
- 35-40% of human-induced CH_4 emissions, which has 25 times the global warming potential (GWP), or power, of CO_2 over 100 years, and
- 65% of human-induced N_2O emissions, which has about 300 times the GWP of CO_2.

CO_2 : Carbon dioxide emissions from this sector are produced through nitrogen fertilizer production for feed, on-farm fossil fuel use, deforestation to make way for grazing and animal

feed production, and pasture desertification, which can result from overgrazing by farm animals. An estimated 41 million tonnes of CO_2 are emitted from fertilizer production for feed crops each year. Given the amounts of course grains and corn that are used to feed farm animals in India, it is likely that significant CO_2 emissions result from raising animals for food.

CH_4 : Enteric fermentation and manure management are the key causes of animal agricultures' methane emissions. Enteric fermentation is a microbial fermentation that takes place in the digestive systems of ruminant animals, such as cattle, sheep, and buffalo. Enteric fermentation is responsible for 49% of India's methane emissions, 63% of its agricultural emissions, and 12% of total emissions. Buffalo account for nearly two-thirds of methane emissions from enteric fermentation, and are the most significant methane source in India. Per-head methane emissions (arising from enteric fermentation) from crossbred dairy cows are greater than emissions from indigenous cattle, and buffalo have the largest emissions coefficients relative to all dairy cattle. The population of crossbred, dairy-producing cattle in India increased between 2000 and 2005, as there is a growing preference for high yield animals. There was also a 9% increase in the buffalo population from 1997-2003.

Manure is responsible for the remaining portion of global methane emissions from farm animals and accounts for approximately 5% of animal agriculture's GHG emissions.

N_2O : The farm animal sector also is responsible for the majority of the world's human-induced nitrous oxide emissions. Nitrous oxide emissions from animal agriculture originate primarily from manure, but also from fertilizer for feed crops, and contribute approximately 31% of animal agriculture's GHG emissions.

Methane's relatively short atmospheric lifetime compared to carbon dioxide (H"10 years, vs. H"100+ years) means that reducing methane emissions would have a more immediate and significant impact on mitigating climate change than just reducing CO_2 emissions. Thus, tremendous opportunity to effectively mitigate climate change in the near term lies in the dairy sector, particularly in India which has the largest combined population of cattle and buffalo in the world with nearly 40 million milk-producing buffalo and cattle, each. GHG emissions from animal agriculture are fundamentally related to the size of farm animal populations. Therefore, aggressive breeding programs to increase dairy animal populations in India are not advisable; breeding programs must be designed with the goal of reducing cattle and buffalo populations. This should not be done by increasing dairy animal productivity in ways that are negative for animal welfare.

Human Society International and its partner organizations together constitute one of the world's largest animal protection organizations-backed by 11 million people. For nearly 20 years, HIS has been fighting for the protection of all animals through advocacy, education, and hands-on programs. Celebrating animals and confronting cruelty worldwide- On the web at his.org.

References :

Jaysinha, N.G. (2011) Impact of Animal Agriculture on Environment and Climate Change, Animal Citizen, July 2010 to March 2011, Page: 29-31

Verma, S.P. (2010) Livestock Farming Vs Global Warming, Order and Disorder, June 2020

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2
ISSN : 2350-0441

Opportunities in Dairy Farming

❑ Dr. Sheetla Prasad Verma*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

Though our country contributes 15.9 and 53.3% of title world's cattle and buffalo population. In 2012 we were having 19.1 crore cattle and 10.9 crore buffaloes in our country. In case of cattle population we were having negative growth (-4.1%) in five years from 2007 to 2012 and 2012 milk production of India was around 140 million tones. In spite of this huge bovine population in our country our average lactational milk yield is1169 litnes of milk while the world overage is around 2000 litres of milk. In India per capita milk availability was only 231gm in 2005 while as per recommendation of Indian Council of Medical Research it should be not less then 280gm/day. So to overcome the problem of unemployment, nutrition, milk availability there is a great opportunity in dairy farming. This paper focuser the most of all aspects of opportunities in the dairy farming sector.

Key words : Entrepreneurship, Opportunities, Dairy Farming

Introduction

India s emerging as a global economic power and the economy is growing at an average of 8 9 per cent for last couple of years. The Dairy sector is contributing significantly to the national economy and with 112 MMT milk productions during 2009-10; it ranks first in the World. It provides gainful employment and supplementary income to large number of people. Dairy sector contribute significantly on poverty reduction in rural areas as income from milk in the total income of under-privileged family is as high as 75 to 80% during drought and the employment generated is relatively high. Dairy entrepreneurs can effectively contribute to the society in the areas mentioned below

Entrepreneurship in Dairying-

1. Creates jobs for the large section of unemployed educated youth.
2. Creates market opportunities for the indigenous products through product diversification and innovative marketing.
3. Utilizes the non-conventional resources like solar energy, rain water, agricultural by products and other locally available resources.
4. Entrepreneurs introduce new technologies and new products through entrepreneurial spirit.

* Associate Professor (A.H. & Dairy Science), Kulbhaskar Ashram P.G. College, Allahabad-211001

5. Reducing Poverty, nutritional hunger through dairy development (Increase income and equity).

6. Export orientation of the dairy products (food safety and quality), Export of animals, milk products.

7. Surveillance and monitoring of emerging livestock disease due to decline in genetic diversity.

8. Developing breeding policy/ conservation of elite indigenous germplasm.

9. Integrating small holder dairy production in value chain.

10. Adapting dairy production to climate change (methane mitigation, housing scheme).

11. Sustainability of commercial dairy production.

Scope of Entrepreneurship Development

1. Ration Balancing Advisory Services- Ration given to animals usually comprises one or two locally available concentrate feed ingredient(s), seasonal grasses and crop residues. This leads to imbalanced feeding which adversely affects the health and productivity of animals in various ways and also reduces the net daily income to milk producer from dairying. At times, overfeeding of animals can also raise the cost of milk production. Therefore, milk producers need to understand the implications of imblanced feeding and recognize the importance of giving balanced ration to their animals. Keeping this in view, NDDB has developed software for ration balancing, which will guide the milk producer about scientific animal feeding. Implementation of RBP optimizes milk production of mulch animals at the least cost by proper utilization to available feed ingredients, so as to provide them adequate amounts of proteins, minerals, vitamins as well as energy. This requires creation of a delivery system that provides advices to the producers and also arranges sale of feed and feed supplements that helps in sustaining the activity.

2. Field Artificial Insemination Services- High levels of productivity in dairy cattle can be achieved by bringing larger proportion of breed able female bovines under artificial insemination A.I.) services. This opens a wide opportunity for entrepreneurs who can become Mobile (A.I.) 'technicians (MAlTs). MAlTs would provide quality A.I. services at the farmer's doorstep (Sahul '1 al., 2002)

OTHER OPPORTUNITIES

- Operating one's own dairy farm, involving milk production activities.
- Working as dairy farm managers.
- As dairy herdman.
- As milkers.
- As testers.
- As Stockman.
- As Manager in a Cooperative set up.
- Manufacture of cattle feeds and other value added products.
- Vet. services for animal health and breeding.
- Import-Export (Machinery/ingredients/ Products).
- Use of automation and information technology.
- As fleidmen for dairy organisations.
- As fieldmen for purebreed associations.
- As technical staff for research organisations.
- Teachers.
- Dairy extension worker Imparting vocational training.
- Writers for technical journals/magazines.
- Opportunities for leadership.
- Miscellaneous—
  (a) Consultancy services.
  (b) Financial security is afforded.
  (c) Wholesome environment provided.
  (d) Savings are encouraged.
  (e) Encouragement for improvement.

ADVANTAGES OF DAIRYING IN INDIA

1. Important human food. Milk is palatable, easy to digest and highly nutritious.

2. Milk, a nearly perfect food. It contains fat, milk sugar, proteins, minerals and liberal source of many vitamins. It is deficient in vitamin C and iron.
3. Milk as a protective and balanced food. Milk and its products are the only source of animal protein in vegetarian diet. Hence Nutr. Advisory Committee of ICMR recommended 283 gm. .of milk/day/per capita to balance the diet for supply of essential amino acids.
4. Supplies meat worth 83,641 crores annually (18.22% of total livestock output) 201 1-12.
5. Sources of draft power for various agricultural operations. Some of the excellent draft breeds supply good quality bullocks—the source of draft power which brings savings in energy resources like petroleum products and coal.

TABLE-1 : ENERGY IN AGRICULTURE (HINDU SURVEY OF INDIAN AGRIC. 1999)

Energy	1970	1980	1990	1992
Diesal Energy, (MJ/ha)	23	148	288	299
Electricity, (MJ/ha)	322	1,002	3,233	4,080
Animal Energy (MJJha)	1,606	1,404	1,101	1,059
Human Energy (MJ!ha)	1,331	1,401	1,409	1,434
Total, MJ/ha	3,282	3,955	6,031	6,872
Mechanical energy total energy %	11	29	58	64

6. Suited to agricultural operations. Due to small sized holdings of farmers all agricultural operations can best be completed by bullocks.
7. Provides organic manure. Which is the best means of maintaining soil fertility and organic farming.
8. Opportunity of making use of barren/unfertile land for housing of animals.
9. Dairying under Indian conditions fits well with agriculture as mixed farming and provides protective and balanced farming.
10. National income. Dairying contributes little more than 7 per cent to the national income, contribution of livestock sector to the national economy was in the range of 4,59,05 1 crores (2011-12)
11. Offers opportunity of earning foreign exchange by export of poultry, hides, bones, hair, etc.
12. Offers opportunity of proper utilization of by-products and industrial wastes as cheaper source of feeds for animals.
    (a) Utilization of agriculture waste by-products like wheat bhusa, paddy straw, rice polish, wheat bran, cakes, chunis, etc.
    (b) Utilization of milk by-products like whey, butter milk for feeding to calves and other growing stock.
    (c) Utilization of animal by-products like bone meal, fish meal, meat meal; blood meal, etc.
    (d) Utilization of industrial by-products like molasses, grain, godown sweepings etc.
13. Dairying offers opportunity of getting income round the year.

*14. Milk output accounts for 5.51 per cent GDP (Ref. Dairy Year Book 05-06, 506).

*15 Milk output accounts for more than 25.85 per cent of India's agriculture production (2011-12) as against 14 per cent in 1970-71. (*lnd. Dairymen, Dec. 2014).

*16. Livestock contributes to G.D.P. 8 per cent. (Yadav, 2000).

*17. Contribution of meat to total livestock output was 18.22% followed by dung (6.94%) and eggs (3.88%). (Gandhi, 2014)

18. Contribution to GDP (Gross Domestic Product) from agriculture and animal husbandry is 31 per cent including contribution from drought power.

19. Contribution of agriculture to GDP is 18% (Bhasin, 2010).

20. Value of milk output from livestock sector at current price is 3,05,484 crores in 2011-2012. (Gandhi, 2014) which is 66.55% of total livestock output.

ORGANIC FARMING (RAMESH & THILAKAR, 2009)

According to NPOP (National Programme for Organic Production). Management techniques in organic livestock farming should be governed by physiological and ethological needs of farm animals in question. This includes :

1. That animals should be allowed to conduct their basic behavioural needs.

2. That all management techniques, including those where production levels and speed of growth should be concerned, for the good health and welfare of the animals.

To market products as 'Organic', certification of products by a certifying agency is essential. Products that are produced according to the organic standards and have been certified, by an accredited certifying agency will only get the label 'Organic'. Products labeled as 'Organic' fetch more premium price than non-organic products. However, since market for organic products in India is restricted to metros and few other cities, producers need to know the markets for products. Hence, standards, certification and marketing network are important elements of organic farming.

ORGANIC LIVESTOCK FARMING

Livestock keeping at farms is an age-old practice. Livestock play major role in organic agriculture as the intermediary between the utilization of crop residues or fodder produced at the farm and the return of nutrients as manure. Dairying in particular has helped number of small and marginal farmers to improve their home. Field survey revealed that marginal and small farmers, even in progressive States like Punjab, have helped to raise farm profitability as well as availability of cattle dung in sufficient amounts. Storage and application of their resources seldom attract proper attention of the farmers resulting in 40-60% losses in nutrients, especially N. Leaching of NO3-N polluting the ground and surface water resources is usually observed from cattle dung pits. Organic farmers and farming methods take adequate care in minimizing these through adoption of technologies on composting, vermi-compositing etc., This not only. .mnproves the nutrients availability from organic sources but also prevent potential hazard of ground water pollution. Organic farms and food production systems are quite distinct from conventional farms in terms of nutrient management strategies. Organic systems adopt manageemnt options with the primary aim to develop holistic farms, like a living organism with balanced growth, in both crops and livestock holding.

STANDARDS FOR ORGANIC LIVESTOCK FARMING

IFOAM (International Federation of Organic Agriculture Movements) has set standards for organic farming as 'IFOAM Basic Standards,' which are followed world over. These standards act as guide for other standards on organic farming. The FAO/WHO too have adopted guidelines for organic, agriculture and livestock production. The 'National Standards for Organic Production' (NSOP), in India are based on IFOAM basic standards. Some of the important standards for Organic Livestock

Farming as mentioned in NPOP (National Programme for Organic Production) are :-

1. Sufficient free movement, fresh air, feed and natural daylight should be provided to animals according to their needs.

2. Adequate facilities should be provided for expressing behavours in accordance with the biological and ethological needs of the species.

3. Poultry and rabbits shall not be kept in cages.

4. All organic animals should be born and raised in the organic holding.

INCOME AND EMPLOYMENT POTENTIAL

Sukla et al. (1994) made an analysis of income and employment increasing potential through dairying on marginal farms in mid-western region of Uttar Pradesh. The results showed that an increase of 82 per cent to 175 per cent in the annual income could be possible through dairying even over the best level of existing income on marginal farms. They reported that dairying carries a great potential to fill the gaps on marginal farms so as to bring them above poverty line.

Their study suggests that scope of increasing income and employment on marginal farms through crops farming alone is severely limited due to small land holding. Dairying appears to be a very potent and easily operational source of increasing income on marginal farms even under the existing resource base. Therefore, strengthening of credit and other infrastructure support by government for promotion of dairying will go a long way not only in bridging up gaps of income, but also make them fully employed. Thus, dairying will be helpful in removing poverty and also in checking unwanted migration of rural poor.

REFERENCES

- Bhasin, N.C. (2010). Indian Daityman 62 10-11.
- Outlook, 23, Feb. 2004.
- Pashudhaw'(1987). Vol. 2 No. 1. 2. p. 7.
- Ramesh and Thilkar, P. (2009). Pashudhan 35 (7) 1-4.
- Sahul, N.C., Singh, A.K., Sharma, V.K. and Kushwah, R. (2012). Prospects of entrepreneurship in dairying and extn. strategies. Livestock Future 2(5) : 8.
- Sukia, A.K., Gupta, S.N., Nautyal, B.L, Tewari, S.K. and Biswas, P.G. (1994). Indian J. Daiiy Sci., 47 (7) : 549-555.
- Yadav, M.P. (2003). Hindustan Times. Friday, 10 Jan. 2003.
- Gandhi, R.S. 2014. Indian Dairyman 66, 12, 96

गीता का निष्काम कर्म व काण्ट का ''कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य के'' विषयक विचार

❑ डॉ. आशा देवी*

शोध सारांश

गीता का निष्काम कर्म व काण्ट का 'कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य' का सिद्वान्त सम्पूर्ण मानव जाति के लिये प्रेरणा का स्रोत है। जिससे भारतीय जन मानस ने अपनी जीवन द्वष्टि के रूप में आत्मसात् किया है। यह गीता में जीवन जीने की कला को कर्म योग कहा गया है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन' कर्म करने मैं ही तुम्हारा अधिकार है फल की प्राप्ति में नहीं। इस प्रकार गीता और काण्ट दोनों की निष्काम कर्म मार्ग अनासक्ति भाव से कामना रहित तथा फल की आशा को छोड़कर 'कर्त्तब्य के लिये कर्त्तब्य का पालन करने से मनुष्य सूुख–दुख, सफलता–असफलता, प्रिय–अप्रिय, निन्दा–स्तुति, मान–अपमान इत्यादि को समान मानता है। वह अपनी ज्ञानाग्नि से सभी कर्म फलों को भस्म कर देता है। वह सुख–दुख सभी गुणो से परे गुणातीथ होकर 'ब्रह्मभाव को प्राप्त करने वाला ही ज्ञान योगी।

इस प्रकार गीता में ज्ञानी को स्थिर बुद्वि वाला अर्थात स्थित प्रज्ञ कहा गया है। गीता में ज्ञान–भक्ति, कर्म का सुन्दर समन्वय मिलता है। इस प्रकार निष्काम कर्म और तत्व ज्ञान अन्त में प्रपत्ति और शरणागति (आत्म सर्मपण) से पूर्ण हो जाते हैं तत्पश्चात योगी ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है फिर व प्रसन्नचित्त होकर समस्त प्राणियों में समता का भाव रखता है।

गीता भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म व दर्शन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन करने वाला धर्मशास्त्र भी। गीता अपनी ज्ञान सम्पदा के कारण प्राचीन भारतीय चिन्तकों व समकालीन भारतीय सांस्कृतिक, महापुरूषों के लिए प्रेरणा स्रोत है, जिसे भारतीयों ने अपनी जीवन दृष्टि के रूप में आत्मसात किया है। गीता में जीवन जीने की कला को कर्मयोग कहा गया है। कर्मयोग गीता का प्रमुख विषय है। गीता का उपदेश निमित्त रूप से किंकर्त्तव्यविमूढ और अनुत्साहित अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना है। युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है इसीलिए गीता में भगवान श्रीकृष्ण दुविधाग्रस्त अर्जुन को निर्देशित करते हुए कहते हैं कि "युद्ध करना तुम्हारा अधिकार और कर्त्तव्य है।" यही धर्म को स्थिर करने का विधान है। इस प्रकार काण्ट ने भी अपने नैतिक सिद्धान्त 'कर्त्तव्य को कर्त्तव्य के लिए' करने का आदेश देते हैं। मनुष्य को कर्त्तव्य करते समय कर्त्तव्य का पालन तत्परता से करना चाहिए किन्तु

* एसोसिएट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र, पी0जी0 कॉलेज अगस्त्यमुनि, जिला–रुद्रप्रयाग।

कर्त्तव्य पालन में निष्काम भाव का होना आवश्यक है। इस प्रकार अर्जुन को निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित किया गया, क्योंकि यही स्वधर्म है। निष्काम कर्म को जीवन का विशेष मार्ग बताया गया है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सभी परिस्थितियों में निष्काम कर्म करने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार फलाकांक्षा का परित्याग कर सुख–दुःख, सफलता–असफलता को समान मानते हुए निष्काम कर्म करना चाहिए। कर्मयोग के विषय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है उसके फल में नहीं। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन"[1] कर्मयोग में मुख्य बात है अपने कर्त्तव्य द्वारा दूसरे के अधिकार की रक्षा करना और कर्म फल का अर्थात् अपने अधिकार का त्याग करना। कर्मयोग की दृष्टि से देखें तो मनुष्य को साधन–सामग्री (वस्तु, योग्यता और सामर्थ्य) मिली है। वह प्रारब्ध है और उसका सदुपयोग करना अर्थात् उसको अपना और अपने लिए न मानकर प्रत्युत दूसरे का और दूसरों के लिए मानकर उनकी सेवा में लगाना कर्मयोग है।

निष्काम कर्म मार्ग सुखवाद और वैराग्य के बीच का मार्ग है। सुखवाद कहता है कि सुखवाद के लिए या सुख–कामना से कर्म करना चाहिए। यह सकाम कर्म मार्ग है। वैराग्यवाद के अनुसार कर्म बन्धनकारी होते हैं इसलिए कर्मों का त्याग करना चाहिए। यह अकर्म मार्ग है, निष्काम कर्म मार्ग दोनों के बीच का मध्यम मार्ग है। निष्काम कर्म मार्ग अनासक्ति भाव से कामना से रहित होकर, कर्म फल का त्याग करके निष्काम भाव से कर्म करने पर कर्म बन्धनकारी नहीं होते हैं। गीता के अनुसार कर्म करने वाला मनुष्य एक मात्र शुभ है। वह फल की आशा छोड़ने वाला चिन्ता का नियमन करने वाला और सब प्रकार की आसक्ति से मुक्त पुरूष हैं। वह सभी द्वन्द्वों से मुक्त है। गीता में ईश्वर को गुणातीत कहा गया है। ऐसा गुणातीत पुरूष मन से कुछ भी नहीं करता बल्कि शरीर से सब कुछ करता है।[2]

क्योंकि उसने सभी कर्मों को अपने मन से दूर कर दिया है त्रिगुणातीत पुरूष (सत्व, रज, तम गुणों से रहित) के उदाहरण से कर्म करने की प्रेरणा सभी मनुष्यों को मिलती है।[3] गीता के अनुसार ईश्वर के लिए सभी कर्मों को अनासक्त करना ही कर्मयोग है। इसी आशय से भगवान् कहते हैं कि लक्ष्य कर समस्त संकल्पों का त्याग कर, मेरा भजन कर। भगवान ने स्वयं कहा है कि यह कर्मयोग का रहस्य बड़ा कठिन है। अर्जुन के माध्यम से कृष्ण ने सभी लोगों को कर्मयोग का पाठ पढ़ाया है। हम कर्म किये बिना नहीं रह सकते। गीता के अनुसार सभी कर्मों का त्याग सम्भव नहीं है। कोई भी मानव प्राणी बिना कर्म के क्षण भर नहीं रह सकता है, और न ही कर्म के जीवन तथा जीवन निर्वाह हो सकता है।[4] कर्म करना व्यक्ति का अधिकार व कर्त्तव्य दोनों हैं। इसलिए मनुष्य को कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। गीता में कर्म के प्रति अहंकार, ममता व आसक्ति का विरोध किया गया है। अतः कर्म कैसे करना चाहिए, यह जानना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में बताया गया है कि अहंकार रहित होकर कर्म करना ही कर्मयोग है। साधारणतः हम कर्म करते हैं और अपने आपको कर्त्ता समझते हैं। यही कर्त्तापन का अभिमान या अहंकार है। कर्मयोगी वह है, जो इस अभिमान से रहित होकर कर्म करें।[5]

साधारणतः मनुष्य आसक्ति के कारण ही कोई कर्म करता है। आसक्ति कर्म करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। हम सुख–प्राप्ति तथा दुःख परिहार के लिए ही कर्म करते हैं। अतः आसक्ति को ही कर्म का मूल कहा गया है। भगवान् का कहना है कि कर्मयोगी को इस आसक्ति पर विजय प्राप्त करनी चाहिए और अनासक्त होकर कर्म का आचरण करना चाहिए। अतः अनासक्ति होकर कर्म करने से मनुष्य परमगति या परमार्थ को प्राप्त करता है।[6]

निष्काम कर्म का तात्पर्य है कि निःस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य समझकर लोक कल्याण की भावना से कार्य करना ही कर्मयोग है। कर्म दो प्रकार के होते हैं : सकाम और निष्काम। सकाम कर्म बन्धन का कारण

है। निष्काम कर्म बन्धन का उच्छेदक है। हम किसी कामना या इच्छा से प्रेरित होकर ही शारीरिक या मानसिक कर्म करते हैं। यही सकाम कर्म कहा जाता है। निष्काम कर्म में कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। इन कर्मों से बन्धन नहीं होता, क्योंकि बन्धन के मूल कारण कामना का इसमें अभाव रहता है। निष्काम कर्म तृष्णा रहित कर्म है। निष्काम कर्म के दो अंग हैं : कर्तापन या ममता का त्याग तथा आसक्ति या तृष्णा का त्याग। गीता के अनुसार फल और आसक्ति का त्याग कर कर्म करना ही स्वधर्म कहा गया है, यह अनासक्त कर्म है। कर्मयोगी स्वार्थ की भावना से नहीं वरन् परार्थ की भावना से प्रेरित होता है। निष्काम भाव से, निःस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य समझकर लोक कल्याण की भावना से कार्य करना ही कर्मयोग है।

गीता का कर्मयोगी "स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति होता है जिसे गीता में "स्थिरप्रज्ञ" कहा गया है। श्रीकृष्ण के अनुसार जिस व्यक्ति की बुद्धि स्थिर होती है वह अनेक दृष्टियों से अन्य लोगों से भिन्न होता है। जब कोई व्यक्ति अपने स्वरूप का चिन्तन करते–करते उसी में संतुष्ट हो जाता है और मन में आयी सभी कामनाओं का त्याग कर देता है तो उसे "स्थिरप्रज्ञ" कहा जाता है। स्थिरप्रज्ञ व्यक्ति ही जगत का कल्याण करने वाला स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय कराने वाला होता है। इसी को गीता में "सिद्धावस्था" कहते हैं। गीता में कर्मयोगी और स्थितप्रज्ञ होना लगभग एक ही प्रकार ही स्थिति मानी गई है।[7] गीता में निष्काम कर्म की महत्ता को दर्शाते हुए कहा गया है कि कर्म और भक्ति के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है। गीता में ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के वर्णन में बताया गया है कि ज्ञानयोगी दार्शनिक एवं तार्किक विधि का तथा भक्तियोगी सेवा भाव का अनुसरण करता है।

सर्वत्र आत्म–तत्व का दर्शन करना और आत्मा में सब भूतों को देखना ही ज्ञान योग है। वह विषयों में ईश्वर को और ईश्वर में सबको देखता है। वह सम्पूर्ण जगत् में ईश्वर को व्याप्त समझता है। इसी आशय से भगवान कहते हैं कि सब स्थान पर मेरा अस्तित्व समझना, मेरे ध्यान से सम्पन्न हो। ज्ञानी व्यक्ति अपने कर्त्तव्य व अहंकार का त्याग कर सकता है। कर्मफलों को ईश्वर को समर्पित कर सकता है, इस प्रकार ज्ञान मार्ग के अवलम्बन से कर्मफल से मुक्ति मिल सकती है। ईश्वर का दर्शन आध्यात्मिक प्रकाश में सुख के वातावरण में प्राप्त होता है। सम्पूर्ण जीवन की महत्वाकांक्षा एक प्रकार से अनन्त की निरन्तर आराधना बन जाती है। ज्ञाता भी एक भक्त है और उन सब में सर्वश्रेष्ठ है।[8] जो मुझे जानता है, मेरी पूजा करता है"[9] वही ज्ञानी कहलाता है। इस प्रकार गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन किया गया है। "चतुर्विद्या भजन्ते माँ जनाः" (1) आर्त्त (2) जिज्ञासु (3) अर्याथी (4) ज्ञानी। रोगी व्यक्ति रोग निवारण हेतु ईश्वर की भक्ति करता है ऐसे भक्त को आर्त्त कहते हैं। जो ज्ञान पाने की इच्छा से ईश्वर की भक्ति करता है, उसे अर्याथी कहते हैं। जो ईश्वर की स्तुति, वन्दना और सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है वह ज्ञानी कहलाता है। ज्ञानी भक्त ही ईश्वर की उपासना, निष्काम भाव और आत्मा के पवित्र भाव से करता है।[10] बाकि अन्य तीन भक्त इच्छा या कामना की पूर्ति हो जाने पर ईश्वर की भक्ति करना छोड़ देते हैं। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं। सच्ची भक्ति निःस्वार्थ आचरण और आत्मसमर्पण के द्वारा होती है। गीता का आदर्श भक्त वह है जिसके अन्दर प्रेम के साथ–साथ ज्ञान का प्रकाश है और जो मनुष्य जाति के लिए कष्ट उठाने के लिए लालायित रहता है। जब भक्ति पूर्णता की अवस्था में पहुँच जाती है तब भक्त की आत्मा और ईश्वर परस्पर एक दूसरे से घुल–मिलकर परमानन्द के रूप में आ जाते हैं और एक ही जीवन के पहलू बनकर अभिव्यक्त करते हैं। ऐसी स्थिति आत्म समर्पण, शरणागति और प्रपत्ति के द्वारा प्राप्त होती है यही गीता का ज्ञान योग और निष्काम कर्मयोग है।

गीता के अनुसार सुख–दुःख को समान समझने वाला ही ज्ञानी है क्योंकि वह आत्म–स्वरूप में रमण

करने वाला सुख– दुःख के द्वन्द से परे रहता है। ज्ञानी के लिए हीरे और पत्थर में भेद नहीं है। प्रिय और अप्रिय उसके लिए समान हैं, निन्दा और स्तुति में उसके लिए भेद नहीं। मान और अपमान को वह समान समझता है। प्रिय और शत्रु से वह समान व्यवहार करता है। वह ज्ञानाग्नि से सभी कर्म फलों को जला देता है। अतः उसमें कामना नहीं रहती। वह सुख और दुःख सभी गुणों के परे गुणातीत है। गुणातीत होकर ब्रह्म–भाव से प्राप्त करने वाला ही ज्ञानयोगी है। इस प्रकार निष्काम भाव और तत्व ज्ञान अन्त में शरणागति से पूर्ण हो जाते हैं। तत्पश्चात् योगी ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। फिर वह प्रसन्नचित्त होकर समस्त प्राणियों में समता का भाव रखता है।[11]

'भक्ति, ज्ञान एवं कर्म दोनों से भिन्न भावनामयी आसक्ति का नाम है।'[12] मन और बुद्धि को भगवान में लगाकर भगवान के अधीन होना ही भक्तियोग है। भक्ति का तात्पर्य है अपने आप को ईश्वर के प्रति समर्पित करना। भक्ति का मार्ग सभी वर्ग के व्यक्तियों के लिए एक समान खुला और सबसे अधिक सुगम मार्ग है भक्तियोग के सहारे भक्त, भगवान् का सामीप्य व सानिध्य प्राप्त करता है। ईश्वर की पूजा–पाठ, भजन–कीर्तन, आराधना, उपासना, स्मरण और ध्यान करना ही ईश्वर की भक्ति है।

इस प्रकार भक्त भगवान् के सगुण रूप में अनुरक्त रहता है, निर्गुण रूप में नहीं। वही साकार ईश्वर की उपासना करता है, निराकार की नहीं। ईश्वर के प्रति परम भक्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम इन्द्रियों के विषय की लालसा को नहीं त्याग देते। भक्तियोग का मुख्य तात्पर्य है "अनन्य भाव"। परम पूज्य परमात्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे का भाव मन में न लाना ही अनन्यभाव कहलाता है। अनन्यचित होने के साथ–साथ भगवान् में शरणागति भावना भी भक्तियोग के लिए आवश्यक है। ईश्वर के प्रति आत्म सर्मपण करने की भावना आसक्ति रहित, सम्पूर्ण प्राणियों में वैरभाव से रहित जीवन–निर्वाह अनन्य भक्ति कहलाती है। अनन्य भक्ति के द्वारा भक्त ईश्वर को प्रत्यक्ष देख सकता है, जान सकता है। भगवान के ऐक्य भाव को प्राप्त कर सकता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि पापी मनुष्य भी अनन्य भाव और प्रेमपूर्वक मेरी भक्ति करता है तो वह भी धर्मात्मा ही है क्योंकि वह एक निष्ठावान इच्छा को लेकर ईश्वर की शरण में आया है। और इसलिए वह एक धार्मिक आत्म सम्पन्न व्यक्ति है। भगवान स्वयं किसी के साथ पाप या पुण्य को नहीं ग्रहण करता।[13] गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि "मुझे न कोई अप्रिय है और न प्रिय है।"[14] ईश्वर के प्रति प्रेम अथवा भक्ति के स्वरूप का भाषा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। "जैसा कि गूंगा अपने स्वाद को भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता।"[15] इसलिए "ईश्वर की भक्ति अनन्य भाव से करनी चाहिए।"

अनन्य भाव से भक्ति करने वाला भक्त/मनुष्य जो कुछ भी कर्म करता है वह ईश्वर के गौरव के लिए करता है। उसका कर्म सर्वथा निःस्वार्थ होता है उसमें फल प्राप्ति की आकांक्षा नही होती है। यह सर्वातीत परब्रह्म के प्रति नितान्त आत्म त्याग है।[16] सर्वश्रेष्ठ भक्ति आत्मसमर्पण, शरणागति, और प्रपत्ति से होती है। भगवान को सभी भक्त प्रिय होते हैं किन्तु ज्ञानी सबसे अधिक प्रिय हैं।[17]

भगवत् गीता की तरह काण्ट भी मानते हैं कि मनुष्य को कर्म इसलिए नहीं करना चाहिए कि उससे शुभ–अशुभ फल की प्राप्ति होगी प्रत्युत उसे कर्त्तव्य समझकर ही कर्म करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य कर्त्तव्य का पालन तीन प्रकार से करता है :

1– भावनावश।

2– स्वार्थवश।

3– कर्त्तव्य के लिए।

काण्ट के नीतिशास्त्र में सदिच्छा और शुभ–संकल्प को सर्वाधिक पूर्णमहत्व दिया गया है। काण्ट कहता है कि मात्र सदिच्छा निरपेक्ष या परमशुभ है। सदिच्छा देश काल व्यक्ति तथा परिस्थिति से निरपेक्ष होकर सदा शुभ रहती है। वह किसी वस्तु की प्राप्ति का साधन नही है। काण्ट के अनुसार सदिक्षा एक सामान्य अनुभव की स्थिति है। मनुष्य के विभिन्न प्रकार के

कर्मों में सदिच्छा की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति उन–उन कर्मों को नैतिक अथवा अनैतिक बनाने में कारक होती है। जो इच्छा कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य करती है वह सदिच्छा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सदिच्छा अनिवार्यतः कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य करती ही हो। सामान्य मनुष्यों की इच्छा के सामने दो मार्ग होते हैं। एक कर्त्तब्य मार्ग दूसरा अकर्त्तब्य मार्ग। इसीलिए साधारण मनुष्यों के लिए कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य करने की नैतिक आवश्यकता है। अतः सदिच्छा कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य करती है।

काण्ट के अनुसार केवल कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य पालन का ही नैतिक मुल्य है, वही उचित और शुभ है। जबकी भावनावश और स्वार्थवश जो कर्त्तब्य किया जाता है वह उचित शुभ नही है और उसका कोई नैतिक मूल्य नही होता है। काण्ट की दृष्टि में कर्त्तब्य पालन का एक चौथा प्रकार भी है जिसे काण्ट स्वभावतः कर्त्तब्य पालन कहता है। स्वभावतः कर्त्तब्य पालन मानवीय परिस्थितियों में सम्भव नही होता है। साधारण मनुष्यों में लिए केवल कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य का मार्ग उचित व शुभ है। क्योंकि मनुष्य आपने कर्त्तब्य कर्मों को बिना किसी भावना के नही कर सकता है। भावनायें मनुष्य के व्यक्तित्व की आवश्यक अंग होती है।

काण्ट निरपेक्ष आदेश तथा कर्त्तब्य पालन के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। मनुष्य को केवल कर्त्तब्य चेतना से प्रेरित होकर ही अपने कर्त्तब्य का पालन करना चाहिए किसी प्रकार के परिणामों को प्राप्त करने के लिए नही। नैतिकता का आदेश निरपेक्ष आदेश अर्थात वह किसी अन्य प्रयोजन की पूर्ति का साधन न होकर अपने आप में साध्य है। निरपेक्ष आदेश और कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य पालन की चेतना से प्रेरित होकर कर्म करने वाला मनुष्य ही नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट होता है। ऐसे मनुष्य में ही शुभ–संकल्प पाया जाता है। जो इस जगत/संसार में एक मात्र स्वतः शुभ है। इस प्रकार काण्ट कहते हैं कि केवल कर्त्तब्य की चेतना से प्रेरित होकर ही कर्त्तब्य का पालन साधारण मनुष्यों के लिए अनिवार्य है। निरपेक्ष आदेश का पालन करने वाले शुभ–संकल्प से परिपूर्ण मनुष्य में शुभ–आचरण के अनुपात में आनन्द का समावेश होना ही अनिवार्य है। ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति को उसके शुभ–संकल्प के अनुपात में आनन्द प्रदान करता है। कर्माध्यक्ष के रुप में ईश्वर सभी मनुष्यों को सुख–दुख प्रदान करता है। सामान्यतः मनुष्य के जीवन में, अनेक वस्तुएं जैसे ज्ञान, धन, बल, यश, प्रतिष्ठा आदि सुख के रूप में स्वीकार की जाती है किन्तु इन वस्तुओं का शुभ होना स्वयं इनके ऊपर निभर नहीं है। उदाहरण के लिए, ज्ञान का समुचित प्रयोग सुख का कारक होता है और उसका अनुचित प्रयोग अशुभ का कारक होता है। इसलिए काण्ट मानता है कि सामान जीवन में मनुष्य जिन वस्तुओं की कामना करता है वह प्रकटतः शुभ होते हुए भी स्वतंत्र रूप से शुभ नहीं है क्योंकि उनकी शुभता उनके उपयोग पर निर्भर करती है। वस्तुओं के सदुपयोग के पीछे सुख संकल्प सदिच्छा कारण के रूप में उपसिथत होता है। सुख संकल्प वह नियत कारक है जिसके भाव या अभाव से कोई वस्तु या काल शुभ या अशुभ हो सकता है। अतः काण्ट यह निष्कर्ष निकालता है। शुभ संकल्प ही निरपेक्ष रूप से शुभ है। इसकी शुभता स्वतः शुभ और साध्य इसी का नैतिक मूल्य है।[18]

अब प्रश्न यह उठता है कि शुभ संकल्प कि अभिव्यक्ति कैसे हो? कार्य रूप में उसका प्रयोग कैसे होता है? इसी प्रश्न के उत्तर में काण्ट अपनी नीतिशास्त्र के प्रसिद्ध सिद्धान्त निरपेक्ष आदेश की स्थापना करता है। निरपेक्ष आदेश शुद्ध नैतिक बुद्धि का आदेश है, जो सम्वेदना स्वार्थ प्रवृत्ति आदि सभी कारणों से नैतिक बुद्धि को मुक्त करके उस कर्म में प्रवृत्त करता है जिसे कि नैतिक बुद्धि निरपेक्ष आदेश के रूप में स्वीकार करती है। इसी कार्य को काण्ट के नीतिशास्त्र में "कर्त्तव्य के लिए कर्तव्य" कहा गया है। जो कर्त्तव्य नैतिक बुद्धि के आदेश से निकलता है वही 'कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य'2 हो सकता है और ऐसे कर्त्तव्य की शुभता उस कर्त्तव्य से बाहर किसी अन्य कारण पर निर्भर नहीं होती।[19]

देशगत और कालगत दूरियों के बावजूत भी गीता और काण्ट के नैतिक सिद्वान्तों में समरुपता

विद्यमान है। कहीं गीता के नैतिक विचार सर्वश्रेष्ठ हैं तो कहीं पर काण्ट के विचार श्रेष्ठ हैं। अन्तःदृष्टि के क्षेत्र में गीता के विचार समीचीन प्रतीत होते हैं जबकी बौद्धिक क्षेत्र में काण्ट के विचार।

1. काण्ट का कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य का सिद्धान्त गीता के निष्काम कर्म, कर्त्तब्य–पालन के समान है। गीता और काण्ट दोनों मानते हैं कि किसी कर्म की नैतिकता का निर्णय उस कर्म के फल के द्वारा न होकर संकल्प के द्वारा होता है।

2. गीता और काण्ट के विचार लोककल्याण को कर्म का आधार मानते हैं।

3. गीता और काण्ट दोनों ही मानव के दिव्य चारित्रिक विकास को महत्वपूर्ण मानते हैं।

4. काण्ट का "साध्यों के साम्राज्य" का सिद्धान्त गीता के लोक संग्रह (वर्णाश्रम) व स्वधर्म के समान है।

5. गीता और काण्ट का नैतिक सिद्धान्त आकारिक होते हुए भी व्यवहारिक बुद्धि को महत्वपूर्ण मानते हैं।

6. गीता और काण्ट दोनों ही संकल्प बुद्धि और संवेग के अनुशासन पर जोड देते हैं।

7. गीता और काण्ट दोनों व्यहारिक और तात्विक आत्मा में विश्वास करते हैं। नैतिकता का सम्बन्ध व्यवहारिक आत्मा से ही होता है। तात्विक आत्मा शुद्ध–संकल्प है। शुद्ध–संकल्प को प्राप्त करता नैतिक जीवन के लिए आवश्यक है।

8. गीता में कामनाओं, इच्छाओं और संवेगों को अपने वश में करने के लिए सन्यास और अभ्यास को प्रमुख मानती है। जबकी काण्ट संवेग रहित कर्मों को स्वभावतः नैतिक मानता है। कर्त्तब्यतया कर्म करना केवल मनुष्यों के लिए है, गुणातीत पुरुष या ईश्वर के लिए नही है।

9. गीता और काण्ट दोनों आत्म स्वातध्य जिसका ब्यक्त रुप मानव संकल्प है कि स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं।

10. गीता में सात्विक, राजसिक, तामसिक भावनाओं को "श्रद्धा" कहा गया है जबकी काण्ट कर्त्तब्य के लिए कर्त्तब्य की भावना को श्रद्धा कहता है।

गीता और काण्ट में प्रमुख भिन्नता है कि काण्ट ने इन्द्रियों को दमन करने का आदेश दिया है जबकि गीता इन्द्रियों को बुद्धि के मार्ग पर नियन्त्रण करने का आदेश देती है। गीता में इन्द्रियों का दमन करने वाले को पापी कहा गया है।

1. गीता का नीतिशास्त्र उद्देश्य मूलक है जबकी काण्ट का नीतिशास्त्र व्यक्तिगत है। काण्ट का नीतिशास्त्र एक प्रकार का सन्यासवाद है जबकि गीता सन्यास का समर्थन नही करती क्योंकि गीता का मार्ग समन्वयवादी है। गीता ज्ञान,कर्म और भक्ति का समन्वय करती है। इस प्रकार गीता का नीतिशास्त्र बुद्धिवाद की अपेक्षा आत्मपूर्णतावाद,आत्मअपलब्धिवाद के अधिक समीप है।

2. गीता का नीतिशास्त्र निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा, ईश्वर की प्राप्ति और अपनी निश्चित कर्त्तब्य–पालन का शास्त्र। इस प्रकार गीता नीतिशास्त्र धार्मिक और नैतिक है। जबकी का काण्ट का नीतिशास्त्र धर्म से कोई सम्बन्ध नही रखता है।

3. गीता प्रकृति से प्रेरित कर्मों को "परधर्म" मानती है जबकी काण्ट इसे "संकल्प" की दाशता कहते हैं।

4. गीता में ईश्वर को नैतिकता का स्रोत व प्रेरक माना गया है। जबकी काण्ट के दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व नैतिक नियमों की रक्षा करता है।

5. गीता में मोक्ष का परमआदर्श माना गया है। जिसकी प्राप्ति में नैतिकता सहायक होती है। जबकी काण्ट के दर्शन में नैतिक नियमों को निरपेक्ष आदेश के रुप में स्वीकार किया गया है।

6. काण्ट बुद्धिवादी दार्शनिक होने के कारण उसके नैतिक सिद्धान्त कठोर और रसहीन हो गये हैं। जबकी गीता के नैतिक सिद्धान्त सर्वभौमिक व सर्वांगीण है।

1. काण्ट और गीता के नैतिक विचारों में पहली मुख्य समानता यह है कि दोनों की फलवादी व्याख्या न देकर संकल्पवादी व्याख्या देते हैं। किसी भी कर्म

की नैतिकता का निर्णय उस कर्म के फल के द्वारा नहीं बल्कि कर्म के संकल्प के द्वारा होती है।

2. गीता और काण्ट का नीतिशास्त्र कर्म एवं नैतिकता की कसौटी प्रस्तुत करता है।

3. गीता और काण्ट दोनो ही नैतिकता की दृष्टि से मानते हैं मानवता चाहे आप में हो या किसी अन्य व्यक्ति में सदैव साध्य के रूप में सम्मानित हो, साधन के रूप में नहीं।

4. काण्ट और गीता का नैतिक सिद्धान्त आकारिक होते हुए भी व्यवहारिक बुद्धि को महत्व देता है।

भगवद्गीता में आत्मा कर्म तथा ईश्वर में भेद नहीं किया गया है। (कम से कम शंकराचार्य की व्याख्या से यही सपष्ट है कि आत्मा तथा ब्रह्म एक ही सत्ता के दो रुप हैं)। जहां तक आत्म–ज्ञान का प्रश्न है।

काण्ट व गीता की नीतिशास्त्र एक समान है। कहीं गीता के विचार समीचीन है तो कीं काण्ट के किन्तु दोनो के विचारों को एक दूसरे के पूरक मानते है। अन्तदृष्टि के क्षेत्र में गीता के विचार श्रेष्ठ है। बौद्विक जगत में काण्ट के विचार श्रेष्ठ है। स्वयं भगवान कृष्ण के शब्दों में ईश्वर व्यक्ति के हृदय में स्थित होता है। इसीलिए आत्मा का अनुभव वस्तुतः ईश्वर का भी अनुभव है। काण्ट आत्मा की सत्ता इस आधार पर सिद्ध करता है कि पूर्णता की प्राप्ति इस जीवन में संभव नहीं है। इसीलिए आत्मा की अमरता, पूर्णता की प्राप्ति के लिए आवश्यक ही हो। काण्ट का यह प्रमाण एक प्रकार अनुमान ही है।

गीता और काण्ट के दर्शन में नैतिकता और सुख के सम्बनध की समस्या भी है जिसकी व्याख्या दोनों सिद्धान्तों में भिन्न रूपों में की गई है।

काण्ट के अनुसार, नैतिक व्यक्ति सुख का अधिकारी तो होता है। किन्तु स्वयं उसका नैतिक आचरण इस बात का आश्वासन नहीं देता कि उसे सुख की प्राप्ति ही होगी। इसलिए काण्ट नैतिकता एवं सुख में सम्बन्ध की स्थापना के लिए ईश्वर का सहारा लेता है। और यह कहता है कि ईश्वर ही नैतिक रूप से योग्य व्यक्ति को सुख प्रदान कर सकता है। गीता में स्थिति कुछ भिन्न है कृष्ण का यह स्पष्ट आश्वासन है कि उनका भक्त कभी भी दुःख को नहीं प्राप्त होगा। इस प्रकार स्वयं भगवान् नैतिक व्यक्ति को यह आश्वासन देते हैं कि उसे कोई दुःख नहीं होगा और अपने नैतिक कर्मों के अनुकूल सुख की प्राप्ति होगी।

स्थितप्रज्ञ के आदर्श पर यदि हम विचार करें तो हम कह सकते है कि आत्मपूर्णता की प्राप्ति के लिए ईश्वर का हस्तक्षेप भी आवश्यक नहीं है। गीता की तरह काण्ट भी गानते है सदिच्छा, सुभ संकल्प, निरपेक्ष नैतिक आदेश तथा कर्त्तब्य पालन के लिये सिद्वान्त को प्रमुख मानते हुये कहते हैं कि मनुष्य को केवल 'कर्त्तब्य के लिये कर्त्तब्य' का पालन करना चाहिए, परिणाम या फल प्राप्ति के लिये नहीं। नैतिक आचरण का परिणाम सुख,नैतिक अनैतिक आचरण का फल दुख की प्राप्त होती है। निरपेक्ष आदेश तथा 'कर्त्तब्य के लिये कर्त्तब्य' पालन की चेतना से प्रेरित होकर आचरण करने वाला मनुष्य ही नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट होता है ऐसे ही ब्यक्ति में शुभ संकल्प पाया जाता है शुभ संकल्प स्वंय में एक मूल्य है और स्वतः साध्य है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति अपने ज्ञान द्वारा अपने मन एवं इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है और अपने कर्मों को इस प्रकार संचालित करता है कि उसकी बुद्धि में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। स्थितप्रज्ञ के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह अपनी आत्मा में रहता हुआ ही सन्तुष्ट रहता है 'आत्मन्एव आत्मनः तुष्ट'।[20]

आत्मतुष्टता, स्थितप्रज्ञ का लक्षण है और आत्मतुष्टि से बड़ा कोई दूसरा सुख नहीं हो सकता। काण्ट के अनुसार हमारी पूर्णता और दूसरों का सुख यह दोहरा लक्ष्य नैतिक जीवन का होता है। हम अपनी पूर्णता और दूसरों के सूख के लिये प्रयत्न करें काण्ट का आशय अपने सुभ संकल्प को उत्पन्न करना तथा दूसरों में परोक्ष रूप से उत्पन्न करने का प्रयत्न करना। अपने लिये सुख प्राप्त करने के सांथ सांथ दूसरों के लिये उतना ही सुख करना नैतिक

ब्यक्ति का कर्त्तब्य है। सर्वत्र आत्म रूप देखने के कारण वह राग–द्वेष, भय– क्रोध,लोभ, लालच मान अभिमान के भाव से मुक्त रहता हैं, मानव जीवन का सर्वोत्तम आदर्शा यही हैं। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि सुख का जो आदर्श, काण्ट के दर्शन में सम्भावित सुख के रूप में परिकल्पित है तथा ईश्वर के हस्तक्षेप के बिना जिस सुख की प्राप्ति संभव नहीं है, गीता में वह सुख, कर्मयोगी को इसी जीवन में उपलब्ध है और यह अपने ही ज्ञान से उपलब्ध हैं।

इस प्रकार गीता और काण्ट के विचार निष्काम कर्म व कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य के सिद्धान्त पर आधारित है। जिसका प्रमुख आधार आत्म–कल्याण और लोक कल्याण करना है। गीता का निष्काम कर्मयोग व काण्ट का कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सन्देश भारतीय जनमानस के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की समस्त मानव जाति के लिए अनुकरणीय है, उपयोगी है। मानव जाति का कल्याण सन्निहित होने के साथ–साथ सम्पूर्ण समस्याओं के समाधान हेतु मार्गदर्शक व प्रेरक है।

संदर्भ सूची

1. गीता 2/47
2. गीता–4/21, 14/25
3. गीता–3/21, 23, 24, 25
4. गीता 3/5
5. गीता 9/27
6. गीता 3/20
7. गीता–6/41–45
8. गीता–7–17
9. गीता–15,19
10. गीता–18/5
11. गीता 18/51–53
12. गीता–2/59
13. गीता–9, 5, 15
14. गीता–9, 29, 12, 14–20, 16–16
15. नारदसूत्र 51–52
16. गीता–9,28
17. गीता 7/17
18. Kants Foundation of the Metophysics of morals, I Sec. Tranas Levis.
19. Kants Foundation of the Metophysics of morals, II Sec. Tranas Levis.
20. गीता 2/55 –56

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APR. TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

A Compative Study of Mental Health Among Male and Female Students

❐ Dr. Karuna Anand*

ABSTRACT

The present study attempts to explore a comparative study of Mental Health among male and female students. The data was collected on 60 subjects (30 male and 30 female). The results revealed that there will be no significant difference between male and female students on Mental Health.

Introduction

Health is an important aspect of Human life. It is well-recognized truth from the time immemorial that possessing good health pre-requisite for every human being for all-round growth and development. Health has been defind differently by different thinkers. However, it is generally defined as "a state of physical, mental and, social well-being and not merely and absence or disease of infirmity."

In this rapidly changing society due to technological and scientific advancement it is very difficult to remain mentally healthy. Therefore, it is a great challenge before the education system to remain mental health of students.

The concept of mental health originated early in the present century. The meaning of the term mental health can be expressed in a dictionary of Psychology "a state of good adjustment with a subjective state of wellbeing, zest for living, and the feeling that is exercising his talents and abilities" (Atkinson, Bern and, Wood-worth, 1988). In the modern age of science and technology majority of people are seeking wealth, material prosperity, power and status, but in return they suffer from various psychosomatic disorders. They live in insecurity, anxiety, stress and, tension which are the by-products of science and technology.

Meaning of Mental Health

It is true that every individual, in one way or another, is inevitably involved in conflict and all of us are occasionally placed under strain. It is, in fact, one of the dark blessings of modern age. Let us consider the following two terms.

* Associate Professor, Dept. of psychology, GDHG College, Moradabad.

- **Mental Health:** Absence of mental illness: more positively, a state characterized by adjustment, a productive orientation and zest.
- **Mental Illness:** Emotional, motivational and social adjustment are severe enough to interfere with the ordinary conduct of life.

According to W.H.O. criteria "Health is a state of complete physical, mental and, social well-being and not merely the absence of disease or infirmity."

According to Kari Menninger, a psychiatrist (1947), "Mental Health is the adjustment of human beings to the world and to each other with a maximum of effectiveness and happiness."

The term gender is often used to classify the anatomy of a person's reproductive system as either male or female. In the social sciences, however, the concept of gender means much more than biological sex. It refers to socially constructed expectations regarding the way in which one should think and behave, depending on sexual classification. These stereotypical expectations are commonly referred to as gender roles. Attitudes towards gender roles are thought to result from complex interactions among societal, cultural, familial, religions, ethnic and political influences.

Gender affects many aspects of life, including access to resources, methods of copying with stress, styles of interacting with others, self evaluation, spirituality, and expectations of others. These are all factors that can influence mental health either positively and negatively. Psychological gender studies seek to better understand the relationship between gender and mental health in order risk factors an improve treatment methods.

Traditional gender roles define masculinity as having power and being in control in emotional situation in the workplace, and in sexual relationships. Acceptable male behaviors include competitiveness, independence, assertiveness, ambition, confidence, toughness, anger, emotional expressiveness, vulnerability (weakness, helplessness, insecurity, worry) and intimacy.

Traditionally, femininity is defined as being nurturing, supportive and assigning high priority to one's relationships. Women are expected to be emotionally expressive, dependent, passive, cooperative, warm and accepting to subordinate status in marriage and employment. Competitiveness, assertiveness, anger and violence are viewed as unfeminine and are not generally tolerated as acceptable behvior.

Why does gender matter in Mental Health?

A gender approach to health means to distinguish biological and social factors while exploring their interactions, and to be sensitive to how gender inequality affects health outcomes. A gender approach to mental health provides guidance to the identification of appropriate responses from the mental health care system, as well as from public policy. Gender differences clearly exist, even where the socio-economic gradient may not be strong. Never married and separated/divorced men have higher overall admission rates to mental health facilities than women in the same marital

status categories. In contrast, married women have higher admission rates than married men (Dennertein L, & C. Morse.) Gender, like other stratifies, does not operate in isolation. It interacts in an additive or multiplicative way with other social makers like class and rates. Gender analysis improves understanding of the epidemiology of mental health problems, decisions and treatment of these problems in under-reported groups, and also increases potential for greater public participation in health (Vlassoff C, GraciaMoren, 2002). Doctors are more likely to diagnose depression women compared to men, even when they have similar scores on standardized measures of depression or present with identical sysptoms. Gender stereotypes regarding pronesses to emotional problem in women and alcohol problem in men appear to reinforce social stigma and constrain help-seeking along stereotypical lines. They are barrier to the accurate indentification and treatment of psychological disorders. (Adhoc working group. 2006). Women's mental health affects other in society. Their increasing presence in the work force means that their mental health affects national productivity. Their social roles as care givers means that their mental health affects the mental health of their children and elderly parents. These gender differences vary across age groups. In child-hood, most studies report a higher prevalence of conduct disorders, with aggressive and antisocial behaviors, among boys than in girls. During adolescence, girls have a much higher prevalence of depression and eating disorder, and engage in suicidal ideation and suicide attempts than boys. Boys experience more problems with anger, engage in high risk ehaviors and commit suicide than girls. In gender, adolescent girls are, more prone to symptoms that are directed inwardly, while adolescent boys are pron to act out.

In adulthood, the prevalence of depression and anxiety is much higher in women, while substance used disorders and antisocial behaviors are higher in men. In the case of severe mental disorders such as schizophrenia and bipolar depression, there are no consistent sex differences, but men have an earlier onsect of schizophrenia, while women are more likely to exhibit serious forms of bipolar depression.

In older age group, although the incidence rates of Alzheimer's disease- a degenerative disease of the brain which usually occurs after 65 years of age is reported to be the same for women and men, commorbidity the occurrence of more than one disorder concurrently is associated with increased severity of mental illness and higher levels of disability. Recent studies have found that women had significantly higher life time and 12 months commorbidity than men.

Objective of the Study

To study the gender differences of Mental Health among under graduate students.

Hypothesis

There will be no significant difference between Male and Female under graduate students on Mental Health.

Material and Methods

Sample

In this study, the design is a randomized group design selected on the basis of

randomization between male and female students. Total 60 subjects were used in the research. The subjects of both the gender (Male & Female) were selected randomly from different college. The sample was between the ages 18 to 22. The level of socio-economic status was constant for the entire group.

Tool Used

In order to measure the mental health of students, the Metal Health check list constructed by Pramod Kumar (D.Phil) was used. In this inventory items was formulated. The inventory was divided into two sub areas such as psychological and physical health. In part 'A' only six items represents psychological health and the rest five items represents the physical health of a person. There is a four point scale. There points are as follows:-

FOUR POINT SCALE			
RARELY	AT TIME	OFTEN	ALWAYS

Procedure

Mental Health inventory developed by Pramod Kumar (D'Phil) was administered on 60 subjects according to instructions given in its manual. The test was administered in the group situations as well as at the individual level. Male and Female students were selected as subjects. There was no time limit to complete the scale but maximum 15 to 20 minutes were taken by each subject.

Statistical Analysis

Mean and t-test were applied for analysis of the collected data to draw results. The mean & result table are given in table 1, 2, 3 & 4.

TABLE NO 1

Showing Scores & Mean of male and female students

Students					
Male Students			Female Students		
n	Total	Mean	n	Total	Mean
30	580	19.3	30	615	20.5

TABLE NO. 2

Showing the Result of Male and Female Students

t-Value	Interpretation
0.11	Non-Significant

TABLE NO. 3
Showing the Physical & Psychological Scores & Mean of Male

MALE			
Physical		Psychological	
Total Score	Mean	Total Score	Mean
330	11.00	250	8.33

TABLE NO. 4
Showing the Physical & Psychological Scores & Mean of Female

FEMALE			
Physical		Psychological	
Total Score	Mean	Total Score	Mean
358	11.93	257	8.56

Result and Discussion

The Present study aimed to see the gender difference of mental health among students. On the basis of t-test we can say that our hypothesis "There will be no significant difference between Male & Female Students on mental Health", proved right because the obtained t-value (0.11) is smaller then the critical t-value (2.00) at .05 level. So we can say that there is no significant difference of mental health among male & female students. The finding of Dr. Smitatrivedi& Dr. Saritamisra & Dr. A.K. Srivastava (2006) also support our hypothesis. They also find out the psychological study of mental health among students from different area. They have taken the sample of 300 students (Male & Female) from different area. But they find no significant difference on the basis of sex on Mental Health. But on the other hand, Charlie & Zeenat Zahoor (2011) have found contradictory result. They study Mental Health among Male & Female youths. The sample consisted of 50 Male and 50 Female and the findings are the immonse significance of Mental Health. Meet on the basis on mean value (See Table: 1) we can say that Male have better Mental health in comparison to female because the mean value of male is 19.3 whether the mean value of female is 20.5 on mental health.

The Mental Health check list is also divided into two sub areas. First area is physical health and the other is psychological health. If we compare the physical and psychological health of male and female students, we can see (Table:3 & 4) that the raw score of male and in their physical health is 330 & the mean value is (11.00) which is less than the raw scores (358) &mean socres (11.93) of female and the less scores shows the better health. On the other hand the psychological health of male is better than

the psychological health of female because the mean of male is 8.56 and the mean of female is 8.33 difference is not wide enough.

Conclusion

On the basis of results of above investigation, it could be concluded that there is no significant difference of Mental Health among Male & female students.

References

Dennerstein L, Astbury J, Morse C (1993), "Psychosocial and mental health aspects of women's health." *Geneva: WHO 19 No. : WHO/ FEH/MNH/93.1:7.*

Kumar, P.,Mori, J.B.&Patel, Nayana, M.(1989), "Consequences of marital maladjustment: study of mental health." *Journal of Perosnality & Clinical Studies.,5,1,61-63.*

O'Neill, James M. (1990), "Assessing Men's Gender Role Conflict." *In Problem solving strategies and interventions for men in conflict, edited by Dwight Moore and Fred Leafgrean. Alexanderia Vs. American Counseling Association, 1990.*

Sen G. Geroge A; Ostlin P (2002), " Engendering health enqity; a review of research and policy." *Harvard centre for Population and Development studies working paper series 2002; 12:13.*

Vlasoff C. (1994), "Gender inequalities ill health ill the third World." *Uncharted ground. Soc. Sci. 1994; 6.39: 1249-59.*

Vlasoff C, Gracia Moreno C. (2002), " Placing gender at the centre of health programming; challenges and limitation." *Soc. Sci, Med. 2002; 54: 1713-23. World Health Organization (1998): Gender and Health: technical paper Geneva: World Health Organization; 1998. Report anatomy of a person's reproductive system as either as either male or female.*

SHODH CHETNA – YEAR-3
(APRIL TO JUNE, 2017) VOL. 2

ISSN : 2350-0441

हिन्दू धर्म का अन्य धर्मों से तुलनात्मक अध्ययन : संगीतात्मक दृष्टिकोण

❐ डॉ. सोनिया बिन्द्रा*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दू धर्म की तुलना अन्य धर्मों से की गई है। जिसमें हिन्दू धर्म की तुलना सर्वप्रथम मुस्लिम धर्म से जिसमें मुस्लिम धर्म पूजा पाठ मस्जिदों में अजान बोलकर करता है। जिसमें भक्ति संगीत सूफी संतो के द्वारा ईश्वर के साथ अपनी आस्थ को प्रेमालाप करके की जाती है। जिसमें कव्वाली, कौल, सावन गीत, मन्दाहन इत्यादि गीतों के द्वारा संगीतात्मक रूप से धर्म की पृष्ठ भूमि रखी जाती है। सिक्ख धर्म में गुरूवाणी का गायन करके गुरूमन्त्रों को सखद रूप में गाया जाता है। सिक्ख धर्म में संगीत का पूर्ण कीर्तन गुरू ग्रन्थ साहिब में है। जैन धर्म में भक्ति संगीत का स्वरूप पशु पक्षियों की ध्वनि से हुआ। जिसमें मांगलिक अवसरों पर विवाह संस्कारों में संगीत का साहित्य समृद्ध होता है। बौद्ध धर्म में कर्म को मान्यता दी गई है। जिसमें सिरमुण्डित करके पीले वस्त्र धारण कर बौद्ध भिक्षु संघों में अपने धम्म के द्वारा संदेश देते हैं और बुद्ध धम्म शरणं गच्छामि, धम्म गच्छामि, संगम गच्छामि का जाप करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में संगीत दोनों पक्षों वैदिक और लौकिक रूप में मिलता है। ईसाई धर्म में हिन्दू समाज के संगीत को आत्मसात किया। और प्रचलित प्रार्थनाएं, दुआऐं, समूहगान, सस्वर वाध्यों के साथ हारमोनियम, मजीरा, ढोलक के स्वर के साथ विदेशी धुनों पर गायी गयी। इस प्रकार हिन्दू समाज की संस्कार पूर्ण संरचना अन्य धर्मों से हिन्दू समाज की तुलना प्राचीन काल से ही स्थापित होती आ रही है।

परिचय

हिन्दू धर्म अपने आप में एक वृहद रूप धारण किये हुये है, जिसमें उसकी आत्मा अन्तर्निहीत धार्मिक क्रियाकलापों, कर्मकाण्डों, रीति रिवाजों, परम्पराओं में बसी हुई है। हिन्दू धर्म चूंकि भारत देश का सबसे प्राचीन धर्म माना गया है। हिन्दू धर्म से भारतीय संस्कृति जानी पहचानी जाती है। लेकिन शनै–शनै समयानुसार परिवर्तन होने से, बाहरी आक्रान्तो ये यहां बसने से बाहर की संस्कृति भी हिन्दू समाज को प्रभावित करने लगी। ये धर्म मुख्यतः मुस्लिम, ईसाई थे। एक अन्य धर्म जो हिन्दू धर्म से विकसित हुआ। सिक्ख धर्म कहलाया।

* एसो0 प्रोफेसर (संगीत), एन0के0बी0एम0 पी0जी0 गर्ल्स कॉलेज, चन्दौसी जिला–सम्भल, म0ज्यो0फुले रूहे0वि0वि0 बरेली, Email : soniyabindrankbmg@gmail.com

सभी धर्मों (हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई) में अपने–अपने सिद्वान्त अपने–अपने संस्कार, नियम तथा अनुशासन है। सभी धर्म समाज में अनुशासन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। लेकिन मुस्लिम, ईसाई, सिख धर्म व अन्य धर्मों में क्या–क्या विशेषतायें है जो उन्हें हिन्दू धर्म से अलग पहचान कराती है। इसी को संक्षिप्त रूप में जानने का प्रयास करते है, क्योंकि हमारे शोध का मुख्य विषय हिन्दू धार्मिक संगीत है, लेकिन जब तक इन भिन्न संस्कृतियों पर हम सूक्ष्म दृष्टिपात नहीं करेंगे तो हिन्दू धर्म की अखण्डता, धार्मिकता, भावात्मकता का दर्शन हम नहीं करा पायेंगे। अतः संक्षिप्त रूप से इन सभी धर्मों पर एक सरसरी नजर डालने का प्रयास करते है।

हिन्दू धर्म की मुस्लिम धर्म से तुलना

संगीत के परिपेक्ष्य में–

हिन्दुस्तान में मुख्य रूप में सात धर्म प्रचलित है। जिनमें मुख्यतः हिन्दू धर्म सबसे बड़ी संख्या में तथा विस्तृत भी है, दूसरे स्थान पर इस्लाम या मुस्लिम धर्म आता है, तीसरे स्थान पर ईसाई धर्म है, चतुर्थ स्थान पर सिख धर्म है, पांचवे स्थान पर बौद्ध धर्म आता है। छठे स्थान पर जैन धर्म आता है, तथा सांतवे स्थान पर पारसी धर्म आता है।

इन सभी धर्मों में सबसे ज्यादा जनसंख्या का घनत्व हिन्दूओं में पाया जाता है जो लगभग देश की सम्पूर्ण आबादी का 83 प्रतिशत माना जाता सकता है, इसीलिये भारत को हिन्दू राष्ट्र भी कहा जाता है। भारत का सबसे प्राचीन धर्म भी हिन्दू ही है, क्योंकि प्राचीन काल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सबसे पहले आर्यों का उदय हुआ ये वो आर्य जाति थी, जो धर्म के आबद्व शुद्व रूप से संस्कृत भाषा का प्रयोग करती थी, इसीलिये प्राचीन धर्म हिन्दू ही कहलाए।

इस्लाम या मुस्लिम धर्म–

मुस्लिम धर्म भारत देश के सर्वाधिक संख्या वाले धार्मिक अल्पसंख्यक है, लगभग इनकी आबादी 12 प्रतिशत के आसपास है। हमारे हिन्दू गणराज्य में इस धर्म की उपस्थिति उसे धर्म निरपेक्ष राज्य होने की असल कसौटी है। क्योंकि सभी धर्मों ने भारत में समान रूप से आश्रय प्राप्त किया है।

इस्लाम धर्म में ईश्वर के प्रति आस्था के रूप–

छठी शताब्दी में मक्का अपनी यहूदी, ईसाई और मूर्ति पूजकों की आबादी के साथ उभरता हुआ शहर माना जाता था। अधिकांश मक्कावासी एक विशाल स्तम्भ 'काबा' को पूजते या आस्था रखते थे और ये पूजा वे मस्जिदों में अजान बोलकर (जो अपने ईश्वर या खुदा से प्रार्थना को बोलकर करना) किया करते थे, जो आज भी यही परम्परा नित्य क्रिया में सम्मिलित है। इसके साथ ही मुस्लिम धर्म में खुदा से प्रार्थना के रूप में पांच बार नवाज अदा करने का क्रमवार सिलसिला है, जो आज भी इसी रूप में रचा बसा है और सभी आज भी इस परम्परा को मानते तथा अमल करते आ रहे हैं।

भारत में इस्लाम धर्म का आगमन–

भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर सिन्धु नदी के दक्षिण के निवासी अरब व्यापारियों के जानकारी के आधार पर भारत में व्यापार करने आये, और अपने साथ अरब की बहुत से खाने–पीने तथा कपड़े, इत्र इत्यादि साथ लाये और भारत के हिन्दूओं ने उन्हें खुले रूप से अपने साथ व्यापार में ही नहीं, वरन् साथ में रहने के लिये भी एक पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। उनके (मुस्लिमों) विचारों, धर्म परिवर्तन, मस्जिद बनाने तथा कुछ ने तो हिन्दू जाति की स्त्रियों के साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। इस प्रकार हिन्दूओं ने मुसलमानों को धर्म के आधार पर ही नहीं वरन् व्यापार, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी रूप में पूर्ण रूप से देश में रहने सहने विचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी।

धीरे–धीरे समयानुसार परिवर्तन की एक आंधी ने सभी को ध्वस्त कर दिया। कुछ मुसलमानों ने मिलकर हिन्दूओं के प्रति जंग छेड़ दी। जिससे देश में अराजकता फैल गई, मुसलमानों के खूनी कृत्यों को देकर हिन्दूओं में रोष फैल गया, वे सभी मुसलमान धर्म, जाति सभी

से घृणा करने लगे। मुसलमानों ने हिन्दूओं के सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी स्तरों पर अपना प्रभुत्व जमाना आरम्भ कर दिया।

ये आरम्भिक मुसलमान आक्रामक तुर्क थे। यह इस्लाम के प्रसार–प्रेम से अधिक गुंडागर्दी की भावना से ओत प्रोत थी, जिसने मूर्ति भजन अभियान को हवा दी। हिन्द्वी मन में तुर्की ने इस्लाम का जो खौफनाक रूप भरा था, उसे मिटाने में मुसलमान कभी सफल नहीं हुए। इसके पश्चात हिन्दूओं ने इस्लाम को एक विदेशी धर्म मान लिया। मुस्लिम विजेताओं के बाद बहुत से मुस्लिम विद्वान और आध्यात्मिक व्यक्ति आए जो भारत में ही बस गए। उनमें अत्यन्त महत्वपूर्ण सूफी सन्त थे। इन्हीं लोगों ने मुस्लिम धर्म में समानता प्रेम की लहर जागृत की। ये लोग रहस्यवादी थे, जो सन्यासियों की तरह नगरों के बाहरी भागो में रहते थे। दूसरी और लड़ने झगड़ने वाले मुसलमानों ने मुस्लिम धर्म को आक्रामण के माध्यम से फैलाना चाहा, सूफियों ने दूसरे धर्मों की व्याख्या द्वारा इस्लाम की श्रेष्ठता को सिद्ध कर ऐसा किया। इन्हीं सूफी सन्तों ने धर्म की एक समानता समाज में स्थापित की जिसमें ईश्वर के स्वरूप को तथा उसके महत्व को स्वीकार करने की सीख दी।

प्राचीन काल में तो इस्लाम धर्म का अस्तित्व नहीं था, लेकिन मध्यकाल में मुस्लिम धर्म का बहुत अधिक प्रचार–प्रसार समाज में हुआ। जहां हिन्दू धर्म के साथ ही अन्य धर्मों ने भी अपने–अपने असित्व को ग्रहण किया। इन सभी धर्मों में भक्ति की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। जिनमें स्वरूप, कर्मकाण्ड, भिन्न–भिन्न हो सकते है, लेकिन उनका सार धर्म से आबद्ध होकर आरम्भ तथा अन्त धर्म पर ही समाप्त होता है। सार रूप में भक्ति के रूप भिन्न–भिन्न थे, लेकिन ईश्वर के समीप्य प्राप्त करने का उद्देश्य एक ही था, जो कालान्तर में भक्ति धारा से पूर्ण रूप से जुड़ गया।

मुस्लिम धर्म में भक्ति संगीत की धारा–

मुस्लिम धर्म में ईश्वर के प्रति आस्था तो मानी गई है, लेकिन उसका निर्गुण रूप स्वीकार किया गया है। इन्हीं निर्गुणोपासक भक्तों की शाखा सूफी सन्तों की निर्गुण शाखा कहलाई, इन्हीं सूफी सन्तों ने ईश्वर के प्रेमालाप को समाज में समस्त जनता के लिये सेव्य बना दिया। ईश्वर के प्रति इस प्रेम को व्यक्त करने का मध्यम इन्होंने भी हिन्दू धर्मानुसार संगीत को ही अपनाया और सीत के माध्यम से ही समाज में ईश्वर के मोक्ष, प्रेम, वात्सल्य, श्रृंगारिक भाव इत्यादि को प्रदर्शित किया। एक तरह से इन सभी ने संगीत के साथ–साथ हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध व अरमत्व प्रदान किया है। कबीर ने हिन्दूओं और मुसलमानों के कट्टरपन को हटझने के लिए अथक प्रयास किया, किन्तु उनकी भाषा व्यंग्यात्मक थी लेकिन सूफी सन्तों की भाषा प्रेम की थी, जिनसे मनुष्य के ह्रदय भी उससे अछूते नहीं रहे। सूफियों ने जन्म जन्मान्तर और योन्यन्तर के बीच में प्रेम की अखण्डता दिखाकर प्रेमत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिया है।

यद्यपि सूफी दर्शन की पृष्ठ भूमि में इस्लाम अभ्युदाय था, लेकिन फिर भी यह दर्शन इस्लामी परम्परा वादिता तथा कट्टरपन्ती से मुक्त था। यह दर्शन जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम पर आधारित था। सूफी संगीत भारतीय संगीत और सांस्कृतिक गतिविधियों के इतने निकट है, कि उसमें भेद कर पाना बहुत कठिन प्रतीत होता है। जहां हिन्दूओं में भी जीवात्मका, परमात्मका का रूप स्वीकार कर ईश्वर के समीप जाने का मार्ग ढूंढता सा प्रतीत होता है, वही सूफी सन्तों ने भी नामक–नायिका का रूप धारण कर ईश्वर के साथ प्रेमालाप को महत्व देते है, और जीवात्मा को इस संसार तथा पारलौकिक सत्ता के बीच दो भागों में बांटकर ईश्वर भक्ति करते है, जैसे मृत्यु होने पर मनुष्य को इस मौके को इस लोक से परलोक में जाना ही पड़ता है, वैसे ही उस मनुष् के मृत्यु को प्राप्त होने पर उसके आचरण, उसके कर्म का निर्धारण भी उसी स्थिति में होता है, बुरे कर्म है, तो नर्क लोक, और अच्छे कर्म है तो स्वर्ग लोक। यही मनुष्य की ईश्वरीय नियति है जो सभी को भोगनी पड़ती है।

सूफीवाद का जन्म इस्लाम के बाद ही हुआ है, जो आध्यात्म पर आधारित मानव एकता का संदेश देते हुये धर्मों का स्वस्थ्य समन्वय पर बल देता है और ईश्वर के निराकार, निर्गुण स्वरूप को समाज में प्रचारित करता है। तथा उसका सम्बन्ध निराकार ब्रह्म से जोड़ते है, भारती उपनिषदों में भी इसी पक्ष का अवलोकन होता है। हिन्दू धर्मा तथा इस्लामी धर्म के इसी समानता के कारण अनेक मुस्लिम विद्वान तथा दार्शनिक भारत आए, इनमें अनेक सूफी सन्त भी थे जिन्होंने यहां के संगीत में चित्राकर्षक एवं उदात्त को संगीत को सुना, उसे अनुभूत किया तो वे निमग्न होकर उसमें कंट तक डूब गये, उन्होंने यहां के संगीत को आत्मसात किया तथा भारतीय एवं अरबी संगीत के सम्मिश्रण से अनेकों प्रयोग किए। इन प्रयोगों से संगीत को एक नवीन दिशा प्रदान की। जिसमें आत्मा, परमात्मा के मिलन के साथ ही, मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग भी था, जो सीधे परमात्मा से मिलन का मार्ग सुदृढ़ करता था। ये सूफी सन्त उदार प्रकृतिक के होते थे और ''जो प्रभु का भजन करे, प्रभु उसी के होये'' जैसी बात करते थे। उनके आध्यात्मिक विचार भारतीयों को अपने अन्तर की प्रति ध्वनि प्रतीत होते थे। सूफी सन्त हिन्दू समाज में घुममिल गये और भारतीय धुनों में ही अपने सिद्वान्त गीतों का आरम्भ कर दिया। इन्हीं भारतीय संगीत की धुनों में जो आज भी बहुत प्रचलित व सुमधुर है और समाज में रची बसी है–

1. कव्वाली

कव्वाली एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ, सुनना, जो एक समूहबद्ध गायन शैली है, जिसमें श्रृंगार रस के साथ ही नायक नायिका का व्यंग्यात्मक छीटाकसी वाली शैली चलती है, ये एक विस्तृत गायन है, जो काफी लम्बी दीर्घकालीन तक चल सकती है। ये सुनने में बेहद सुरीली, ओज पूर्ण, उत्साहित करने वाले गायन शैली है। जिसमें ईश्वर से नोकझोंक, रूठना, मनाना, लड़ना, झगड़ना तर्क वितर्क सभी भावनाओं का संगम होता है, जो उसे और सुमुधर बना देता है, जिसमें मग्न होकर व्यक्ति या भक्त घन्टों ईश्वर का ध्यान कर सकता है।

परमात्मा की प्रशंसा या उसकी शान में गाना अथवा विरहवस्था में उसका स्मरण करना कव्वाली के माध्यम से सम्पन्न होता था। चिश्ती परम्परा के सन्तों ने भारत में कव्वाली को श्रेष्ठगान की श्रेणी में रखने में पूरा योगदान दिया। कव्वाली गाने वालो को ''कव्वाल'' कहा जाता है। इस्लाम धर्म के कुछ लोगों ने तो यहां तक कहा है कि हमारी मृत्यु होने पर हमारे जनाजे के साथ कव्वाली गायन हो, जिससे हमारी आत्मा को सुकून प्राप्त हो।

कव्वाली मुस्लिम समाज की एक विशेष गायकी है, जिसका मूल रूप आध्यात्म को स्पर्श करता है। कव्वाली में राम चरितमानस की तरह सभी तत्व विद्यमान है। जैसे– सूफी दर्शन, खुदा रसूल की तारीफ, वसूदो शरीफ द्वारा मालिक से इल्तजा, हुस्नों, ईश्क की रंगीनियत भरी शोखी, जश्न और महफिल के मसले इत्यादि। कव्वाली में तान, पल्टा, जमजमा, बोलबांट आदि सभी कुछ होता है।

कौल का वास्तविक नाम ''कोलह'' है। क्योंकि इसमें कुरान शरीफ को कोई आयत होती है। इसमें अरबी भाषा का प्रयोग होता है, तथा टुकड़े तान इत्यादि भी गायन शैली के विस्तार के लिये प्रयोग होते है। ''कौल'' शब्द अरबी भाषा का शब्द है। कौल–कल्बाना गाते हुए पवित्रता को बरकरार रखा जाता है, जिससे ईश्वर प्रेमालाप में कोई बन्दिश, कोई त्रुटि न हो।

अमीर खुसरों ने भी भारतीय गायनानुसार इसमें ध्रुपद वगैहरा की तरह ही भिन्न–भिन्न गायन शैलियों को प्रचिलत किया है, जो आज भी दरगाह, वगैहरा पर गाई बजाई जाती है। जिसमें शुद्ध गम्भीर स्वरों की अधिकता होती है, और पूर्ण शुद्वता से उन्हें गाया बजाया जाता है। सार रूप में कव्वाली, कौल, कल्बाना, नक्श और गुल, नक्श निगार, बसीत, रंग, धमाल सभी भक्ति युक्त गायन शैलियां है, जो हिन्दू धर्मानुसार भी है। इसके अतिरिक्त भी कुछ ऋतुओं, उत्सवों पर्वों पर गायन शैलियां मुस्लिमों में प्रचलित है जैसे–

सावन गीत–

अमीर खुसरो के द्वारा इस गायन शैली का विकास या जन्म माना जाता है। जो बेहद हल्के फुल्के अंदाज में गाई जाती है। जिसमें समाज के प्रत्येक आयु के स्त्री पुरूष, बच्चे सभी आनन्दित होकर इनका गायन करते है, व इन के रस में निमग्न होकर आनन्द लेते है। ये बोल और सुरों की दृष्टि से इतने आसान होते है, फिर एक बच्चा भी उन्हें याद कर लेता है। बोलों की खूबी है, कि स्त्रियां चाहे इनको जितना लम्बा चाहे बड़ा कर गा सकती है। इनके स्वरों की खूबी है कि यह सारा गायन तीन चार सुरों में ही खत्म हो जाता है।

मन्दाहन

यह गाना दुल्हिान की विदाई पर गाया जाता है। यह गाना हमेशा से ही औरतों द्वारा गाया जाता है। इस गाने के स्वाभावनुसार बेहद मार्मिक मन को छूने वाला गीत है, जिसमें पत्थर दिल के भी आंसू छलक जाते है। इसमें दो भाग होते है, गाने का स्थायी तथा अन्तरा। यह गीत शैली भी अमीर खुसरों की देन हैं, जो तब से आज तक ऐसे ही गाई बजाई जाती है। मन्डहे के सुरों की वह बन्दिश तथा भाव दिलों दिमाग पर वधू की जुदाई के ख्याल से पैदा होते है। इस गाने के शब्द बड़े दर्दनाक होते है। इसकी तर्ज तथा सुर भी सोज में भीगे होते है। अमीर खुसरो ने बहुआयामी संगीत की रचना कर मुस्लिम धर्मशास्त्र को पूर्ण समृद्ध किया है। जिससे आज भी संगी समाज की बहुत उन्नति व प्रगति पथ पर अग्रसर होने में सहायता मिलती है।

सर रूप में मुस्लिम धर्म में भी हिन्दू धर्म के अनुसार ही भक्ति संगीत समाज में रचा बसा है। तथा उसकी प्राण प्रतिष्ठा आध्यात्मिकता पर हुई है। चूंकि हिन्दू धर्म के बार भारत में मुस्लिम धर्म दूसरे पायदान पर आता है, तो मुस्लिम समाज भी संगीत से अछूता नहीं है, वरन् मुस्लिम समाज के समाज सुधारकों ने समाज में समानता, प्रेमाभाव, आत्मिक, उन्नति, के अथक प्रयास किये है, जो कट्टरपंथी के विरूद्ध एक मिशाल है, और आज के आधुनिक समाज में संगीत के द्वारा जाति–पाति, वैमनस्थ्य, इत्यादि कुचक्रों को तोड़ने में काफी प्रयास भी किया गया है। यह प्रयास संगीत के द्वारा हुआ है, जहां अगर एक मंच पर हिन्दू गायक है, तो वाद्य बजाता एक मुस्लिम कलाकार के भी है, जो पूरे मनोयोग से तल्लीन होकर केवल संगीत की साधना में मग्न है, और संगीत प्रेमियों की प्यास को शान्त करने का दायित्व निभा रहा है।

हिन्दू समाज की सिख धर्म से तुलना

मुस्लिम धर्म के पश्चात् सिख धर्म तीसरे नम्बर पर भारत में निवास करता है। लगभग 2 प्रतिशत इनकी आबादी है। इनकी मुख्य भाषा गुरमुखी पंजाबी है। सिख धर्म का संघठन बेहद एकताबद्ध है, तथा उनके धार्मिक स्थल भी एक ही तरह के होते है जिनके प्रति सभी सिख धर्म को मानने वाले एकजुट रहते है, और उन्हीं के आदेशों धार्मिक कर्मकाण्डों का निर्वाह करते है। सिख धर्म पाकिस्तान से विकसित हुआ था और बाद में भारत आया था। यद्यपि इनकी सम्पत्ति को अत्यन्त अपंग पर पाकिस्तान को छोड़कर भारत में तीव्र गति से पुनः स्थापित हुये। और अपनी खोई हुई सम्पन्नता को पुनः प्राप्त कर लिया। इन सभी कारणों ने सिख समाज को गतिशील, लगनशील और आक्रामक बनाया है। कोई नहीं कह सकता है, कि उनका धर्म मुसलमानों और ईसाइयों की तरह विदेशों से आया और न ही कोई उन्हीं देश के बाहर किसी अन्य राष्ट्र के प्रति बफादारी का दोषी ढहरा सकता है। अपने अस्तित्व को सिखों ने बेहद मजबूत बनाया है।

सिक्ख धर्म की संरचना–

सिख शब्द संस्कृत क 'शिष्य' अथवा पाली के 'सिख्वा' से बना है, जिसका अर्थ होता है, शिष्य या चेला।

जिन व्यक्तियों ने केश धारण करके शिखा को विकसित किया उन्हें सिख कहा गया। सिख के कई अर्थ दिये गये है, लेकिन गूंढ अर्थ में जो केश धारण

करता है, और शिखा को बढ़ाता है वही सिख समुदाय का व्यक्ति है। कुछ अर्थ सिख के अलग–अलग परम्परागत रूप में उल्लेखित किये गये है, जिनके अनुसार वही व्यक्ति सिख है, जो एक गुरू या पीर का चेला है, शिष्य हो, प्रतिपादित सिख धर्म के नियमों का मानता है, व उनका पालन भी करता हो, अपने एक मात्र पवित्र ग्रन्थ में पूर्ण आस्था रखता हो, गुरू का उपदेश आज्ञा समझ कर पूर्ण पालन करता हो, केश, चोटी रखता हो और सिख धर्म में दीक्षित हो।

सिक्ख धर्म का बीजारोपण श्री गुरू नानक देव जी ने किया, जो कालान्तर में एक विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होता हुआ, वर्तमान में प्रौढ़ स्थिति में परिलक्षित होता है। ''श्री गुरूग्रन्थ साहिब'' सिख धर्म का एक मात्र तथा सर्वाधिक आदरयोग्य धार्मिक ग्रन्थ हैं सिख धर्म में गुरूनानक देव जी के बाद नौ गुरूओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

सिख धर्म में भक्ति संगीत–

भारत प्रारम्भ से ही एक धर्म निरपेक्ष देश रहा है। भारत में सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) से ही अनेक धर्म अस्तित्व में आएं जिनमें ईश्वर की भक्ति की अनिवार्यता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। ईश्वर भक्ति के रूप अलग–अलग हो सकते है, उनका सार केवल एक ही है, ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर अन्त में मोक्ष प्राप्त करना। ये सभी संगीत की अजस्त्र धारा में भक्ति की लौ जलाये अपने–अपने धर्मों के कर्मकाण्डों का निर्वाह करते हुये बहे जा रहे हैं, किसी धर्म में वेद मंत्रों का गायन किसी धर्म में पदों, भजनों का गायन, किसी धर्म में सूफी गाना गायन शैली तो कही गुरूवाणी का गायन किया जा रहा है। सिक्ख धर्म में मुख्य रूप से गुरू के मन्त्रों जो शाखद कहलाये का गायन भक्तिपूर्ण रूप से किया जाता है। जिसमें संगीत के माध्यम से परमेश्वर का ध्यान करना उत्तम माना गया है। यद्यपि सिख गुरूओं ने नृत्य का निषेध किया है, तथापि गायन और वादन को पूरी तन्मयता के साथ स्वीकार करने का आदेश दिया है। सिख धर्म की आत्मा प्रभु नाम–स्मरण एवं उसके कीर्तन गायन में निवास करती है। ये कीर्तन गायन शास्त्रीय संगीत पर आधारित राग गायन है। जिसमें स्वर, एवं ताल के अनुसार पूर्णतः कीर्तन क्रमबद्ध होना चाहिये। ये भी अति आवश्यक है। जो धार्मिक परम्परानुसार ही धार्मिक संगीत की श्रीवृद्धि संगीत के साम्राज्य में करती है।

धार्मिक संगीत का पूर्ण कीर्तन गुरू गुन्थ साहिब में संकलित है जो सिख धर्म का एक मात्र पवित्र धार्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कीर्तन में प्रयुक्त राग ताल का नाम संकलित है जिससे विभिन्न रागों के स्पष्ट नामोनुसार गायन तथा तालानुसार उनकी संगति स्पष्ट की गई है। साथ में साथ संगत में विभिन्न वाद्यों का भी उल्लेख किया गया है।

गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रथम गुरू से लेकर नवें गुरू (गुरू नानक से लेकर गुरू तेग बहादुर) तक की वाणियों तथा उपदेशों का संकलन किया गया है। इन गुरूओं के अतिरिक्त भी इस ग्रन्थ में अन्य सन्त भक्तों तथा सूफियों की वाणियों भी संकलित है, जिसमें स्पष्टतः, राग, ताल, वाद्यों का भी उल्लेख है।

ये सभी वाणियों राग बद्ध है, जिनमें विभिन्न रागों के नामों का उल्लेख हुआ जिन्हें शबद नाम से जाना जाता है। गुरू ग्रन्थ साहिब में सभी गुरूओं की वाणियों का संकलन अलग–अलग पृष्ठ पर राग का नाम, ताल का नाम, साथ संगति में प्रयुक्त वाद्योंनुसार गायन किया जाना बतया गया है, जिसके अनुसार पहले से चली आ परम्परानुसार आज भी यही परम्परा गुरूद्वारों तथा दरगाहों में प्रयोग की जाती है, इसी परम्परानुसार कीर्तन, राबद गायन सुबह शाम प्रतिदिन अनिवार्य रूप से किया जाता है। जिसमें विभिन्न रागों का गायन होता है।

सिख धर्म में मुख्यतः संगीत कीर्तन ईश्वर तक पहुंचने के लिये नाम स्मरण तथा ईश वन्दना में राग बद्ध प्रार्थना की जाती थी। जिसमें ईश्वर को एक तथा ''ओंकार'' के रूप में पुकारा गया है। जिसमें ईश्वर का सर्वस्व मानकर अपरिमित शक्ति का स्वामी माना है। तथा ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की भक्ति, अर्चना की है। जो भक्ति के गीत भी कहे जाते है। जिन्हें

गाकर भजन करने तथा कीर्तन स्मरण करने से मोक्ष प्राप्ति की कामना की जाती है। यही शबद बारम्बार गाने, प्रभु का हर क्षण भजन, कीर्तन करने से आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर पहुंचना सरल तथा सुगम है। प्रभु भक्ति रागमय, स्वरित रूप से की जाती है, वह भक्ति विलक्षण, अद्वितीय एवं आनन्द प्रदान करने वाली होती है। वह एक शब्द जो अंहकार को दूर मानव में चेतना जागृत करता है, वही वाणी या शबद है।

सार रूप में सिख धर्म में भक्ति संगीत का अजस्त्र झरना प्रवाह झंकृत है, जिसमें ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की भक्ति की गई है। सभी कुरीतियों, मिथ्या वैभव को विस्कृित किया गया है, और ईश्वर का कीर्तन धार्मिक संगीत के शास्त्रय रूप में निबद्ध होकर रागबद्ध, तालबबद्ध होकर करने को कहा गया है। शुद्ध रूप में तो संगीत के आध्यात्मिक पक्ष पर हिन्दू धर्म के बाद सिख धर्म ही ऐसा धर्म मान सकते है, जो ईश्वर की आराधना प्रार्थना, कीर्तन, भी राग बद्ध तथा तालबद्ध होकर प्रस्तुत करने का आदेश देता है। सुबह शाम दोनों पहर ईश्वर का कीर्तन पूर्ण भक्ति भाव से करने को आदेशित करता है, और पहले से चली आ परम्परा आज भी समाज में पूर्ण रूप से निर्वाहित हो रही है। आज भी सभी गुरूद्वारों तथा दरगाहों में प्रातः कालिन कीर्तन तथा सांयकालीन की कीर्तन अनिवार्य है, और इस धर्म को मानने वाले सभी व्यक्ति सुबह शाम प्रतिदिन समय निकालकर गुरूद्वारों तक जाते है, और कीर्तन, शबद के भक्तिमय संगीत का पूर्ण आनन्द लेते है और अपने मन को शान्त तथा एकाग्र करने की कोशिश करते है। गुरूद्वारों में पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है, जिसका अनुभव सिक्ख समाज के ही वरन् किसी भी समाज धर्म के व्यक्तियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

जैन धर्म तथा हिन्दू धर्म की तुलना

भारत के विविध रूप रंग, वेश, जाति धर्म की भिन्नता में एकता समाये एक धर्म जैन धर्म भी विकसित व पल्लवित है, जिसकी भारत में जनसंख्या लगभग 30 लाख के आसपास मानी जाती है। तथा हिन्दूओं के संस्कार, परिवेश, इत्यादि से समानता लिये हुये हिन्दू धर्म से पृथक नहीं माना जाता है।

जैन धर्म के लोगों की मुख्य विशेषता है कि ये सभी देश की सर्वाधिक प्रगतिशील जाति है, और व्यवसायों में अग्रणी है। जैन धर्म में पूजा स्थल भी बहुत प्रसिद्ध तथा श्रेद्वयी है।

जैन धर्म में भक्ति संगीत का स्वरूप–जैन धर्म में संगीत का उद्गम पशु पक्षियों की ध्वनियों से हुआ माना जाता है। और जैन धर्म का विकसित व पारिमार्जित रूप भी लगभग मध्यकाल से ही माना जाता है। जैन धर्म एक साहस, उत्साह तथा जिसे परास्त न किया जा सके। ऐसा अपराजित रूप किये हुये है। जैन धर्म शुद्ध रूप से पवित्र व आध्यात्मिकता से ओतप्रोत धर्म है जिसके अपने धार्मिक नियम, अनुशासन, पवित्रता तथा तीर्थ माने जाते है।

जैन धर्म अपने निर्माण के आरम्भ से ही ब्राह्मणवादी हिन्दुत्व की प्रक्रिया को कुछ हद तक मानते थे, इसीलिये इस धर्म में हिन्दू धर्म की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है। जैन धर्म का जनक महावीर जैन को माना जाता है और महावीर के ही आदर्शों पर इस धर्म का निर्वाह अधिकांश व्यक्ति जो इस धर्म को मानते है, करते है। जिसमें उचित धर्म को मानना, उचित ज्ञान को ग्रहण करना तथा उचित व्यवहार आचार करना सम्मिलित है।

जैन धर्म में मांगलिक अवसरों पर संगीत का उच्चतम रूप दृष्टिगोचर होता है। जैन धर्म में विवाह संस्कार को पूर्ण मान्यता दी गई है तथा विवाह जैसे मांगलिक अवसर पर संगीत का रूप धार्मिक परिलक्षित होता है।

जैन साहित्य में संगीत के सभी अंगों का उल्लेख हुआ है जिनसे संगीत का साहित्य और समृद्ध हुआ है। प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर वाद्यों का बजना, और वाद्यों की शुभकारी ध्वनि से प्रत्येक, उत्सवों, पर्वों व त्यौहारों का शुभारम्भ होता था, ऐसा जैन ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होते है।

कुछ अन्य वाद्यों को प्रातः कालीन मंगलसूचक वाद्यों में परिगठित किया गया है। विवाह जन्मोत्जसव, राज्याभिषेक आदि के प्रसंगों में उनके आयोजन का आरम्भ धार्मिक संगीत से होना बताया गया है। जिससे सभी धार्मिक कर्मकाण्ड पूर्ण होते थे, जिसमें ईश्वर का आसीम आर्शीवाद होता था।

जैन विद्वानों ने कुछ धार्मिक संगीतात्मक ग्रन्थों की भी रचना की है। जिनमें संगीत के ही मूल रूप के नाम बताये गये है, जिन ग्रन्थों में राग इत्यादि का भी वर्णन किया गया है। जैन धर्म में संगीत के सन्दर्भ में विभिन्न दर्शनिकों को मत मतान्तर स्थापित हुये है। जिनमें से संगीत के आध्यात्मिक स्वरूप का गहन अध्ययन दृष्टिगोचर होता है। इसी आध्यात्मिक संगीत की पवित्रतानुसार जैन धर्म में सभी धार्मिक कर्मकाण्ड, परम्परायें, विकसित व निर्वाहित होती है और आज भी जैन समाज में इन्हीं आदर्शे, परम्पराओं का प्रतिपादन व निर्वाहित होती है। जो जैन धर्म के पवित्र धार्मिक स्वरूप को अक्षुण्य बनाये हुये है।

बौद्ध धर्म की हिन्दू धर्म से तुलना–

अनेकता में एकता समाये भारत देश की मुख्य विशेषता है। इसी सत्य को परिलक्षित करता एक और उदाहरण बौद्ध धर्म है। जिसमें भारत में जन्म तो पाया लेकिन उसका विकसित रूप अब बाहर के अन्य देशों में देखने को मिलता है। बौध धर्म हिन्दू धर्म से ही पल्लवित तथा पोषित हुआ है, जिसकी आबादी के आसपास मानी जाती है। बौद्ध धर्म में मुख्यतः धर्म परिवर्तन करके आये मनुष्यों की संख्या अधिक है। इसीलिये शायद इस धर्म के लोग धार्मिक कम और सामाजिक प्रवृत्ति के ज्यादा माने जाते है।

बौद्ध धर्म की संरचना–

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध माने जाते है। जिनके आदर्शों उपदेशों के अनुसार इस धर्म का पल्लवन हो रहा है।

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम ने मानवीय इच्छाओं की कुछ हद तक विरोध किया है, लेकिन सभी मानवीय इच्छायें विरोधदायी नहीं होती है। ये भी कहा है।

बुद्ध के कर्म मार्ग को मान्यता दी है। अच्छे कर्म सफल दायक होते है, बुरे कर्म कुफल देने वाले होते है। इसीलिये बुद्ध का धर्म व्यवहारिक था। बुद्ध ने काल्पनिक, मिथ्या, आडम्बरों का तिरस्कार किया है, जो है, वह ठोस धरातल पर आपके द्वारा किये गये कर्म है, जिसका परिणाम अच्छा और बुरा हो सकता है।

बुद्ध ने धर्म को माना, लेकिन उसके अन्दर निहित आडम्बरों को वह नहीं स्वीकार करते है। अपने शिष्यों से अन्तिम उपदेश में उन्होंने कहा "अपने अन्दर का दीपक तुम स्वयं बनो अपने भीतर ही शरण ढूंढो, अपने लिए कोई ब्राह्म शरणस्थली नहीं अपनाओं, सत्य को उचित प्रकार धारण करो जिससे तुम्हें कोई डिगा न सके, दृढऋ, रहो सुकर्म करते रहो फल की इच्छा मत करो।

बौद्वों की भिक्षु आधारित संरचना धर्म प्रचार का केन्द्र बनी। सिर मुंडित पीले लबादे में वेष्टित हाथ में भिक्षा पाल लिये बौद्ध भिक्षु अपनी उपस्थिति सूचित करने हेतु द्वार–द्वार थोड़ा रूकते हुए घूमते और जो कुछ भी भिक्षा–पात्र में आ जाता उसे ग्रहण कर एकान्त ध्यान को लौट जाते। बौद्ध धर्म पवित्र विधि एवं संघ के प्रति विश्वास का पर्याय था और आज भी काफी हद तक यही परम्परा बौद्ध धर्म में प्रचारित तथा प्रचलित है। जिसमें जाति, धर्म का कोई स्थान नहीं वरन् मन की तन की शुद्वता, दूसरों के लिये जीना, दूसरों के लिये अच्छे कार्य करना, अपने किये कार्य से किसी को दुःख न पहुंचे ये ध्यान में रखकर अपने कर्म करना शामिल है।

बौद्ध धर्म में भक्ति संगीत का स्वरूप–

बौद्ध धर्म परम्परा का यज्ञादि अन्य परम्पराओं से सैद्वान्तिक तत्वों में मतभेद था, तथापि धर्म और उपासना के प्रचार में इस परम्परा में भी संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों के परिज्ञान के लिए बौद्ध साहित्य का अवलोकन नितान्त आवश्यक होता है, क्योंकि बौद्ध धर्म भी हिन्दू धर्म के आश्रय में ही पला बढ़ा है। बौद्ध धर्म में संगीत का आध्यात्मिक दर्शन उनमें निहित चित्रकला तथा शिल्पकला से ज्ञात होता है। बाहरी देशों में भी इस धर्म के आचार, विचार, उपदेशों, आदेशों को अपनाकर बौद्ध धर्म का उज्जवल भविष्य सुरक्षित व संरक्षित है, जिसमें संगीत के द्वारा उपासना आज भी की जाती है, ऐसा माना जाता है।

संगीत का एक रूप वैदिक ऋचाओं का सस्वर पाठ हिन्दू धर्म में किया जाता है, उसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी बौद्ध सूतों का सस्वर पाठ किया जाता था।

बुद्ध के पवित्र विचारों का सभी कलाओं पर पूर्ण दृढ़तात्मक प्रभाव पड़ा। इस धर्म ने अपनी शिक्षाओं द्वारा अपने साहित्य तथा कला द्वारा संगीत का प्रचार किया।

बौद्ध साहित्य में तत्कालीन नृत्य सम्बन्धी उल्लेख भी मिलते है।

बौद्ध ग्रन्थों में संगीत के दोनों पक्ष वैदिक (शास्त्रीय संगीत) तथा लौकिक (लोकगीत या लोकसंगीत) का समाज में उस समय प्रचलन था, जो सामूहिक रूप था। बौद्ध विहारों में संगीत द्वारा आराधना के लिये कुछ स्त्रियां नियुक्त करी जाती थी और संगीत की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

बौद्ध धर्म में लौकिक समारोहों गान तथा सामूहिक नृत्य कर देव की आराधना की जाती थी संगीत कला को राज्याश्रय प्राप्त था। सार रूप में बौद्ध धर्म में संगीत की परिणति धार्मिक अभिव्यंजन पर स्थापित हुई थी, और आज भी यही परम्परा समाज में विद्यमान है।

ईसाई धर्म की हिन्दू धर्म से तुलना–

भारत एक ऐसा धर्म निरपेक्ष देश है, जिसमें यही के जन्मे धर्म ही नहीं वरन् बाहर से आये धर्मों ने भी पल्लवन प्राप्त किया है, जिनमें से एक धर्म ईसाई धर्म भी है। भारत में कुल जन संख्या में से 2.43प्रतिशत के लगभग दो करोड़ के आसपास ईसाई धर्म की जनसंख्या मानी जाती है। ईसाई धर्म, यूरोप में आने के पूर्व ही भारत में आया और इसका प्रसार–प्रचार हुआ।

ईसाई धर्म की सरंचना–

ईसाई धर्म जिनकी संख्या 170 लाख अथवा 2. 43प्रतिशत आबादी से अधिक है। मुसलमानों के बाद दूसरे सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक है।

इस्लाम धर्म की तरह ईसाई धर्म को भी भारत में विदेशियों द्वारा प्रवेश मिला। यद्यपि अपने इतिहास में यह कभी अनिच्छुक विधर्मियों पर जबरदस्ती नहीं थोपा गया, इसमें धर्मांतरण अधिकतर ईसाई शासकों के संरक्षण और अक्सर भौतिक उपलब्धियों की आशा के आधार पर हुआ। धार्मिक आधार पर सभी ईसाई धर्म के लोग चर्च जाते है, जहां ''जीसस'' भगवान की आराधना प्रार्थना करते है।

ईसाई धर्म में धार्मिक संगीत–

ईसाई धर्म का मुख्य धार्मिक स्थल चर्च है, जिससे प्रतिदिन प्रातः कालीन तथा सायंकालीन सस्वर प्रार्थना की जाती है। ईसाई धर्म में भी हिन्दू धर्मानुसार कुछ संस्कार भी धार्मिक रीति रिवाजोनुसार होते है। चर्च में प्रार्थनाओं वाद्यों तथा सामूहिक गान से आरम्भ होकर, संगीत के आध्यात्मिक पक्ष पर ही समाप्त भी होती है।

ईसाई धर्म ने हिन्दू संगीत को ही आत्मसात किया है। प्रचलित प्रार्थनाऐं, दुआयें, सामूहिक गान, सस्वर तथा तालबद्ध, वाद्यों के साथ गाई बजाई जाती है। हिन्दू धर्म से प्रभावित ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेटों ने सतीप्रथा की समाप्ति, जैसी असंख्य कुरीतियों को समाप्त करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया था जिससे हिन्दू समाज की बहुत सी कुरीतियों का अन्त हो गया था।

ईश्वर की सत्ता को ईसाई धर्म तथा हिन्दू धर्म दोनों ने स्वीकार किया और दोनों ने ही ईश्वर के स्वरूप का अर्वन वन्दन संगीत के रूप में किया है। ईश्वर पूरे ब्रह्माण्ड का रचियता है, सभी जीवजन्तु, प्राकृतिक वस्तुयें तथा यहां तक की मनुष्य का रचियता भी ईश्वर है, ऐसी मान्यता को दोनों धर्मों ने स्वीकार किया है। ईसाई धर्म का भी धार्मिक ग्रन्थ है जिसे बाइबिल कहा गया।

सार रूप में हिन्दू धर्म के अनुसार ही ईसाई धर्म में धर्म की मानता मानी गई है, ईश्वर के स्वरूप तथा अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। पाप, पर, निन्दा, परतृष्णा, ईर्ष्या, मिथ्या, वैभव, अभी अन्धकार के घोतक है, और सभी तिस्कार के रूप में ही स्वीकार करने योग्य है। मनुष्य की यही मनोवृत्तियां, पाप करना, पर निन्दा, झूठ बोलना, पर स्त्री गमन, मिथ्या वैभव सभी उसे गर्त अर्थात् नरक में ले जाती है। जिसे मनुष्य ने इन सभी पर विजय प्राप्त कर सफलता प्राप्त की वही मनुष्य मृत्यु के बाद अवष्य ही स्वर्ग का भागी होता है ऐसा माना जाता है।

निष्कर्ष–

हिन्दू समाज की संस्कारपूर्ण संरचना एवं अन्य धर्मों से हिन्दू समाज की तुलना कतिपय, संस्कार,

विशेषतः संस्कारों के अनेक अंगों का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही स्थापित किया जाता रहा है। जब भारत ईरानीय तथा बाहर से आये समस्त स्थापित धर्म के लोग सामान्य विश्वासों में सहभागी होते हुए तथा समान धार्मिक अनुष्ठानों को करते हुए एक साथ ही रहते रहेंगे। जिस पर विभिनन धर्मों के आदर्श, उपदेश इत्यादि में धर्म अवेस्ता में अंकित धर्म वैदिक धर्म से अत्यन्त समानता रखता है, और पारसी में धर्म में हिन्दू संस्कारों से मिलती जुलती कुछ धार्मिक विधियां अभी तक सुरक्षित है, यथा जातकर्म, अन्नप्राशन और उपनयन संस्कार। अग्नि का अर्चन और यज्ञ की पद्वति हिन्दू तथा अन्य धर्मों पारसी में एक समान थी। यूनानी और रूमी धर्म में भी यज्ञिय थे, उदाहरणार्थ, स्थूल रूप रेखा की दृष्टि से विवाह की यूनानी पद्वतियों हिन्दूओं के समान थी। अतः हिन्दू संस्कारों को समझने के लिये इन सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि प्राचीन काल में धार्मिक विधि विधान सार्वभौम थे, अतः अभारोपीय जातियों में भी समानान्तर धार्मिक क्रियांए दृष्टिगोचर होती है। सभी धर्मों में अनेक धार्मिक विधियां प्रचलित है, जिनका प्रादुर्भाव अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था और जिनका अनुष्ठान मनुष्य जीवन में महत्वपूर्ण अवसरों पर किया जाता है। ईसाई धार्मिक विधियां मूलतः सभी धर्मों से ही विकसित हुई है। अतः सार रूप में हिन्दू धर्म के संस्कारों से प्रभावित होकर अन्य धर्मों ने उसमें पल्लवन प्राप्त किया है। भारत देश की मुख्य विशेषता अनेकता में एकता की ओर अधिक मजबूत सुदृढ़ रूप प्रदान किया है और आज भी भारत देश को अन्य देशों से अलग उच्च कोटि पर स्थापित करने में विभिन्न जाति, धर्म का अभूर्तपूर्व सहयोग है।

(द) हिन्दू समाज में भक्ति संगीत की अनिवार्यता–

भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदैव से आदर्शों की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है, तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। एक दूसरे रूप में कहे तो भारत में अनेकता मे एकता समाये हुए है। जिसमें भिन्न–भिन्न जातियों के लोग, भिन्न–भिन्न संस्कृतियों, भिन्न भाषायें बोलने वाले, भिन्न–भिन्न आचारों विचारों को अपनाने वाले, भिन्न–भिन्न वेशभूषायें धारण करने वाले, भिन्न–भिन्न धर्मा को मानने वाले मनुष्य यहां निवास करते है। उन्हीं से मिलकर भारतीय संस्कृति एक विशाल संस्कृति का रूप धारण करती है। इन सभी धर्मों में हिन्दू धर्म सबसे प्राचीन माना गया है, जो आर्यों जाति के उत्थान के साथ ही पल्लवित व पोषित माना जाता है।

चूंकि हिन्दू धर्म शुद्व रूप से धार्मिक कर्मकाण्डों, ईश्वरीय सकारात्मकता, सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में ईश्वर की भक्ति में तल्लीन, पवित्र माना गया है। इसके कण–कण में राम, कृष्ण, महादेव, विष्णु, ब्रह्मदेव, देवी सरस्वती, श्री गणेश, दुर्गा और असंख्य देवी देवताओं की छवि समाई हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. खुशवन्त सिंह– मेरा भारत
2. परशुराम चतुर्वेदी– सूफी काव्य संग्रह
3. नमिता बैनजी– मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव
4. जगदीश चन्द्र मिश्र– भारतीय दर्शन
5. रेनू सचदेव– धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत
6. सुलोचना यजुर्वेदी– खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार
7. डॉ0 शिवसहाय पाठक– मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य
8. सुशील कुमार चौबे– हमारा आधुनिक संगीत
9. डॉ श्रीराम शर्मा– खालिक बारी, अनुवादक
10. आचार्य बृहस्पति– संगीत चिन्तामणि
11. उस्ताद चांद खां– मूसी की हज़रत अमीर खुसरो
12. मुहम्मद करम इमाम– मअदन– उल मूसीकी
13. भाई काहन सिंह नाभा– एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सिख लिटरेचर
14. जतिन्द्र सिंह खन्ना– सिख भक्ति संगीत में प्रचलित रागों की उत्पत्ति तथा ऐतिहासिक विकास, शोध प्रबन्ध
15. प्रीतम सिंह सफीर– दस गुरू और उनके परमादेश